आधुनिक
डोगरी साहित्य : एक परिचय

लेखक
नीलाम्बर देव शर्मा

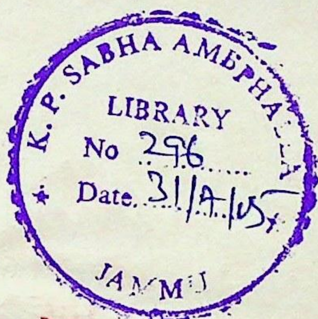
अनुवादक
सुभाष भारद्वाज

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू





आधुनिक
डोगरी साहित्य : एक परिचय



लेखक

नीलाम्बर देव शर्मा

अनुवादक

सुभाष भारद्वाज

ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू



१९६८

प्रकाशक : मुद्रक

ललितकला, संस्कृत व : एस. एन. मगोत्रा

साहित्य अकादमी : प्रिंटिंग प्रेस,

जम्मू-कश्मीर : गली खलौनेयां

जम्मू। : जम्मू।

पहला संस्करण ५०० : मूल्य ७ रुपये ६० पैसे

●

प्राक्कथन

जम्मू-कश्मीर की ललितकला,संस्कृति व साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'डोगरी साहित्य और पहाड़ीकला: एक परिचय' शीर्षक ग्रन्थ के ये दो खण्ड सम्भवत: डोगरा संस्कृति (डोगरी साहित्य लोक संगीत, पहाड़ी कला और वास्तुकला) के महत्वपूर्ण अंगों का सर्वप्रथम और क्रमबद्ध विवरण हैं। हमारे राष्ट्रीय इतिहास में 'विभिन्नता में एकता' यह एक उल्लेखनीय विशिष्टता चली आ रही है, और भारत की सांस्कतिक परम्परा की यह समृद्ध विभिन्नता ही भारत की अपरिहार्य और सर्वोपरि एकता के लिये शक्ति-स्रोत का काम देती रही हैं। केवल इस महत्तर राष्ट्रीय एकता के ढांचे के भीतर ही प्रान्तीय संस्कृतियां फलने-फूलने में समर्थ हो सकती हैं तथा उन्नति और विकास के लिये समुचित अवसर प्राप्त कर सकती हैं। डोगरा प्रदेश जम्मू व कश्मीर राज्य का एक महत्वपूर्ण भाग है, परन्तु डोगरी संस्कृति हिमाचल प्रदेश और पंजाब तक फैली हुई है और इसी कारण से इसका अध्ययन एवं विकास एक दिलचस्पी का विषय है।

प्रस्तुत खण्डों में इनके रचयिताओं ने डोगरा संस्कृति के तीन पहलुओं को अपना केन्द्र बनाया है। इनमें पहला है—डोगरी साहित्य—परम्पराप्राप्त और समसामयिक दोनों प्रकार का यह साहित्य समृद्ध है एव जनसाधारण के सुख - दुःख की भावनाओं से अनुप्राणित है। एक ऐसा साहित्य, जिसका उद्गम स्थानीय धरातल में ही हुआ है अनिवार्य रूप से जनसाधारण के हृदयों के निकटतर है। और विगत दो दशकों में डोगरी भाषा के क्षेत्र में एक विलक्षण नवजीवन का उद्भव देखने में आया है। आज हमें गद्य और पद्य के ओजस्वी लेखकों की एक बड़ी संख्या प्राप्त है, जो एक उदीयमान भारत के अपने स्वप्नों को डोगरी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिये लालायित है। पहाड़ी कला, संसार भर में विख्यात है। समस्त विश्व के अजायब-घर और कला - संग्रहालय सुन्दर पहाड़ी लघुचित्रों के नमूनों को अपने पास रखते हुए गर्व का अनुभव करते हैं, जो कि रंग - रचना में इतने समृद्ध और विवरण-शीलता में इतने सुकुमार हैं कि यद्यपि वह विलक्षण सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण अब लुप्त हो चुका है जिसने पहाड़ी चित्रकला को जन्म दिया था. तथापि ये चित्र-रचनाएं स्वयं अपने में ही उस सृजनात्मक प्रतिभा का प्रमाण हैं, जिसका डोगरा जन प्रदर्शन कर सकते हैं। डोगरों का युद्धस्थलीय शौर्य तो प्रसिद्ध है ही, परन्तु डोगरा व्यक्तित्व का यह दूसरा पक्ष भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है, जिसमें लय-ताल और अनुरूपता इन लघुचित्रों के निर्माण में एकाकार हो गई है।

चित्रकला और संगीत का परस्पर घनिष्ठ संबंध है, और बहुत बार तो स्वयं ये चित्र ही विभिन्न रागों को अभिव्यंजित करते हैं। यह बात हमें लोक-संगीत की ओर आकृष्ट करती है, जोकि एक दूसरा पहलू है, जिस का इन खण्डों में प्रतिपादन हुआ है। लोक-संगीत हमारे देहातों में सर्वाधिक प्रचलित सामूहिक मनोविनोद का एक साधन है और हमारे पहाड़ी गीतों की मोहक ध्वनि, दैनिक जीवन के सौन्दर्य और आनंद को प्रगुणित करती है।

इन खण्डों में पहाड़ी वास्तुविद्या का भी निरूपण हुआ है, और निम्नतर शिवालिक (पर्वतमाला) के बीच की, विशेषत: भभोर और करीमची की पुरातत्वविषयक महत्मपूर्ण खुदाईयों का उल्लेख भी किया गया है ।

इस प्रकार उक्त दोनों खण्डों में डोगरों की सांस्कृतिक एवं कलासंबधी गतिविधियों के व्यायक स्वरूप को संक्षेप में वर्णन करने का यत्न किया गया है। यह श्लाध्य प्रयास है, और यदि यह जनसाधारण में हमारी संस्कृतिक परम्पराओं के विषय में ज्ञानवृद्धि का कारण बन सके तथा विद्वानों में, इन खण्डों में संगृहीत विभिन्न संस्कृतिक पहलूओं के सम्बन्ध में गम्भीरतर अनुसंधान की इच्छा को जाग्रत कर सके तो यह प्रयास अपने ध्येय में काफ़ी सफल समझा जायेगा।

जम्मू — कर्णसिंह

८ मार्च, १९६५ — सदरे-रियासत

भूमिका

(ग्रन्थ के मूल लेखक द्वारा)

एक साहित्यिक इतिहास के लिखने के लिये किसी यत्नसाध्य औचित्य की तलाश में बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं, जोकि न केवल भूतकाल की साहित्यिक रचनाओं को लेखवद्ध-रूप में स्थिरता देता है और इस प्रकार कालगति के विस्मृति जनक प्रभावों के विरुद्ध स्मृति-वर्धक रसायन का काम देता है बल्कि आलोचना की एक ऐसी ज्योति को चमका देता है जिस से कि साहित्य के भावी प्रवाह का पूर्वाभास और निर्णय, किसी अंश तक, सम्भव हो जाता है। साहित्यिक इतिहास उन रत्न रूप कृतियों को जिन की इतिहास के अभाव की दशा में विलुप्त हो जाने की आशंका रहती है, एक निधि के रूप में सुरक्षित कर देता है, जिन (रत्नों) को साहित्य अपने क्रमविकास की परिपूर्णता के मार्ग में वीच में ही छोड़ देता है, उन्हें यह इतिहास उन के स्थानीय मूल्य के अनुसार कोटि के अन्तर्गत ले आता है। ऐसा कोई भी इतिहास जो विभिन्न ग्रन्थों और उनके लेखकों के विषय में समाचार पत्रों की भांति केवल सूचनामात्र लेखवद्ध करता है और चिन्तन के मौलिक तरंगों की खोज के विषय में उपेक्षा करता है, उसे साहित्यिक इतिहास की बजाय एक ग्रन्थ-सूचोपत्र की संज्ञा देना ही अधिक समुचित होगा। जिस प्रकार स्वयं साहित्य अपनी मान-रज्जु (समुद्र की गहराई मापने का मानदण्ड) को धरातल से बहुत नीचे गहराई में जीवन की गम्भीरता को मापने के लिये उतारता है, ठीक उसी प्रकार एक

साहित्यिक-इतिहास के लिये आवश्यक है कि वह उस साहित्य का समीक्षात्मक परिचय जुटाने के साथ २, उस साहित्य के निर्माण में काम आने वाली विभिन्न चिन्तन शक्तियों और प्रभाव-तरंगों का परीक्षण भी करे।

डोगरी कला और साहित्य का संक्षिप्त इतिहास लिखने की जरूरत और वाञ्छनीयता को सभी ओर से अनुभव किया जाता था।

परन्तु कुछ कठिनाइयां थीं जो कि साहित्य के विभिन्न स्तरों के विकास के सूक्ष्म निरीक्षण के मार्ग में, जो कि साहित्यिक गतिविधियों में समन्वय लाता है और जिस में से होकर डोगरी साहित्य अपने नवीनतमरूप और प्रतिष्टा को प्राप्त कर सका है, खड़ी थीं, उन्होंने कई एक उत्साही जनों को हताश कर डाला। लेकिन इस दिशा में किया गया प्रस्तुत साहस एक पूर्ण प्रमाणिक सर्वांगपूर्ण परियोजना के रूप में नहीं, बल्कि केवल एक विनम्र प्रारम्भ के ढंग पर किया गया है। और जैसा कि प्रत्येक प्रारम्भिक प्रयास में होता है, प्रस्तुत कृति कई त्रुटियों तथा कुछ लाभ दोनों से युक्त है।

डोगरी की साहित्यक परम्पराएं सुदूर अतीत में, महाराज रणजीतदेव और महाराज रणवीरसिंह के शासन काल तक उपलब्ध होती हैं जबकि यह प्रदेश हत्यापूर्ण संघर्षों की दुःखद दशा से मुक्त हो कर शान्ति कालिक कार्य करने की दिशा में अग्रसर हो पाया था। महाराज रणवीर सिंह के पूर्ववर्ती महाराज गुलाबसिंह को तो अपनी सैनिक हलचलों से इतनी फुर्सत ही नहीं मिली कि वे साहित्यक अध्यवसाय की दिशा में अग्रसर हो पाते। अत एव प्रस्तुत रचना का प्रारम्भिक विन्दु महाराज रणवीर सिंह के समय को ही बनाना सौकर्यपूर्ण और उपयोगी होगा। साहित्यक दृष्टिकोण से इस से पूर्वतर समय अपेक्षाकृत धुंधलेपन से आवृत है जिस के लिये मात्र अविरत अनुसंधान ही लाभकारी हो सकता है।

राजा रणजीतदेव के शासन काल में हुए कवि दत्तू की मात्र एक कविता 'किल्लियाबत्तना छोड़ी दित्ता' ही लेखवद्ध रूप में उपलब्ध होती है । फिर रणवीरसिंह के शासनकाल में ही डोगरी भाषा को राज्य को सरकारी भाषा के स्तर पर लाने के लिये यत्न हुआ । इस निर्णय से अवश्य ही डोगरी भाषा को कुछ महत्व प्राप्त हुआ होगा और और उसे उन लोगों से मान्यता मिली होगी जो इस पर अपनी घृणा नहीं उडेल पाये, जैसा कि उन्होंने दो वर्ष पूर्व किया । परन्तु डोगरी के साहित्य क्षेत्र में उस समय कृतित्व की कमी रही जान पड़ती है, और एक डोगरी व्याकरण, एक सैनिक ड्रिल की नियम पुस्तक तथा संस्कृत से कुछ अनुवाद की रचनाओं के इक्के दुक्के प्रत्यनों के सिवाय कोई साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं है । कुछ समय पहले श्री प्रशान्त ने कुछ गद्य साहित्य खोज निकाला है जिससे प्रकट है कि महाराजा रणवीरसिंह के समय में गद्य-साहित्य ने पर्याप्त प्रगति कर ली थी । इस सम्बन्ध में जानकारी के लिये डोगरी अनुसाधन संस्थान (डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्यूट) द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले श्री प्रशान्त के लेख 'डोगरी गद्य का विकास' का अनुशीलन उचित होगा । और फिर, यह बूंद २ का स्रोत भी जिस का रणवीर सिंह के शासन-काल में उद्गम हुआ, पुनः उपेक्षा की मरुभूमि में खो गया और तब तक उसी दिशा में पड़ा रहा जब कुछ उत्साही जनों ने स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व इसे ढूंढ निकाला और इसके प्रवाह में अपने स्फूर्तिमय योगदानों के द्वारा पुष्टि का संचार किया ।

परन्तु कला के सम्बन्ध में यह कथानक एक दूसरे ही ढंग का है, क्योंकि जीवन के समान कला की गति किसी पूर्व निश्चत और नियत मार्ग पर नहीं चलती और वह काल गति के सीधे मार्ग से विचलित हो जाया करती है । यही कारण है कि इस डोगरा-भूमि में साहित्य की अपेक्षा कलात्मक रचनाओं का अधिक पुराना रिकाड हमें उपलब्ध होता है ।

रणवीरसिंह के शासनकाल से लेकर डोगरी साहित्य के वर्तमान पुनरुत्थान तक लगभग ९० वर्ष का मध्यवर्ती समय फिर, मानों एक दीवार के कारण दृष्टि से ओझल है। गंगादत्त और रामधन की कुछ इनी गिनी और खण्डित रचनाएं ही इस व्यापक अन्धकार को किसी अंश में हलका कर पाई हैं। इन उपलब्ध खंडों में अभिव्यक्ति की सरसता, रचना-सौष्ठव एवं चिन्तन-उत्कर्ष उस चरम उत्तमता की सूचना देता है, जो अकेले यत्न से उपलब्ध नहीं हो सकता था। कवि-प्रतिभा क्रमिक उड़ानों से उड़ती है और साहसी जनों के लिये, अनुसंधान करके अभी तक अनखोजे और अज्ञात पदार्थों की समृद्ध उपज काटने के वास्ते क्षेत्र खुला पड़ा है।

यह ग्रन्थ पहले "डोगरी साहित्य और पहाड़ी चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास" नामक एक ग्रन्थ के एक भाग के रूप में था। परन्तु बाद में इसे दो भागों में—(१) डोगरी लोक-साहित्य और पहाड़ी चित्र-कला : एक परिचय और (२) आधुनिक डोगरी साहित्य : एक परिचय—में विभक्त करना उचित समझा गया।

प्रस्तुत कार्य में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, और उन कठिनाईयों का मुख्य कारण प्रामाणिक अभिलेखों (रिकार्डों) का अभाव ही रहा है। इतिहास हमारे लिये कभी एक दृढ़ लक्ष्य नहीं रहा है, और अपने को अज्ञात रखने की हमारी इच्छा एवं अपने को सामान्य जनता के समकक्ष बनाये रखने की भावना ने बात को कठिनतर बना डाला है। अपरिमेय, विशाल और समृद्ध अनुभूतियों तथा अद्‌भुत स्वर-सौंदर्य से युक्त लोक-गीतों का विशाल और विविध समूह भले ही संयुक्त प्रयत्न का फल-स्वरूप रहा हो, परन्तु उनकी रचना में एक प्रतिभासम्पन्न मनोबल देखा जा सकता है, यद्यपि वह अज्ञात ही बना रहता है। भविष्य में आन्तरिक प्रयोगो द्वारा, अनुसंधान से शायद कुछ अधिक सूचनाएं प्रकाश में आ सकें, परन्तु वर्तमान में उस साहित्यकार के कोई अधिक चिन्ह उपलब्ध नहीं हैं।

इस ग्रन्थ के लेखन में जो कि अपनी प्राचीन परम्पराओं और वतमान उपलब्धियों को लिपिबद्ध करने का उद्देश्य लेकर आरम्भ किया गया था, एक निर्माणात्मक अभिगम अपनाया गया है। दोष और त्रुटियां दिखाई गई हैं, परन्तु चिरप्रिय मूल्यों को विक्षत या नष्ट करने के लिये नहीं, न ही वर्तमान लेखकों को लिखने से रोकने के लिये, बल्कि केवल सब बातों को अपने समुचित परिप्रेक्ष्य रूप में सामने लाने के लिये हीं ऐसा किया गया है।

लिखित साहित्य देवीदित्ता से आरम्भ किया गया है, जो अधिकतर 'दत्तू' के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि उससे पूर्वतर कोई लेखबद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं हैं। आधुनिक साहित्य और वर्तमान लेखकों के विषय में लिखने विषयक भारी जोखिमों की उपेक्षा नहीं की गई है, बल्कि दूसरी ओर उनकी विद्यमानता के अवगम ने लेखक को यथा सम्भव-विषय परक बनाने में सहायता दी है। परिपूर्ण विषय-परकता न तो सम्भव थी और न ही उसका दावा किया गया है; लेखक वर्तमान लेखकों और वर्तमान युग के बहुत ही निकट रह रहा है जिससे वह एकदम बेलाग होने की डींग मार नहीं सकता। अपनी ओर से पूर्णयत्नशील रहने पर भी व्यक्तिगत पक्षपात और पूर्वाग्रह शायद कहीं घुस गया हो, परन्तु सामूहिक तौर पर सभी के लिये न्यायशील रहने का सच्चा यत्न किया गया है। इसके सिवाय, वर्तमान साहित्य के लिये प्रोत्साहन देने वाले मूल्य और परिस्थितियां बदल भी सकती हैं और उसके फलस्वरूप शायद पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता उत्पन्न हो जाय। जैसा भी हो, इसके कारण 'आधुनिक डोगरी साहित्य एक परिचय, लिखने की वांछनीयता में कमी नहीं आनी चाहिए।

डोगरी साहित्य के प्रसंग में डोगरा भूमि की सीमाओं के निर्धारण के लिये एक प्रयास किया गया है जोकि कट्टर मानचित्र से समूचा मेल नहीं रखता, क्योंकि कला की भांति साहित्य में भी संस्कृति, भाषा और भावनाओं की समानता से ही सही सीमाओं का निर्धारण होता है। कला या साहित्य किसी संकीर्ण हदबन्दी

को मान्यता नहीं देता। इसकी अपनी विभाजन-रेखाएं, जोकि या तो अभिव्यक्ति के विविध स्वरूप अथवा अनुशीलन की विभिन्न रीतियां ही हुआ करती हैं, घटा-बढ़ी से रहित नहीं होतीं और केवल उसकी समृद्ध विविधता के सुकर वर्गीकरण में सहायता देती हैं तथा मूल में इसके एक मात्र अविभाज्य आत्मतत्व से अनुन्धित रहती हैं। यही कारण है कि 'कुन्जू और चंचलो' के लोकगीत और अन्य गीत जोकि जम्मू में उतने ही प्रसिद्ध हैं जितने कि कांगड़ा और चम्बा में, डोगरी साहित्य के उतने हो अंगभूत हैं जितनी कि आवारा, सुदर्शन, कौशल और हरीश पादरे द्वारा लिखित कवितायें। साहित्य अथवा कला का एक विशेष भाषा या माध्यम द्वारा अध्ययन, जोकि उनकी प्रादेशिक सीमाओं के प्रति एक आवेशपूर्ण ममता से युक्त हो, सम्भव है, कि सिर्फ एक अनिष्ट प्रयत्न सिद्ध हो, क्योंकि हो सकता है कि विचारों और अभिव्यक्तियों की वैसी ही प्रवृत्तियां उन सीमाओं के पार भी प्रचलित हों, और उनका इस प्रकार की एक रचना से पृथक्करण जोकि उन को लेखवद्ध करने का दावा करती हो, रचना की सफलता में वाधक हो। इंग्लैंड से बाहर लिखी गई अंग्रेजी-भाषा की रचनाएं भी अंग्रेज़ी साहित्य की उतनी ही अच्छी अंगभूत हैं, जितनी कि वे, जो कि उस भाषा की अपनी भूमि में लिखी गई हों। प्रस्तुत ग्रन्थ में भौगोलिक सीमाओं की अवहेलना तो नहीं की गई है परन्तु जहां कहीं ऐसी सीमाएं भावनात्मक एकता और प्रस्तुत रचना के प्रतिपाद्य विषय में वाधक बन कर खड़ी हुई हैं उनकी उपेक्षा की गई है। क्योंकि अपनी मानी जाने वाली रेखाओं से बाहर भी बहुत अंशों में डुग्गर मौजूद है। हो सकता है कि राजनैतिक तौर पर कुछ इलाके विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्धित हों, परन्तु उन सब के भाषा सम्बन्धी और सांस्कृतिक प्रभावों से प्रत्यक्ष दृश्यमान आत्मतत्व सर्वथा अविकल रूप में स्थिर हैं।

इस ग्रन्थ के लिखने और वास्तविक प्रकाशन के बीच में लगभग तीन वर्षों का समय बीत गया। चीन द्वारा भारत पर

आक्रमण और श्री जवाहरलाल नेहरू के निधन जैसी कुछ प्रभावकारी घटनाएं इसी अन्तराल में घटित हुईं । कुछ नवीन कवि और लेखक साहित्यिक रगमंच पर उतरे और कुछ पुराने लोगों ने अपनी रचनाओं में बहुमूल्य अभिवृद्धियां कर दीं । इस लिये ग्रन्थ की पुनरावृत्ति आवश्यक हो गई, और अभिवृद्धियों का विवरण परिशिष्ट लेख में देना पड़ा । यदि किसी लेखक या कवि का वर्णन इस ग्रन्थ में छूट गया हो तो वह अभाव कोरी असावधानता के कारण ही समझा जाना चाहिये ।

जम्मू और कश्मीर कला संस्कृति व भाषा अकादमी के लिये धन्यवाद मेरी ओर से आवश्यक है जिसकी संरक्षकता में इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ ।

मैं डाक्टर कर्णसिंह जी, सदरे-रियासत के लिये भी हार्दिक आभार-भावना प्रकट करना चाहता हूं जिन्होंने इस ग्रन्य और इससे पूर्वतर ग्रन्थ 'डोगरी लोक साहित्य और पहाड़ी चित्रकला' के लिये अत्यन्त कृपा पूर्वक प्राक्कथन लिख कर मुझे प्रोत्साहित किया । इस ग्रन्थ का लिखना एक उलझावपूर्ण कार्य रहा है, परन्तु सर्वश्री रामनाथ शास्त्री, डी. सी. प्रशान्त, दानू भाई पंत, अनन्तराम शास्त्री, मधुकर और वंसीलाल गुप्त के सौहार्द के कारण रचना एक निश्चित परिपूर्णता को प्राप्त कर पाई है । अस्तु मैं इन सज्जनों का धन्यवाद करना चाहता हूं । आचार्य हसन शाह के प्रति भी में अपने को अभारी समझता हूं जिन्होंने इस ग्रन्थ का आमूल निरीक्षण किया और कुछ उपगोगी सुझाव दिये ।

यदि इस ग्रन्थ के लिखने के प्रयास, से इसकी अन्य साहित्यक त्रुटियों के बावजूद भी, लेखकों और विद्वानों को डोगरी के भाषा सम्वन्धी पहलुओं पर और अधिक यत्नशील होने की प्रेरणा प्राप्त हो सके और यदि ग्रन्थ साधारण जनता में डोगरी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अधिक जानकारी दिला सके तो मैं अपने यत्न की परिपूर्ण सफलता मानूंगा ।

—नीलाम्बर देव शर्मा

प्रथम भाग

सामाजिक परिस्थितियां

प्रत्येक संस्कृति की भांति प्रत्येक भाषा में एक ऐसा समय आता है जिसे नव-जागरण-युग अथवा पुनरुत्थान-काल की संज्ञा दी जाती है। पिछले बीस वर्षों का समय डुग्गर-भूमि, इसकी कला, साहित्य और संस्कृति के लिये पुनर्जागरण का युग रहा है। यह पुनर्जागरण क्या है तथा इसके कारण एवं प्रयोजन क्या थे ?

जम्मू-कश्मीर राज्य के जम्मू प्रान्त में रहने वाले लोग साधारणतया डोगरा कहलाते हैं। इनकी अपनी भिन्न भाषा है, इनको परम्परा और सामाजिक जीवन विशिष्ट हैं तथा इनके आचार-व्यवहार एवं रीतिरिवाज भी विशिष्ट हैं। डोगरी की सत्ता और इसका उद्गम स्वतन्त्र हैं। इसका उद्भव प्राकृत से हुआ है, जिससे संस्कृत का विकास हुआ था। डोगरी का अपना निजी माधुर्य है, अपना विशिष्ट आकर्षण है। और इसके साथ ही पहाड़ी संगीत की मधुरता और स्वर-मोहकता है तथा डोगरा-पहाड़ी-चित्रकला की संपूर्णता और महानता है। संगीत, चित्रकला तथा भाषा की अपनी इस महान विरासत के प्रति डोगरों की यह चेतना पहले इतनी तीव्र और मुखर कभी नहीं हुई थी जितनी

गत बीस वर्षों में हुई है । बहुत पहले भी, राजा रणजीतदेव के शासनकाल में दत्तू नामक एक महान कवि हो चुके हैं, जिनकी एकमात्र डोगरी कविता, जो इन शब्दों से आरम्भ होती है :— 'किल्लिया बत्तना छोड़ी दित्ता' (मैंने अकेले बाहर जाना छोड़ दिया है) इस भाषा की उत्कृष्ट रचनाओं में से एक है । महाराजा रणवीरसिंह के शासनकाल में डोगरी इस राज्य की राजभाषा बनी लेकिन दुर्भाग्यवश, इस काल में, डोगरी में लिखने वाले महान् साहित्यकार बड़ी संख्या में नहीं थे । एकमात्र नाम गंगाराम का मिलता है, जिनकी रचना 'कण्डी दा वसना' (कण्डी का जीवन) से लेखक की कला-प्रवीणता और परिपक्वता का पता चलता है । एक लाला रामधन थे जिनकी कविताओं के कुछ एक अंश मिलते हैं । इनमें से सर्वोत्तम है उनकी 'हस्सना खेडना' (हंसना खेलना) नामक रचना । लाला रामधन महाराजा प्रतापसिंह के शासन-काल में हुए हैं । इसके बाद, ऐसा लगता है कि वर्षों तक डोगरी की उन्नति के लिये कोई सक्रिय प्रयत्न नहीं हुआ । राजा रणजीत-देव और महाराजा प्रतापसिंह के शासन-काल की अवधि के बीच के समय में इस प्रकार की कई दरारें मिलती हैं ।

अपनी कला, संकृति तथा भाषा के प्रति डोगरों की इसी उदासीनता के कारण यहां लिखित-सामग्री का अभाव रहा है । और यही अभाव इस क्षेत्र के इतिहास तथा इसकी भाषा के समुचित मूल्यांकन में बाधक हुआ है । डोगरा जाति अपनी वीरता के लिये विश्व-भर में प्रसिद्ध रही है । इसने चित्रकला के क्षेत्र में अपनी विशिष्टता का प्रदर्शन किया है, जिसने न केवल डोगरों को ही विशेष महत्व प्रदान किया है वरन् जिससे पूरे भारत के चित्रकला आन्दोलन को ख्याति मिली है । कला के प्रसिद्ध आलोचक श्री जी. डब्ल्यू आर्चर तथा श्री ओ. सी. गाङ्गुलि ने इन डोगरा-पहाड़ी चित्रों को भारतीय कला एवं इसके बहुमूल्य कला-भण्डार का चरमशिखर बताया है । भारतीय संगीत में पहाड़ी-दुर्गा-राग

तथा लोक-गीतों, लोक-साहित्य एवं लोक-नृत्यों के योगदान को भारतीय जीवन तथा संस्कृति को समृद्ध बनाने में विशेष महत्व प्राप्त है। शिक्षा-सुविधाओं के विस्तार तथा उभरते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन के कारण लोग अपनी समस्याओं के प्रति सचेत होते जा रहे थे। अंग्रेजी शासन और अंग्रेज़ी भाषा को विदेशी समझा जाता था। इन्हें यहां से निकलना चाहिये। परन्तु आगे क्या होगा? राष्ट्रीय सरकार!—पर इसका गठन कैसा होगा और हमारी राष्ट्रभाषा कौन सी होगी? यह विवाद मुख्यतः राजनैतिक था तथा हिन्दी और उर्दू इस विवाद के विषय बने हुए थे। हिन्दी को विकसित और समृद्ध बनाने के लिये यत्न किये जा रहे थे ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि इस भाषा में राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करने की क्षमता विद्यमान है। इस भावना के साथ-साथ लोगों के मन में क्षेत्रीय भाषाओं और मातृभाषाओं की भावना भी अंकुरित होने लगी। जब कि हिन्दी देश की राजभाषा हो सकती है वहां प्रदेशों के प्रशासनिक कार्य तथा स्कूलों और विश्व-विद्यालयों तक दी जाने वाली शिक्षा की व्यवस्था क्षेत्रीय भाषाओं में होनी चाहिये। बंगला, मराठी, गुजराती, तामिल तथा तेलुगु की सम्पन्नता से देश के अन्य भागों में रहने वाले लोगों के मन में भी असमिया, उडिया, पंजाबी तथा कश्मीरी आदि भाषाओं को समृद्ध बनाने की भावना का उदय हुआ।

जम्मू की भांति पंजाब और कश्मीर के बीच में स्थित होने के कारण(जहां तक इसके भाषाविषयक आकार का सबन्ध है) यह भाषा इन आन्दोलनों से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। डुग्गर में बहुत से ऐसे चेतनाशील व्यक्तित्व थे जिन्हें अपनी कला और संस्कृति की इस हास्यास्पद हीनता को देख कर तीव्र क्षोभ हुआ। भला उन्हें ऐसी ग्लानि क्यों होती? उन्होंने देश को महान वीर दिये थे, चित्रकला का समृद्ध भण्डार दिया था तथा उनका संगीत और उनका लोक-साहित्य अपने अस्तित्व का प्रदर्शन

कर चुके थे। यहां तक कि वास्तुकला और मूर्तिकला के क्षेत्रों में भी इनकी किरमची, बबोर (पुसमस्टा), मानसर, मोहरगढ़, रियासी और पुन्छ की कला-कृतियां यह प्रमाणित कर चुकी थीं कि वे किसी से भी पीछे नहीं रहे हैं। ऐसी कला और संस्कृति को अपनाने में, जो वस्तुत: उनकी अपनी ही थी, भला वे संकोच क्यों करते ? अपने आप को विच्छिन्न अनुभव करना तथा यह समझना व्यर्थ था कि वे देश के अन्य सांस्कृतिक दलों से पिछड़ हुए हैं। अभाव केवल यही था कि न तो वे भलीभांति संगठित ही थे और न उनकी इन सांस्कृतिक उपलब्धियों को समुचित प्रसार ही मिल रहा था।

डोगरी संस्था : इन्हीं लक्ष्यों को लेकर सन् १९४३ में डोगरी-सस्था की स्थापना हुई। उन दिनों यहां हिन्दी साहित्य मण्डल नामक संस्था चल रही थी और साहित्यिक गतिविधियों के प्रसार का कार्य कर रही थी। बहुत से युवक और प्रतिभाशाली लेखक इसकी गोष्ठियों में भाग लेते थे और उनमें अपनी कहानियां तथा कविताए पढ़ कर सुनाया करते थे। 'भारती' तथा 'उषा' नामक दो हिन्दी पत्रिकाएं भी कुछ काल तक प्रकाशित होती रहीं। प्रो० रामनाथ शास्त्री, दीनूभाई पन्त, प्रशान्त, भगवत प्रसाद साठे, श्यामलाल शर्मा, बंसीलाल गुप्ता तेजराम खजूरिया, शकुन्तला सेठ, सुशीला तुली तथा चांद मल्होत्रा आदि हिन्दी साहित्य मण्डल के सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या डोगरी भाषा-भाषी थी। उन्होंने महसूस किया कि उन्हें अपनी मातृ-भाषा डोगरी के प्रति अपना दायित्व उतना ही पूरा करना है जितना कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति भी। डोगरी में सर्व-प्रथम कविता लिखने वाले पंडित हरदत्त थे। पर वह अकेले नहीं थे। दीनूभाई पन्त भी डोगरी कविता लिखने लगे थे। भगवत प्रसाद साठे और विश्वनाथ खजूरिया डोगरी में कहानियां लिख रहे थे। हिन्दी तथा डोगरी की ये गतिविधियां सौजन्यता-पूर्ण

वातावरण में अग्रसर होती रहीं, यद्यपि बीच-बीच में कभी कभी कुछ साम्प्रदायिक और अवसरवादी लोग इनके बीच विच्छेद और घृणा के बीज बोने का यत्न भी करते थे।

राजनैतिक स्थिति : और तब १९४७ में भारत स्वाधीन हो गया। यहां एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गई। हैदराबाद और जूनागढ़ की भांति कश्मीर का भी भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी के साथ विलय नहीं हुआ। साम्प्रदायिक स्थिति बहुत बिगड़ रही थी। पुन्छ में पाकिस्तान के समर्थकों ने मुसीबत खड़ी कर दी थी। जम्मू-कश्मीर राज्य की सेना की राज-भक्ति विभाजित हो गई। इस साम्प्रदायिक तनाव और अनिर्णीत राजनैतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप कुछ बहुत दुर्भाग्य-पूर्ण और अवांछित घटनाएं देखने में आईं। घर अपने ही बीच बंट चुका था। भाई-भाई का वैरी हो गया था। मीरपुर, पुंछ, भिम्बर, राजौरी और कोटली में पाकिस्तानी शस्त्रों से लैस और पाकिस्तानी एजेण्टों द्वारा प्रेरित स्थानीय लोगों द्वारा एक खूनी नाटक का आरम्भ हुआ। उधर, कश्मीर में, श्रीनगर की ओर द्रुतगति से बढ़ रहे आक्रमणकारियों ने मुज़फ्फराबाद पर अधिकार कर लिया। जम्मू प्रान्त और इसके आस-पास हिन्दू-साम्प्रदायिकता भड़क उठी। महाराजा हरिसिंह ने भारत के साथ विलय के लिये आवेदन-पत्र भेजा, भारतीय सेनाएं कश्मीर में भेज दी गईं।

स्थिति बड़ी विकट थी। सेना और मिलेशिया के सिपाही बाहर से आने वाले शत्रु से तो जूझ सकते थे किन्तु भीतरी शत्रुओं से कैसे निपटा जाए? लोगों को संगठित करना था। वे हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और मुस्लिम कान्फ्रेंस की साम्प्रदायिक राजनीति से तंग आ चुके थे, जिन्होंने यह सारा रक्तपात कराया था। वे अब शांति और सुरक्षा के इच्छुक थे।

उन्हें इन निकट-भूत में घटी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के लिये पश्चात्ताप हो रहा था।

ऐसे समय में युवक अध्यापकों, छात्रों, कलाकारों और लेखकों का एक समुदाय आगे बढ़ा। ये ऐसे व्यक्ति थे, जो अपने सेवाभाव, आत्म-त्याग तथा अपने रचनात्मक कार्यों के दृष्टांतों द्वारा लोगों में प्रेरणा का संचार कर सकते थे, उन्हें प्रोत्साहित कर उनमें स्फूर्ति भर सकते थे। डोगरी संस्था नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में चल रहे इस राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़ी। और इस प्रकार सभी राष्ट्रीय विचारों वाले तथा देशभक्त लोगों का एक सांझा मोर्चा खड़ा होगया। डोगरी संस्था ने 'एक ही रास्ता' नाम से एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिस में इसने इस आपातिक परिस्थिति में अपनी नियत कार्य-दिशा निर्धारित की। नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में चल रहे सांझे मोर्चे का समर्थन करना और उसे सहयोग देना इसका नारा था। साम्प्रदायिक वर्ग के लोगों ने इसका विरोध किया परन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा के हेतु टिड्डीदल की भांति बढ़ते चले आ रहे लोगों के इस उत्साह-पूर्ण प्रवाह को रोकना इस निर्बल विरोध के बस की बात नहीं थी।

सामन्तशाही के अन्त के लिये उमड़ती हुई क्रोध भरी रोष की इस भावना को स्वस्थ और रचनात्मक कार्यों की ओर उन्मुख किया गया। प्रो० त्रिलोकी नाथ, प्रो० रामनाथ शास्त्री, दीनू भाई पन्त तथा प्रशान्त ने इस दिशा में विलक्षण कार्य किया। इन्हें स्वर्गीय धन्वन्तरि के श्रेष्ठ उदाहरण से प्रेरणा मिली, जिन्होंने लोगों की प्रवृत्ति को समझा था, उसे प्रेरणा दी थी और प्रोत्साहित किया था। दल और सम्प्रदाय की भावना का तीव्रगति से ह्रास हो रहा था। श्री निवास शाह, परशुराम नागर, संसारचन्द्र बड़ू, नज़ीर अहमद समनानी तथा ओम सराफ़ और ऐसे बहुत से अन्य व्यक्तियों ने राष्ट्रीय विचारों में एकरूपता उत्पन्न करने का भरसक प्रयास किया। अल्पवयस्क वर्ग, जिसमें मुख्यतः

छात्र ही थे—बलराज पुरी, वेदपाल दीप, वेद भसीन, यशशर्मा, रामनाथ मींगी, प्रेमसराफ़ तथा नीलाम्बर देव ने इस राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक आन्दोलन को सशक्त सहयोग दिया। इन्होंने जगह-जगह घूम कर जनता के विभिन्न वर्गों में जागरण और चेतना का संचार किया।

सन् १९४८ में जम्मू से तीस मील दूर टिकरी नामक स्थान पर एक राजनैतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें डोगरी संस्था ने भी भाग लिया। प्रो० रामनाथ शास्त्री द्वारा रचित 'बावा जित्तो' नामक प्रथम डोगरी नाटक वहां खेला गया। 'कुड' नामक लोकनृत्य तथा एक चित्रकला प्रदर्शिनी का भी आयोजन हुआ। जम्मू के इतिहास में यह पहला अवसर था जब डोगरा संस्कृति के संगीत, साहित्य तथा चित्रकला, इन तीन विभिन्न स्वरूपों को जनता के सम्मुख एक साथ प्रस्तुत किया गया। इसके बाद १९४९ में एक विशाल चित्रकला प्रदर्शिनी जम्मू में हुई। इस प्रदर्शिनी में डोगरा-पहाड़ी सम्प्रदाय के सुन्दर और दुष्प्राप्य नमूने संग्रहीत थे। इससे लोगों को अपनी उस महान् विरासत का बोध हुआ जिसके विषय में वे बहुत समय से अनभिज्ञ रहे थे। अपने देश और अपनी संस्कृति के प्रति इस प्रेम ने उनमें अतीत की भूली-बिसरी स्मृतियां जागृत कीं और इससे साहित्य में देश-भक्ति की भावना का उदय हुआ।

डोगरी का उत्थान : राजनैतिक कार्यकर्ताओं को लोगों में विभिन्न रचनात्मक उद्देश्यों के प्रति गतिशीलता उत्पन्न करने के हेतु जब विभिन्न गांवों में जाना पड़ता तो इन कार्य-कर्ताओं और जनता के बीच एक अद्‌भुत बन्धुत्व की भावना का उदय होता। उन लोगों को, जिन्हें अज्ञानी और अशिक्षित समझा जाता था, जब ये कार्यकर्ता डोगरी में सम्बोधित करते तो अशिक्षित कहलाने वाले ये लोग,

जिन्हें किसी विद्यालय में जाकर विद्या-लाभ का कभी अवसर नहीं मिला था, इन्हें बड़ी उत्सुकता और सजीव रूप में सुनते, जबकि इसके विपरीत हिन्दी अथवा उर्दू में की जाने वाली बातें उन्हें अपेक्षतः कम मात्रा में प्रभावित करतीं। इस नवीन चेतना से संतुलन में परिवर्तन आया और मान्यताओं का पुनः समंजन हुआ। दीनूभाई पन्त, रामनाथ शास्त्री, वेददीप, यश शर्मा आदि ने अधिक उत्साह और बल के साथ डोगरी में लिखना आरम्भ किया। किशन समैलपुरी और परमानन्द अलमस्त भी इनके साथ हो लिये। और जब ये कवि विभिन्न नगरों और गांवों में जाकर अपनी डोगरी रचनाएं पढ़ कर सुनाने लगे तो वहां के स्थानीय लेखकों ने भी डोगरी में लिखना आरम्भ किया।

डोगरी में देशभक्ति की भावना : देशभक्ति की इस नवीन भावना से आन्दोलित इन कवियों ने अपने देश की प्रशंसा में गीत लिखे। प्रायः हर एक कवि के गीतों में डुग्गर के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति होती थी। और ये गीत श्रोताओं को उनकी जन्म-भूमि के प्रति श्लाघा और सम्मान की भावना से ओत-प्रोत कर देते थे। ये छोटी छोटी कविताएं अधिक प्रभाव-जनक होतीं जबकि, इनकी तुलना में, लम्बे और जटिलता-पूर्ण भाषण नितान्त प्रभावहीन होते। आपातिक परिस्थितियों में उद्भूत होने के कारण विपुल संख्या में कविगण अपनी कविता में देशभक्ति की भावना को मुखरित करने लगे। डुग्गर की प्रशंसा में एक देशभक्ति का गीत लिखा गया जो विचार और धुन की दृष्टि से भारत के राष्ट्रगान के बिल्कुल अनुरूप था :

'सुर्गे नेआ देस साढ़ा एदे गै गुण गागे।'

(हमारा यह डुग्गर देश स्वर्ग-समान है। हम इसी का गुण-गान करेंगे) इस प्रदेश के कश्मीर, भद्रवाह तथा लद्दाख आदि विभिन्न क्षेत्रों की सजातीयता का संबन्ध जम्मू से जुड़ा हुआ है,

अतः इसके सम्मान और इसकी सुरक्षा के लिये जो भी बलिदान दिया जाए कम है।

पंडित हरदत्त को, जो इसी देश-प्रेम के रंग में रंगे हुए थे, डुग्गर और इसके लोगों की अकर्मण्यता और जडता को देख कर बहुत क्षोभ हुआ। आपने इन्हें प्रबुद्ध करने तथा इस तन्द्रा से झंझोड़ने के लिये एक गीत लिखा :

'ओ डोगरे देसा, किय्यां गुजारा तेरा होग ?'

(ओ डोगरे देश ! तेरा निर्वाह कैसे होगा ?) सभी देश, सारा संसार जागृत है। तू इस गहन-निद्रा में क्यों डूबा हुआ है। यह सोने का समय नहीं है। जाग उठो ! और अपने नेत्र उघाड़ो।

दीनूभाई पन्त १९४६ में अपनी 'वीर-गुलाब' नामक रचना में अपने पुरखों की इस धरती की रक्षा के लिये डोगरों का दृढ़संकल्प प्रकट कर चुके थे। किसी के हाथों डुग्गर को आंच न आने पाए। किसी भी कायर को युद्ध-भूमि में नहीं जाना चाहिये।

अपनी एक अन्य कविता में दीनू भाई ने डुग्गर की प्रशंसा की है, जिसकी रक्षा पीर-पंचाल की ऊंची पर्वतमाला करती है। हरी भरी चरागाहें और लहलहाते खेत जिसके सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं, तथा जो फलों और फूलों के भण्डार से भरी पड़ी है। जिसका इतिहास अपने निर्भीक योद्धाओं के शौर्यमय कार्यों तथा महात्माओं और दार्शनिकों के विवरणों से परिपूर्ण है।*

अपने एक और गीत में दीनूभाई अपने श्रोताओं को अपनी धरती के सौन्दर्य को एक कवि की आंखों से देखने का अनुरोध करते हैं। वे केवल इसी प्रकार से इसकी सराहना कर सकते हैं,

---

*मेरा देस।

क्योंकि इसकी सुषमा स्वर्ग की शोभा से तनिक भी कम नहीं है :

'मेरे देसा दा शलैपा मेरी अक्खीं कन्ने दिक्ख !'

पर कृष्ण समैलपुरी एक पग और आगे बढ़ गये :

'सुर्गे दी गल्ल नेईं ला अड़ेआ, गुण मेरे गै देसा दे गा अड़ेआ !' (स्वर्ग की बात क्यों करते हो ? मेरे देश (डुग्गर) की महिमा का गुणगान क्यों नहीं करते ?)

डुग्गर का यह प्यार डोगरों को शनैः शनैः अपने भुजपाश के घेरे में कसता चला गया। कवियों ने सरल-स्वभाव, निष्कपट परन्तु सुन्दर और वीर डोगरों की प्रशंसा में गीत गाए। आक्रान्ताओं से अपने देश की रक्षा करने के लिये इन्हें कटिबद्ध होना चाहिये। कभी-कभी डुग्गर और इसके लोगों के प्रति प्रेम के ये भाव कवियों के एक ही गीत में घुले-मिले रहते। समैलपुरी अलमस्त, दीनू, बालकृष्ण शर्मा, दीप तथा यश और कुछ बाद के रामनाथ शास्त्री, शम्भुनाथ, मधुकर तथा अन्य कई कवियों की रचनाओं को इस कोटि में रखा जा सकता है। अपनी 'डोगरे' शीर्षक कविता में दीप ने डुग्गर की शांतिप्रियता की सराहना की है। जैसे उद्यानों में फूलों की क्यारियां श्रेष्ठतम होती हैं और फूलों में चमेली का फूल सर्वाधिक सुन्दर होता है, उसी प्रकार सब देशों में भारतवर्ष श्रेष्ठ है और डुग्गर इसका श्रेष्टतम भाग है।

एक युगल-गान में एक पति-पत्नी अपने देश को आक्रमण से बचाने के लिये अपना दृढ़ संकल्प प्रकट करते हैं : 'डुग्गर देस बचाना मेरी जिन्दे !' (मेरे प्राणप्रिय ! हमें डुग्गर देश को बचाना है।) इस गीत के स्रष्टा यश शर्मा हैं।

उन दिनों कभी-कभी संकीर्ण-अतिराष्ट्रीयता के फैलने का संदेह होने लगता था। ठाकुर रघुनाथ सिह द्वारा रचित गीत : 'लैती कश्मीर कियां' (हमने किस प्रकार कश्मीर को हस्तगत

किया) यद्यपि सशक्त शैली में लिखा गया था और उसके भीतर इतिहास के उद्धरणों द्वारा डोगरों के शौर्य का अंकन किया गया था किन्तु उसमें संकीर्ण, राष्ट्रीयता का भी समावेश हो गया था । इस भाव का प्रतिवाद, 'दित्ती कश्मीर कियां' (कश्मीर का समर्पण कैसे किया) नामक गीत में यशशर्मा ने प्रस्तुत किया । इससे भी अधिक विवेकपूर्ण मन:स्थिति में विलक्षण भावों से ओत-प्रोत होकर दीनू भाई पन्त ने कहा : 'लोक मीना मारदे ए डोगरें दा देस ओ !' (लोग ताना देते हैं कि देखो यह डोगरों का देश कैसा है।) यद्यपि लोग डोगरा-प्रशासन की आलोचना करते थे परन्तु मुट्ठी भर लोगों का यह शासन जैसा डोगरों पर था ठीक वैसा ही दूसरे वर्गों के लोगों पर भी था । विवेकशील लोगों को डोगरा शब्द द्वारा किसी भ्रम में नहीं पड़ जाना चाहिये, जोकि सामन्त-शाही व्यवस्था के लिये भ्रामक रूप में प्रयुक्त होता था ।

आर्थिक परिस्थिति : देशभक्ति के इस प्रथम उत्साहपूर्ण प्रवाह में, जो विदेशी आक्रमण से उत्पन्न हुआ था, एक सार्वजनिक लक्ष्य बन चुका था तथा धनी और निर्धन, दोनों वर्गों के मतभेद दब गये थे । सभी डोगरे थे और सभी का एकमात्र लक्ष्य 'डुग्गर की एकता' को बचाना था । परन्तु ज्यों-ज्यों स्थिति सुधरती गई तथा आर्थिक संघर्ष तीव्रतर होता गया त्यों-त्यों इस सांझे-मोर्चे में दरारें प्रकट होने लगी । इस राष्ट्रीय आन्दोलन का एक चेतना-शील अंग होने के कारण कवियों ने पूर्णत: परस्पर-विरोधी तथा अवास्तविक वर्गों के इस सांझे मोर्चे के विरुद्ध आवाज़ उठाई । इससे पूर्व भी दीनू भाई पन्त किसानों और श्रमिकों का अपनी युग-पुंजित तन्द्रा से जाग्रत होने के लिये आह्वान कर चुके थे । अब उनका समय आ चुका है। धनी भूमिपतियों और साहूकारों ने ईश्वरीय प्रकोप का भूत खड़ा किया हुआ है । अब निहितस्वार्थ द्वारा खड़ी की हुई इस छलना को छिन्न-भिन्न करने का

अग्रसर आ गया है। यह गीत अंग्रेज़ी के कवि 'शैलो' द्वारा रचित (The men of England) नामक गीत की याद दिलाता है। परन्तु इस कविता की कल्पना-सृष्टि में भारतीयता की छाप है। 'बैंड़ा' (अनजुता बैल) नामक एक और कविता में दीनू ने पूंजीपतियों को एक और कोड़ा लगाया है, जो निर्धन - वर्ग का शोषण कर सम्पन्न होते जा रहे हैं। अब इस प्रकार के देशभक्ति के गीतों को गाने का समय बीत चुका था जो अब कई दृष्टियों से इस धरती के वास्तविक यथार्थ से कट चुके थे। यह नया सामाजिक यथार्थवाद देशभक्ति के उस आदर्शवादी आवेश का स्थान ले रहा था।

वेदपाल दीप, शम्भुनाथ, अलमस्त, बसन्तराम, यश शर्मा, तारा समैलपुरी, पद्मा शर्मा और रामनाथ शास्त्री डोगरी कविता में उद्भूत इस नये सामाजिक एवं आर्थिक यथार्थवाद के उद्घोषक बन गये। क्रान्ति के इस आवेश में किशन समैलपुरी ने कहा— 'हम इस युग को पलट देंगे जिस में भूख, दारिद्रय और रोगों का बोलबाला है।* अलमस्त ने ललकार कर कहा: 'तुम दूसरों को धोखा देकर स्वर्ग को नहीं पा सकते। गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही सच्चा मार्ग है।'** चूनीलाल कमला ने, जो पंजाबी कवि के रूप में अधिक प्रसिद्ध थे, कृषक-जीवन के विषय में लिखा।*** बालकृष्ण शर्मा ने किसानों और मज़दूरों को अपनी चिरनिद्रा से उदबुद्ध होने तथा एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करने को कटिबद्ध होने के लिये प्रेरित किया। वेदपाल दीप ने कहा: 'स्वतन्त्रता और सुख - सुविधाओं की देवी को इन वैभवशाली भवनों को छोड़कर निर्धन किसानों के बीच आकर रहना चाहिये। ये चालाक लोग इन्हें सदा से छलते आ

---

*प्रातकिरण : तारा समैलपुरी का भाग। **जागो डुग्गर : 'सुर्ग नेईं जान हुंदा'। ***जागो डुग्गर।

रहे हैं। इस देवी का यह कर्तव्य है कि वह इन लोगों के लिये आशा का एक नवीन संदेश लेकर आये, विद्रोह के भावावेश में यश शर्मा को लगा कि जनसाधारण के लिये केवल ये सड़कें और गलियां हैं और धनिक-वर्ग के लिये ये वैभवशाली भवन हैं।* घुमा फिरा कर अथवा प्रत्यक्षरूप में इन कवियों ने असमानता से परिपूर्ण इस सामाजिक व्यवस्था को बदलने के भाव प्रकट किये। पाठकों का ध्यान गांवों और ग्रामवासियों की ओर भी आकर्षित किया गया। जिसके रहने वाले दुःखी हों वह देश कसे उन्नति कर सकता है ? कण्डी के लोगों ने तारा समैलपुरी के गीतों में अपनी भावनाओं को प्रतिध्वनित होते देखा। इनकी 'कण्डी दा बसना' गंगाराम की इसी शीर्षक के अन्तर्गत लिखी गई रचना से बहुत समानता रखती है। इन्हें यह कविता लिखने की प्रेरणा भले ही गंगाराम की कविता से मिली हो, परन्तु इस कविता की सशक्त शैली और कल्पना-भूमि तारामणि की पूर्णतः अपनी है।

लोगों के ध्यान को आकर्षित करने के लिये तथा उन्हें प्रबुद्ध करने के लिये कवि-सम्मेलनों का आयोजन किया जाने लगा। इसका द्विविध प्रभाव हुआ। वे अपनी निजी भाषा की समृद्धि और उसके बहुमुखी स्वरूप से प्रभावित होते और जब कभी वे इनकी रचनाओं से उदासीनता प्रकट करते तो इन कवियों को यह आभास हो जाता कि लोग वास्तव में चाहते क्या हैं और इन्हें उनको क्या देना अपेक्षित है। इससे इनकी कविता को विषयगत सम्पन्नता मिली और उसमें प्रामाणिकता का समावेश भी हुआ। इसके अतिरिक्त ये कवि-सम्मेलन नई प्रतिभा के विकास और पुराने कवियों की प्रतिभा के परिमार्जन में भी सहायक हुए।

---

*जागो डुग्गर

रेडियो स्टेशन का योगदान : जम्मू में आकाशवाणी के केन्द्र की स्थापना १९४८ में हुई। युद्ध की दैनिक परिस्थिति से लोगों को अवगत कराना, उनके मनोबल को ऊंचा रखना तथा उन्हें उनके आस-पास और बाह्य-संसार की घटनाओं से अवगत कराना इसके मुख्य उद्देश्य थे। लोगों की सांस्कृतिक जिज्ञासा को तृप्त करना भी इसका एक अंग था। यहां की क्षेत्रीय भाषा होने के कारण इसके अधिकांश कार्यक्रमों का प्रसार डोगरी में ही होता। लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये योग्य तथा समर्थ लेखकों की सेवा को उपयोग में लाना आवश्यक था। रेडियो के अपने विशिष्ट नियमों और कानूनों के फलस्वरूप तथा लोगों की व्यावहारिक आवश्यकताओं के कारण एक नये ढंग का साहित्य सामने आया, जो लोगों की रुचि के अनुकूल होते हुए भी साहित्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता था। हमेशा कविताएं और देशभक्ति के गीत ही प्रसारित नहीं किये जा सकते थे। कभी-कभी लोग वक्ताओं से इनके कृषि-विषयक तथा ग्रामीण-विकास-सम्बन्धी विचार भी सुनना चाहते थे। अपनी प्राचीन संस्कृति, अपनी लोक-गाथाओं और लोक-गीतों के विषय में भी जानना चाहते थे। प्रायः रेडियो पर गाए जाने वाले ये गीत उन्हें प्रसन्न तो करते परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था। वे इन गीतों, लोक-नृत्यों, अपने मेलों, उत्सवों-समारोहों तथा आधुनिक विश्व को इसकी सभी जटिल समस्याओं के समेत जानने को उत्सुक थे।

यह नई प्रवृत्ति, जो मुख्यतः रेडियो से उत्पन्न हुई थी, साहित्य के परमावश्यक, परन्तु चिर-उपेक्षित अंग—गद्य के विकास में सहायक हुई। अब तक का सब काम कविता के रूप में ही हुआ था। लोगों के स्मृतिपट पर चले आ रहे लोक-गीतों को रिकार्ड किया गया था, उन्हें लिपिबद्ध करके प्रकाशित किया जा चुका था। परन्तु लोक-कथाएं अभी तक इससे वंचित थीं। रेडियो ने इस अभाव को पूरा किया और लोग डोगरी गद्य को

ओर अधिक ध्यान देने लगे। बंसीलाल गुप्ता और डोगरी-संस्था ने इन लोक-कथाओं को एकत्रित करके प्रकाशित किया।

लेखकों ने लेख, समालोचना आदि लिखना आरंभ किया और धीरे-धीरे आधुनिक डोगरी कहानी का विकास होने लगा। रेडियो स्टेशन की स्थापना से पूर्व भी भगवतप्रसाद साठे अपनी डोगरी कहानियां प्रकाशित कर चुके थे परन्तु इस क्षेत्र में वे अब तक एक-मात्र दृष्टान्त थे और उनकी कुछ कहानियां आधुनिक कहानी के वस्तु-विन्यास और कला की दृष्टि से न्यून कोटि की थीं। रामनाथ शास्त्री ने बावा-जित्तो शीर्षक से एक नाटक लिखा जिसे टिकरी और धार नामक स्थानों पर खेला जा चुका था। श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त ने भी 'जित्तो' के कथानक पर आधारित एक नाटक लिखा। विश्वनाथ खजूरिया ने लेख और कहानियां लिखीं। परन्तु गद्य-लेखन की इस प्रक्रिया की गति में विशेषरूप से त्वरता रेडियो स्टेशन द्वारा आई। लेख, वार्ताएं तथा एकांकी लिखने तथा उन्हें पढ़ने के लिये दिये जाने वाले पारिश्रमिक से लेखकों को प्रोत्साहन मिलने लगा। परिणामतः ऐसे नये लेखक सामने आये जिनकी रुचि केवल गद्य-लेखन ही में थी। रामनाथ शास्त्री और प्रशान्त के नाटक रेडियो से प्रसारित किये गये और लोगों ने उन्हें काफी पसंद किया। विश्वनाथ खजूरिया, श्यामलाल शर्मा, शक्ति शर्मा, पण्डित जगन्नाथ, पं० रघुनाथ शास्त्री पं० मदनमोहन शास्त्री (अंतिम दोनों ने संस्कृत साहित्य और ज्योतिष के विषयों पर लिखा) के गद्य लेख; सुशीला खजूरिया, मदनमोहन शर्मा, कविरतन की कहानियां रेडियो ही के लिये लिखी गईं और वहीं से प्रसारित भी हुईं। नई दिल्ली के डोगरा-मण्डल की सहायता से डोगरी-संस्था जम्मू ने 'नमीं चेतना' (नई चेतना) नामक त्रैमासिक निकाला। इसमें डोगरी लेख, कहानियां, एकांकी, आलोचना एवं समालोचना आदि का प्रकाशन डोगरी भाषा में होने लगा। यह पत्रिका विशेषरूप से डुग्गर में उभरते हुए नव-जागरण का प्रतीक थी। डोगरी संस्था

बहुत काम कर चुकी थी किन्तु इसके लिये अभी बहुत कुछ करना शेष था। डोगरी संस्था के कार्य की अनुपूर्त्ति के लिये डोगरा-मण्डल जम्मू की स्थापना की गई। इसके प्रधान पंडित अनन्तराम शास्त्री डोगरी में लिखते थे। डोगरा मण्डल ने डुग्गर के ऐतिहासिक स्थानों की चित्रप्रदर्शिनियों का आयोजन कर के एक सराहनीय काम किया। इसके द्वारा कुछ डोगरी पुस्तकों को प्रकाशित भी किया गया तथा इसने मूर्तिकला की कुछ प्राचीन कलाकृतियों का पुनरुद्धार करके एक उपयोगी काम किया। पं० संसारचंद्र की कलाकृतियों द्वारा चित्रकला की प्राचीन शैली को नया जीवन मिला। मास्टर हेमराज, चन्दूलाल, देवीदास, देवदत्त, ओम शर्मा और विद्यारत्न खजूरिया भी इनके साथ हो लिये। विद्यारत्न प्राचीन और नवीन शैलियों का समन्वय करने वाले तथा अपने चित्रों में 'क्यूबिक' शैली तथा रंगों के अमूर्त्तीकरण का सफलता से प्रयोग करने वाले पहले कलाकार हैं।

अकादमिक एवं शैक्षिक स्थिति : १९५३ में रामनाथ शास्त्री ने 'डोगरी को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में तर्क' शीर्षक से एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें शास्त्री जी ने अनेक तर्क दिये जो देश के अन्य भागों में मातृभाषाओं एवं क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति के लिये चल रहे आन्दोलन के प्रबल समर्थकों द्वारा दिये जाते थे। चूंकि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है तथा उर्दू इस प्रदेश की राजभाषा है इस लिये डोगरी और हिन्दी की परस्पर प्रतिद्वन्द्विता का कोई सवाल ही नहीं उठता। डोगरी जम्मू के बहुसंख्यक लोगों की बोलचाल की भाषा है, इस लिये इसे जम्मू प्रान्त की प्राथमिक शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाना चाहिये। ऐसे लोग जो डोगरी नहीं पढ़ना चाहते या जिनकी मातृभाषा डोगरी नहीं है, वे पंजाबी अथवा दूसरी जो भी भाषा वे पढ़ना चाहें पढ़ सकते हैं। बाद में इस पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई गई जिसने १९५४ में सरकार

को अपनी रिपोर्ट पेश की। प्राथमिक शिक्षा-स्तर पर डोगरी तथा कश्मीरी अनिवार्य विषय स्वीकार किये गये। और सभी स्तरों पर इनकी शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं और अन्य अपेक्षित जरूरतों को पूरा करने के लिये इसका आगे विकास किया जाना चाहिये। कुछ लोगों ने व्यर्थ ही हिन्दी-डोगरी का विवाद खड़ा करने का प्रयत्न किया। दीनू भाई ने अपनी प्रसिद्ध और सशक्त कविता 'दादी ते मां' (दादी और मां) लिखकर इन विरोधियों को करारा प्रत्युत्तर दिया। हिन्दी हमारी दादी के तुल्य है, जिसे हम प्यार करते हैं और जिसका हमें आदर है, परन्तु मां फिर मां है। इस प्रकार के विरोध के बीज बोने का न तो सर्वथा कोई कारण ही है और न ऐसा करने की कोई गुंजाइश ही है। लोगों को हिन्दी तथा डोगरी दोनों ही भाषाएं पढ़नी चाहियें। सांस्कृतिक संस्थाओं ने जम्मू में सांस्कृतिक गतिविधियों को तेज़ करने में बड़ा योगदान दिया। लोगों को उनकी इस सांस्कृतिक विरासत के प्रति पूर्णतः सचेत किया जा चुका था और वे इस आन्दोलन को तन-मन से सहयोग दे रहे थे।

डोगरा आर्ट गैलरी : डोगरी संस्था ने, जिसके पास सुन्दर चित्रों का एक विलक्षण संग्रह था, मूर्तिकला की कुछ कलाकृतियां, कपड़े पर अंकित कुछ कलात्मक नमूने और प्रतिकृतियां तथा डोगरा योद्धाओं द्वारा रणभूमि में प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ शस्त्र इकट्ठे किये। ये सभी वस्तुएं किसी संग्रहालय में सुरक्षित रखने के लिये सरकार को समर्पित की गईं। इसी उद्देश्य से 'डोगरा-आर्ट-गैलरी' की स्थापना हुई जो तब से कला की दिशा में बराबर महत्वपूर्ण काम कर रही है।

सांस्कृतिक अकादमी : १९५८ में सदरे रियासत के एक अध्यादेश द्वारा ललित कला, संस्कृति तथा साहित्य अकादमी की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य संगीत, कला और साहित्य के

क्षेत्र में काम करने वाली विभिन्न अकादमियों में समन्वय स्थापित करना तथा राज्य की क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति और विकास को बढ़ावा देना था। सदरे-रियासत डॉ० कर्णसिंह जी के संरक्षण में इस अकादमी ने अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति लोगों का ध्यान संकेद्रितं करने का उपयोगी काम किया है। इसने विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन के लिये आर्थिक सहायता के रूप में लेखकों को मदद देकर तथा लगभग पचास पुस्तकों के प्रकाशन का उपक्रम करके बहुत बड़ी संख्या में पुस्तकों के प्रकाशन में सहायता दी है। अकादमी ने डोगरी में समसामयिक कविता की पांच पुस्तकें, डोगरी-कहावत-कोष, इक्की कहानियां, एकोत्तरशती, गीताञ्जलि और साढ़ा साहित्य नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अपने संरक्षक डा० कर्णसिंह जी के प्रेरणामय निर्देशन में अकादमी के पास दुर्गा-पहाड़ी-संगीत को लोकप्रिय बनाने के लिये जम्मू में एक संगीत विद्यालय स्थापित करने की एक बहुत बड़ी योजना है।

डोगरा संस्कृति की उन्नति के लिये डा० कर्णसिंह जी का योगदान साधारण महत्व का नहीं है। आप प्रतिवर्ष अपने पैलेस में बैसाखी के दिन डोगरी कवि-सम्मेलन का आयोजन करके डोगरी कवियों को प्रोत्साहन ही नहीं दे रहे अपितु आपने स्वयं भी पच्चीस डोगरी गीतों का, जिनमें मुख्यत: लोकगीत हैं, Sunlight and shadow के नाम से अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत किया है। अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ ही रामनाथ शास्त्री द्वारा किया हुआ हिन्दी अनुवाद है तथा उमादत्त शर्मा द्वारा संगीत-तालिका भी दी गई है। अभी कुछ ही समय पूर्व डा० कर्णसिंह जी ने डोगरी में भक्ति-गीत लिख कर तथा उनकी संगीत-रचना प्रस्तुत करके सबको चकित कर दिया है। इन गीतों की धुनों के मोहक स्वर, इनकी सहज-सरल किन्तु सारगर्भित शब्दावली से मेल खाते हैं। डोगरा पहाड़ी चित्रों का आपका निजी संग्रह विश्व भर में सर्वश्रेष्ठ है और यह इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है कि

आपको डुग्गर की कलागत परम्परा से कितनी गहरी लगन है और इसके प्रति कितनी रुचि है।

गद्य : लेखकों तथा पाठकों ने डोगरी में गद्य के अभाव को महसूस किया। कोई भी भाषा, जो साहित्य के इस महत्वपूर्ण अंग में पिछड़ी हुई हो, प्रौढ नहीं कही जा सकती। लगभग पांच वर्ष पूर्व तक साठे का पहला-फुल्ल, शास्त्री जी का 'बावा जित्तो,' थोड़ी सी कहानियां तथा बंसीलाल गुप्ता का लोक-कथाओं का संग्रह आदि इनीगिनी गद्य-रचनाएं ही डोगरी में उपलब्ध थीं, किन्तु अब डोगरी गद्य-रचना की दिशा में निश्चित प्रयास किया जाने लगा। और इसका परिणाम भी बहुत उत्साहवर्धक हुआ। बच्चों के लिये पुस्तकें लिखी गईं। सर्वश्री श्यामलाल शर्मा, तेजराम खजूरिया, विश्वनाथ खजूरिया तथा प्रो० लक्ष्मीनारायण द्वारा निबन्धों की रचना हुई और ललिता मेहता, वेद राही, मदनमोहन शर्मा, रामकुमार अबरोल, नरेन्द्र खजूरिया, नीलाम्बर और कविरतन ने कहानियां लिखीं। वेदराही, मदनमोहन शर्मा और रामकुमार अबरोल की कहानियों में उर्दू कहानी (अफ़साना) का प्रभाव लक्षित होता है। कविरतन में भावुकता अधिक है परन्तु इन्हें अभी अपनी कला को विकसित करना है। नीलाम्बर की कहानियों में अंग्रेज़ी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नरेन्द्र खजूरिया की रचनाओं में अधिकतर ग्रामीण वातावरण होता है और आप डोगरी ही में सोचते हैं और लिखते हैं। इनकी शैली उत्तम है और इनमें विषय-सम्पन्नता रहती है। इनकी कहानियों में यथार्थ का चित्रण होता है। कुछ नवयुवक कालिज-पत्रिकाओं के लिये भी लिख रहे हैं। शम्भुनाथ ने भी गद्य में लिखा है।

नाटक : जम्मू में रंगमंच की परम्परा बड़ी पुरानी है, परन्तु नाटक लिखने की परम्परा उतनी पुरानी नहीं। डोगरी

लेखक अब नाटक लिखने की ओर भी ध्यान देने लगे हैं और इनमें से बहुत सी कृतियां रंगमंच पर भी सफल रही हैं। 'नमां ग्रां' (नया गांव) जिसे दीनूभाई पन्त, रामनाथ शास्त्री और रामकुमार अबरोल ने एक साथ लिखा है, एक बहुत सुन्दर नाटक है किन्तु इसकी साहित्यिक उत्कृष्टता उतनी निर्णीत नहीं है। 'दाता रानू' के बलिदान पर आधारित दीनू का 'सरपंच' एक सशक्त नाटक है। इसके संवाद ज़ोरदार और सजीव हैं, चरित्र-चित्रण में विलक्षणता है और कथावस्तु आकर्षक और सुसंहित है। इनका एक अन्य नाटक संझाली भी है। प्रो० रामनाथ शास्त्री का सार' नामक नाटक डोगरी इतिहास के उस युग से सम्बन्ध रखता है जब यहां काव्य और चित्रकला का समुन्नत प्रचलन था। वेद राही का 'धारें दे अथ्रू' एक महत्वपूर्ण सामाजिक विषय पर लिखा गया नाटक है। यद्यपि इसके संवाद और रचना-शैली इतनी सशक्त नहीं हैं। प्रशान्त ने पौराणिक प्रसग पर आधारित 'देवका' नामक नाटक लिखा है। प्रशान्त, शास्त्री और नरेन्द्र खजूरिया ने एकांकी भी लिखे हैं। रामकुमार अबरोल ने 'देहरी' नामक नाटक लिखा है।

आज डोगरी उस स्थिति को पहुंच चुकी है जब इसे अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के समान-स्तर पर लाने के लिये और अधिक व्यापक कार्य किया जा सकता है। तथा ऐसा करना अपेक्षित भी है। डोगरी कविता आज एक ऐसे मोड़ पर आ पहुंची है जहां इसमें नवीन प्रयोग तथा नये उपक्रम करने की आवश्यकता है। शास्त्री, दीप, तारा समैलपुरी, मधुकर, दीनू पन्त, रणधीरसिंह, रामकृष्ण शास्त्री, दुर्गादत्त शास्त्री, मोहनलाल सपोलिया, चरणसिंह, रामलाल शर्मा, रूमालसिंह, बालकृष्ण उधमपुरी तथा ध्यान सिंह आदि कवि नये प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं तथा भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के साथ साथ अग्रसर हो रहे हैं। ये कवि विश्व-साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों के प्रति भी सचेत हैं। साहित्य

में नवीन मान्यताओं तथा नये विचारों को अभिव्यंजित करने के लिये मधुकर, दीप, रणधीर, तारा समैलपुरी और ओंकार सिंह आवारा प्रभृति कवि नये प्रतीकों और नई विधियों का सृजन कर रहे हैं। डोगरी के लिये एक शुभ चिह्न है। पर क्या यह गति बनी रहेगी ? हम केवल ऐसी आशा कर सकते हैं और इसकी प्रतीक्षा कर सकते हैं।

———

द्वितीय अध्याय

प्रारम्भिक कवि

देवी दित्ता (दत्तू) : दो सौ वर्ष पूर्व बसोहली तहसील के भड्डू नामक स्थान पर पैदा हुए थे । उन दिनों बसोहली में राजा पृथपाल सिंह तथा जम्मू में प्रसिद्ध वीर और राजनीतिज्ञ राजा रणजीतदेव का शासन था । जम्मू के राजकुमार व्रजदेव राजा पृथपाल के मित्र थे । उनके प्रभाव के कारण दत्तू जम्मू आए तथा यहां अठाईस वर्ष तक रहे ।

दत्तू के सम्बन्ध में कई कहानियां प्रसिद्ध हैं । इनमें से एक कहानी के अनुसार दत्तू मन्द - प्रतिभा के व्यक्ति थे । किन्तु अपने गुरु सूरजनारायण के आशीर्वाद से बहुत बुद्धिमान हो गये और व्रजभाषा में कविता लिखना आरम्भ किया । वीरविलास, बारह माह तथा कमलनेत्र-स्तोत्र (जो सारे भारत में प्रसिद्ध है) इनकी व्रजभाषा की कुछ प्रख्यात कृतियां हैं ।

किन्तु डोगरी में कवि के रूप में इन की ख्याति इनकी एक मात्र कविता 'किल्लिया बत्तना छोड़ी दित्ता' से है । दत्तू दो शताब्दी पूर्व बसोहली में रहते थे किन्तु उनकी भाषा ठीक वैसी ही थी जैसी जम्मू में बोली जाती थी तथा जो आज की भांति नई और ताज़ा है । उनकी भाषा की यह नवलता कवि की परिष्कृत प्रतिभा की परिचायक है तथा डोगरी भाषा की क्षमता का परिचय देती है ।

यह कविता गीति-शैली की कविताओं में एक रत्न के तुल्य है। यह सरल एवं प्रत्यक्ष है तथा इसकी मन्द लय-गति द्वारा एक नई दुल्हन की उदासी का चित्रमय वर्णन किया गया है, जो अपनी सास, ननद तथा गांव वालों के हाथों कष्ट झेलने जा रही है, क्योंकि वे उसके साथ कुछ झूठी कहानियां जोड़े हुए हैं। उनकी इस आलोचना का अन्त करने के लिये उसने अकेले बाहर जाना छोड़ दिया है। पीने का पानी लेने भी वह अपनी सखियों के साथ ही जाती है। बुरा हो 'गंगथा' (पंजाब में कांगड़ा नामक स्थान) का जिसके लोग निरीह लोगों पर जान-बूझ कर दोषारोपण करते हैं। बिना कोई साज़िश खड़ी करने के कोई किस प्रकार कोमल-हृदय बन सकता है अथवा किसी से बात कर सकता है? देवी दित्ता को उसे समझाना चाहिये कि वह किस प्रकार अपनी सास और ननद का सौहार्द प्राप्त कर सकती है।*

दत्तू की कोई भी अन्य रचना अभी तक प्रकाश में नहीं आई है किन्तु यह सर्वथा सम्भव नहीं है कि उन्होंने केवल एक ही कविता लिखकर शैली, अभिव्यक्ति, भाषा तथा विचारों में इतनी प्रौढता प्राप्त कर ली हो। और आगे किये जाने वाले प्रयासों द्वारा ही दत्तू के जीवन तथा कृतित्व के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

शिवराम : देवी दित्ता के छोटे भाई नन्दराम के सुपुत्र थे। आप भी कवि थे और सम्भवतः उन्होंने व्रजभाषा में कुछ कविताएं लिखी थीं। आपकी एक ऐसी कविता उपलब्ध हुई है जिस में डोगरी तथा व्रज का सम्मिश्रण है। इसमें शिव-संगिनी देवी गौरी की स्तुति है।' इसमें न तो दत्तू जैसी परिपक्वता है और न वैसी प्रौढता ही।

---

*नीहारिका : सम्पादक रामनाथ शास्त्री, कल्चरल अकादमी प्रकाशन, १६५६ : देखिये दत्तू का भाग।

त्रिलोचन* : आप कवि दत्तू के पोते थे और आपने 'नीति-विनोद' शीर्षक से महाभारत के कुछ अंश का अनुवाद किया है।

रुद्रदत्त* : आप कवि दत्तू के छोटे भाई नन्दराम के पोते थे। इनकी एक डोगरी कविता का अधूरा अंश प्राप्त हुआ है। इसकी शैली और छन्दोरचना व्रजभाषा की एक कविता के समान हैं। यह कविता महाराजा रणवीरसिंह शासन की ओर संकेत करती है। कन्धार से आये हुए घोड़े बेचने वालों को किस प्रकार अपने घोड़ों के अत्यधिक दाम प्राप्त हुए। परिणामस्वरूप स्थानीय लोगों के घोड़े बहुत मामूली दामों पर बिकते जबकि विदेशी लोग अपने निकम्मे घोड़ों को भी बड़े दामों पर बेचा करते। कविता में व्रजभाषा का माधुर्य है तथा डोगरी भाषा का अनुकरण करने की दिशा में एक सचेतन प्रयास है। यह कविता महाराजा रणवीरसिंह के प्रशासन तथा उनके व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालती है। इस दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

वामदेव : दत्तू के दूर के एक सम्बन्धी थे ओर व्रजभापा में कविता खिखते थे।

पण्डित गंगाराम : (१७७७ ई०—१८५८ ई०) स्वर्गीय महाराजा रणवीरसिंह के समकालीन थे। आप संस्कृत भाषा, साहित्य तथा हिन्दू-धर्मशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। मण्डी तथा कांगड़ा के नरेश आपको अपना गुरु मानते थे। महाराजा रणवीरसिंह ने जब आपके विषय में सुना तो वे स्वयं कांगड़ा जाकर उन्हें जम्मू लिवा लाए तथा उन्हें संस्कृत पाठशाला का कार्यभारी नियुक्त किया। आपने संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद

---

*देखिये : नीहारिका : सम्पादक : प्रो० रामनाथ शास्त्री।

किया। आपका लिखा 'रणवीर प्रायश्चित्त' एक हज़ार पृष्ठों का एक विपुलकाय ग्रन्थ है। संस्कृत में लिखने के साथ साथ आपने व्रज में कविताएं भी लिखी हैं। इनकी एक ही डोगरी कविता प्राप्त हो सकी है, जिसे पंडित संतराम वेदपाठी ने प्रो० रामनाथ शास्त्री को पढ़ कर सुनाया था।

इस कविता में वैसी ही उत्कृष्टता और प्रौढता दृष्टिगत होती है जैसी कि दत्तू के प्रसिद्ध गीत 'किल्लिया बत्तना' नामक गीत में है। इसमें कण्डी (जम्मू का ऊसर भाग) के जीवन का करुण चित्रण है। कवि स्वयं जम्मू प्रान्त के उस भाग में पैदा हुआ था जहां लोगों को पीने का पानी लाने के लिये कोसों दूर जाना पड़ता है। हिंस्र पशुओं से जौ के खेतों की रक्षा करनी पड़ती है जो इनकी खेती को नष्ट कर देते हैं। कण्डी की खेती के जोखिम-भरे जीवन की विविधता को अभिव्यक्त करने के लिये ये पंक्तियां पर्याप्त सशक्त और सप्राण हैं। यह एक स्मरणीय चित्र है जो मन:स्थिति और वातावरण की दृष्टि से दत्तू की विख्यात कविता से भिन्न है, परन्तु कलाप्रवीणता और प्रामाणिकता की दृष्टि से उसके बहुत समान है। कण्डी के लोगों को आज के इस उन्नतिशील युग में भी जिन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, हमें इसका पूरा आभास है और यह वर्णन कई दृष्टियों से सत्य है। उन दिनों की परिस्थितियों में यह और भी अधिक सच्चा रहा होगा। पं० गंगाराम का जन्म और पालन-पोषण कण्डी में ही हुआ था, अतः आप इस क्षेत्र में बसने वाले लोगों से परिचित थे। यह प्रतिदिन के जीवन को अभिव्यक्त करती है और इसका चित्रण कवि की इस सब के प्रति घनिष्ठता का परिचायक है। खेतों तथा घरेलू जीवन का कल्पना-चित्र, जहां घर के लोग और ढोर एक ही छत के नीचे रहते हैं, बड़ा सशक्त है। इस की ध्वनि बोल चाल की ओर सुपरिचित है, जो डोगरी की महान परम्परा और इसकी सप्राणता की और ओजस्विता की परिचायक है। किन्तु इसके साथ ही इसमें अपनी धरती के प्रति अगाध प्रेम है जो अपनी कठिनाइयों के प्रति लोगों की वेदना को प्रकट करता है।

(देखिये : नीहारिका, पृष्ठ २५-२६, कल्चरल अकादमी प्रकाशन, १९५९)

अपनी इस एकमात्र कविता द्वारा ही पं० गंगाराम को डोगरी में गौरवमय स्थान प्राप्त है। आधुनिक कण्डी-जीवन पर एक लम्बी कविता को लिखते समय तारा समैलपुरी प्रत्यक्षत: इसी कविता से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं।

लाला रामधन : स्वर्गीय महाराजा प्रतापसिंह के शासन काल में जम्मू प्रान्त के अखनूर नामक स्थान पर पैदा हुए थे। आप वृत्ति से तो सुनार थे परन्तु किसी ने भी उन्हें सुनार का काम करते नहीं देखा था। कुछ लोगों का विचार है कि आप पतंगें (उड़ाने के लिये) बनाया करते थे। रामधन एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के व्यक्ति थे।

आप डोगरी पंजाबी तथा पूरबी (व्रज) भाषाओं में कविता करते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश आपकी अधिकांश रचनाएं हमें अप्राप्य हैं। परन्तु इनकी पंजाबी तथा पूरबी भाषाओं की रचनाओं में भी स्थानीय बोली वा भाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। आपकी पंजाबी तथा हिन्दी की रचनाओं को पढ़ कर ज्ञात होता है कि आप एक सुधारक के दृष्टिकोण से लिखते थे। तत्कालीन समस्याओं को आप समवेदनात्मक दृष्टि से देखते थे परन्तु इनकी रचनाओं में हास्य तथा व्यंग्य के तत्व भी विद्यमान हैं। हास्य की एक झलक उस संदर्भ में भी मिलती है जहां कवि स्नान के लिये पवित्र गंगा की यात्रा का वर्णन करता है, क्यों कि तितलू, बिन्दलू और रामदित्ता की माता आदि स्त्रियां भी वहां जा रही हैं।*

परन्तु रामधन डोगरी में अपनी रचना 'चन्ना दी चान्दनी' के लेखक के रूप में ही अधिक विख्यात हैं। यह कविता चार भागों में है तथा इसका प्रत्येक भाग कलेवर की लम्बाई, विषय

---

*देखिये : नीहारिका : रामधन का भाग।

ग्रौर मन:स्थिति की दृष्टि से एक दूसरे से स्वतन्त्र है, परन्तु पहले भाग के ग्रन्तिम चरण द्वारा एक दूसरे के साथ जुड़ा हुग्रा है, जो कि प्रत्येक भाग के ग्रन्त में दिया गया है । प्रस्तुत कविता द्वारा रामधन प्रौढ विचारों वाले एक ऐसे व्यक्ति के रूप में हमारे सन्मुख ग्राते हैं, जो विश्वभर की समस्याग्रों से भली भांति परिचित है। रामधन को हम रोमेंटिक कवि, घरेलू जीवन के एक ऐसे कवि के रूप में देखते हैं जो एक नवोढा युवती की आशाग्रों एवं निराशाग्रों तथा सासके झगड़ालू स्वभाव से परिचित है । इस में ग्राप एक धार्मिक कवि के रूप में भी हमारे सामने ग्राते हैं ।

इस कविता के पहले भाग में आप एक शृंगारिक कवि के रूप में प्रकट हुए हैं, परन्तु यह एक दम्पति का प्रेम है ग्रौर इसके बोल एक विवाहिता स्त्री के हैं। प्यार बड़ा मधुर होता है परन्तु यह कुछ ऐसी विकट समस्याएं पैदा कर देता है जिनसे आप बच नहीं सकते । प्रेम - पथ विचित्र है । वस्तुतः इसमें ग्रापको एक सुन्दर धागे के साथ स्वयं ही फांसी पर लटकना पड़ता है । कभी-कभी ग्राप ग्रपनी ही चेष्टाओं द्वारा स्वयं ग्रपने लिये बखेड़ा खड़ा कर लेते हैं। ग्रापकी निज की लगाई हुई गांठ इतना ग्रातंकित कर देती है कि ग्रापको इसे ग्रपने दांतों से खोलना पड़ता है। परन्तु इस सब के लिये रोया क्यों जाए ? जैसे चांदनी चांद से ग्रलग नहीं की जा सकती, ठीक उसी प्रकार इन प्रेमियों को भी दुःख सुख सहते हुए एक साथ जीना पड़ता है । इस लिये कठोर और कड़वे शब्द क्यों कहे जाएं ?* ग्रापका दृष्टिकोण सहज एवं स्वाभाविक है परन्तु ग्रद्भुत अनुभूतियां, विचारों की विविधता, ग्रपनी अभिव्यक्ति के माध्यम पर ग्रधिकार तथा ग्रर्थ में ग्रति सूक्ष्मता है जो इसे दूसरी बार पढ़कर ही विदित होती है।

दूसरे भाग में रामधन घरेलू जीवन के कवि के रूप में सामने

---

*देखिये : नीहारिका : रामधन का भाग ।

आते हैं। चर्खा कातना तथा कड़ा परिश्रम करना एवं घास के गठ्ठे ढोना आदि विषय तथा घरेलू कल्पनाचित्र इनकी अनुभूति को अभिव्यंजित करने के लिये पर्याप्त हैं। सर्वशक्तिमान परमेश्वर से की गई प्रार्थना भी घरेलू वातावरण को प्रकट करती है। चर्खे का वर्णन जीवन के उस वातावरण को प्रकट करता है जिसे हम घर के भीतर जीते हैं; तथा घास आदि का वर्णन, खेतों की कल्पना-सृष्टि तथा घर से बाहिर किये जाने वाले कामों की झलक प्रस्तुत करता है। इसकी लय जीवन की दो दिशाओं का चित्र उपस्थित करती है। एक नववधू का उन कार्यों का करने के प्रति उसका आक्रोष प्रकट करती है जिन्हें करने के लिये वह तय्यार नहीं है। किन्तु अब कुछ नहीं हो सकता। उनके जीवन एक दूसरे से अविच्छेद्य हैं। कवि का दृष्टिकोण समवेदनात्मक है तथा इसके भीतर हास्य का पुट विद्यमान है। इस परिस्थिति में कवि स्वयं आनन्दानुभव करता प्रतीत होता है, जो पीड़ाजनक होने की अपेक्षा कहीं अधिक सुखप्रद है।

तीसरे भाग में घरेलू जीवन का सुपरिचित चित्र मिलता है, जिसमें सास अपनी बहू के व्यवहार पर खीझती है। यह यौवन के प्रति बुढ़ापे की शाश्वत कुढ़न है। सास कहती है कि उसकी बहू को 'फ़ैशन' में अधिक रुचि है तथा वह काम से जी चुराती है। उसे चांदी से प्यार है तथा वह उसके (सास के) विरुद्ध कड़े शब्दों का प्रयोग करती है, जो उसे पीड़ा पहुंचाते हैं। उसके पास एक अमोघ शस्त्र है : वह अपने पुत्र के मन में उसकी पत्नी के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने का प्रयास करती है। वह उसे अपनी पत्नी का परित्याग करने के लिये उकसाती है तथा उससे कहती है कि वह उसका दूसरा विवाह करा देगी। इसमें तीखा व्यंग्य होते हुए भी इसका वर्णन हमारे घरेलू जीवन के प्रति रामधन की सौजन्यता-पूर्ण प्रवृत्ति से हुआ है, जहां बहू के साथ कभी-कभी मूक एवं निरीह ढोरों जैसा दुर्व्यवहार किया जाता है तथा जहां अवज्ञाकारिणी बहू को एक ऐसे वातावरण में रहना पड़ता है जहां उसे सौत ले आने की

धमकी निरन्तर आतंकित बनाए रखती है। बोलचाल के ढंग की अभिव्यक्ति, इसकी वाणी की अबाध गति उस मां के रोष को प्रकट करती है जो अपनी बहू के दुर्व्यवहार के लिये अपने बेटे से शिकायत कर रही है। शैली की प्रवाहशीलता एक स्त्री के आवेश की अवस्था का चित्र उपस्थित करती है और उसके खांसने को अपूर्व ढंग से चित्रित किया गया है।

चौथे भाग में रामधन एक भक्त-कवि के रूप में प्रकट हुए हैं। इन पंक्तियों को पढ़ कर मीराबाई के इस प्रसिद्ध गीत का स्मरण हो आता है :

'अरी मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दर्द न जाने कोय !'

यह राधा और कृष्ण का, आत्मा का परमात्मा की प्राप्ति के लिये प्रेम है। यह कविता एक ऐसी किशोरी बाला का मंत्रमुग्ध करने वाला चित्र उपस्थित करती है जिस के माता पिता उसके रोग के कारण चिंतित हैं। कुछ मिथ्या-विश्वासी लोगों का विचार है कि इसे भूत ने पकड़ लिया है। अतः वे लोग बकरी अथवा काले रंग के मुर्गे की बलि देने या किसी देवी-देवता के स्थान या किसी मन्दिर में जाने का विचार कर रहे हैं। परन्तु वह इन सब को कैसे समझाए कि उसे किसी भूत-प्रेत ने नहीं पकड़ा है ? वह तो दैवी प्रेम के बन्धन में बंधी हुई है तथा वह भगवान कृष्ण की बांदी है। यह विवरण पाठकों को भगवान कृष्ण तथा कृष्णप्रेम में उन्मत्त गोपियों की पुरानी प्रणयगाथाओं की ओर ले जाता है : किशोरी बाला प्रेम-ग्रस्त है परन्तु उसके माता पिता, दुर्भाग्यवश, इस बात को नहीं समझते हैं। ऐसी वेदनामय स्थिति उत्पन्न होने का कारण वह मौन है, जो हमारे घरेलू जीवन में एक यौवनोन्मुखी कन्या से अपेक्षित होता है।*

---

*अधिक विवरण के लिये देखिये नीहारिका : सम्पादक रामनाथ शास्त्री, कल्चरल अकादमी प्रकाशन, १९५९।

द्वितीय भाग

तृतीय अध्याय

आधुनिक कवि

ठाकुर रघुनाथ सिंह सम्याल : (१८८५-१९६३)

ठाकुर रघुनाथ सिंह सांबा के निवासी थे तथा एक ज़मींदार के सुपुत्र थे। स्कूल की शिक्षा समाप्त करके आप अध्यापक बन गए। और फिर इस नौकरी को छोड़ कर राजस्व-विभाग में क्लर्क बन गये तथा होते-होते अपने कड़े परिश्रम के फलस्वरूप तहसीलदार बन गये। तहसीलदार उन दिनों वस्तुतः तहसील का शासक हुआ करता था। इनमें एक ज़मींदार तथा एक तहसीलदार की पदप्रतिष्ठा का सम्मिश्रण था। आपको शासन तथा सामन्तशाही से अनुराग था, जिसके द्वारा आपको यह सत्ता प्राप्त हुई थी। आप व्यक्तिवादी तथा घमण्डी स्वभाव के व्यक्ति थे। इस लिये १९४७ के अनन्तर लोकप्रिय सरकार बनने से आपको तथा आपके विचारों को ठेस पहुंची। आपने इन परिवर्तनों पर कड़ा रोष प्रकट किया तथा 'दायें बाजू' के आन्दोलन की ओर उन्मुख हुए, जिसे राष्ट्रवादी तथा प्रगतिवादी लोग धड़ेबंदी अथवा प्रतिक्रियावाद की संज्ञा देते थे।

सम्याल महोदय विद्या-व्यसनी थे। गिलगित में अपने कार्यकाल के दिनों में आपने पाली भाषा के हस्तलिखित ग्रन्थों का उद्धार किया तथा 'शिना' भाषा का एक छोटा सा व्यारकण भी बनाया। आप निश्चित विचारधारा और दृढ़-व्यक्तित्व के व्यक्ति थे। आपकी कविताओं में आपके विचार तथा आपका व्यक्तित्व देखा जा सकता है। इनके साथ पूर्णतः सहमत नहीं हो सकते आपकी

सशक्त शैली से इन्कार नहीं किया जा सकता जो आपके दृढ़-व्यक्तित्व की परिचायक है। आपकी कविता में प्रखरता तथा चुभता व्यंग्य रहता है। कहीं कहीं आप की अहं की भावना तथा रईसी स्वभाव आपकी कला के आड़े आगया है क्योंकि आप कविता को केवल अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का साधन समझते हैं। या इस तरह भी कहा जा सकता है कि आपकी कृतियों में आत्मपरकता प्रबल और प्रमुख रूप में विद्यमान है।

आत्म-परकता का यह तत्व आपके व्यक्तित्व, आपकी कविता तथा आपके अन्य कार्यक्षेत्रों तक में बड़ा प्रबल है। निश्चय ही आप एक स्पष्टवक्ता और आत्मकेन्द्रित व्यक्ति हैं। इसी के फलस्वरूप, यद्यपि आपकी कुछ लोगों के मत और विचार-धारा के साथ सहमति थी, आप राजनीति में अपनी समान-विचारधारा के लोगों के साथ घुलमिल नहीं सके। अपनी इस प्रवृत्ति और इसके फलस्वरूप राजनीति से अपने अलगाव के कारण आपके लिये कविता का द्वार खुल गया। अपनी मातृभूमि तथा मातृभाषा डोगरी के सेवाकार्य में लगे हुए युवक कवियों के उत्साह को देख कर आप प्रभावित हुए बिना न रह सके तथा आपने इस दिशा में योगदान देने का निश्चय किया। आप ने डुग्गर तथा डोगरों की प्रशंसा में कविताएं लिखीं, यद्यपि कभी-कभी आप उनके अन्ध-विश्वासों, निरर्थक प्रथाओं, हानिप्रद फैशनों तथा शिक्षा और प्रशासन की कुमार्गोन्मुख व्यवस्था के लिये उनकी निन्दा भी करते थे।

ठाकुर रघुनाथसिंह में एक सुधारक का उत्साह था। यह गुण आपको पं० हरदत्त शास्त्री के समीप ले आता है, परन्तु हरदत्त जहां लोगों में बड़ी जल्दी घुलमिल जाते थे तथा अपने अभिगम एव दृष्टिकोण द्वारा उन्हें प्रभावित करते थे तथा स्वयं उनसे प्रभावित होते थे वहां ठाकुर रघुनाथसिंह एक ऊंचे मंच-पीठ पर एकाकी खड़े दिखाई पड़ते हैं। जबकि पं० हरदत्त का ढंग

समवेदनात्मक था वहां ठाकुर रघुनाथ सिंह की वाणी निन्दा और प्रतारणा से परिपूर्ण है। या यों कहलें कि प० हरदत्त एक सुधारक थे तथा उनकी धारणा सामाजिक थी परन्तु श्री सम्याल सामाजिक समस्याओं के प्रति वैयक्तिक तथा व्यक्तिनिष्ठ थे। पं० हरदत्त की कविता प्रगतिशील एवं प्रवाहयुक्त है परन्तु ठाकुर महोदय की कविता कर्कश और कट्टरता-पूर्ण है।

ठाकुर रघुनाथसिंह ने डोगरी तथा डोगरों को श्रद्धा के फूल चढ़ाए हैं। आप की शैली ओजः पूर्ण तथा सशक्त है :

'डोगरे कर्मठता तथा कर्तव्यपरायणता की मूर्ति हैं। वे रेशम की भांति कोमल हैं परन्तु रणभूमि में वे अग्नि की भांति उष्ण भी हो सकते हैं' (देखिये अरुणिमा)।

डोगरों की भाषा मधुर तथा सम्मान्य है। यह जाति तो एक निधि के तुल्य है, हीरे की खान के समान है। परन्तु इन विशेषताओं के होते हुए भी ये पिछड़े हुए क्यों हैं ? इसका कारण यह है कि ये रूढ़िवादी तथा अन्धविश्वासी हैं तथा बात-बात पर सौगंध उठाने के आदी हैं। (देखिये पृष्ठ—२—'खो'—अरुणिमा, ले० तारा समैलपुरी) इसके साथ साथ यहां कुछ ऐसी अवांछ्य सामाजिक प्रथाएं हैं जिनके फलस्वरूप जीवित व्यक्ति की तो उपेक्षा की जाती है तथा उसे भूखों मारा जाता है परन्तु मृतकों का सम्मान किया जाता है तथा उनके नाम पर भोजन आदि दिये जाते हैं। ये भाव 'इन्दे कोला छुड़को' (इनसे मुक्ति प्राप्त करो) नामक रचना में स्पष्ट हैं। इन कुप्रथाओं पर चलने का मिथ्या-गौरव स्थिति को और भी अधिक बिगाड़ रहा है। बेटा अपने मृत पिता का सम्मान करने के लिये ऊंचे ब्याज-दर पर साहूकार से ऋण लेता है, यह जानते हुए भी कि उसके पास इसे चुकाने के साधन नहीं हैं। और जब वह इसे नहीं चुका पाता तो उसका रक्त चूसने के लिये साहूकार आ धमकता है। (अरुणिमा : पृष्ठ १४,१५,१६)

'अपनी नाक बचाने के लिये उसने ऋण लिया पर लोगों

ने उस पर थूका ।

'अपनी नाक बचाने के लिये उसने ऋण लिया, पर वह इसे कैसे चुकाएगा ?'

मुन्नूशाह (साहूकार) ने पुन्नूशाह (देनदार) को पकड़ लिया है, जिसने अपने पिता के श्राद्ध के लिये उससे उधार लिया था । अब पुन्नूशाह के सन्मुख बचने का कोई रास्ता नहीं है । जैसे इसी पर इति नहीं हुई है; हमारी कमर तोड़ने के लिये फ़ैशन अन्तिम प्रहार का काम कर रहे हैं । स्त्रियों में फ़ैशन का प्रचलन बढ़ रहा है; सहशिक्षा, मद्यपान तथा सिनेमा का दुष्प्रभाव चर्तुदिक् व्याप्त है । ऐसी स्थिति में जाति को पूर्णतः मर्यादाभ्रष्ट होने से कैसे बचाया जा सकता है ? यह तभी सम्भव हो सकता है जब डोगरे इन संकटों के प्रति जागरूक हों तथा डुग्गर के सभी अंग—मीरपुर, नूरपुर, कांगड़ा इस संकट का सामना करने के लिये कटिबद्ध हो जाएं । डोगरों के गौरव, सौन्दर्य तथा सांस्कृतिक परम्परा को बनाए रखने के लिए कवि श्लाघनीय कार्य कर सकता है । आवश्यकता साहस, संकल्प तथा समुचित नेतृत्व की है: 'डोगरा देस जागी जायां ओऽ'—('जाग ओ, डोगरा' देस !,' अरुणिमा पृष्ठ ६) ।

'प्रभात' नामक रचना में परिवार अथवा देश की निर्धनता का करुण वर्णन है । रात (वास्तविक और लाक्षणिक) अपने अन्तिम चरण पर है तथा नवल आशाओं वाली भोर समीप है । कवि को साहस नहीं छोड़ना चाहिये क्यों कि रातकी कालिमा विलीन होने को है, (अरुणिमा, पृष्ठ ८) । इस छन्द में उषःकाल, पक्षियों के चहचहाने तथा मन्दिरों में होने वाले भजन-कीर्तन का सुन्दर वर्णन है । पशु और पक्षी—सारा जगत दूर दूर तक जागा हुआ है, मनुष्यों को भी जागना चाहिये । रात्रि अन्धकार तथा कष्टों की प्रतीक है तथा प्रात का समय नए दिन, नई आशाओं तथा नवीन

युग की ओर संकेत करता है । इस छन्द में प्रकृति-चित्रण भी हुआ है ।

ठाकुर रघुनाथसिंह प्राय: स्थानीय रुचि के विषयों पर ही लिखते हैं । हमारे समाज में कला तथा साहित्य के प्रति बढ़ती हुई उपेक्षा से आप असन्तुष्ट हैं :

'कवि रतन गली बिच रुलदा बेकदरें दे महल्ले
रंग, शकल, गुन परखन कियां अकल नई जिन्दे पल्ले ।'

('कला तथा साहित्य से उदासीन लोगों की गलियों में कवि रूपी रत्न यहां वहां बिखरे पड़े हैं । जिनमें गुणों को पहचानने की क्षमता नहीं वे सौन्दर्य, गुण तथा विवेक की परख भला कैसे कर सकते हैं ?')

हां, कभी-कभी रघुनाथसिंह आध्यात्मिक विषयों पर भी लिखते हैं : 'समुद्र की भांति इस विशाल संसार को पार करना कठिन है । यह मन ही नौका को डुबो सकता है और केवल मन ही व्यक्ति को उस पार पहुंचा सकता है ।' (कृष्ण-लीला, पृष्ठ-२२, अरुणिमा)

रघुनाथसिंह जी ने डोगरी भाषा के विषय पर भी लिखा है तथा इसे श्रद्धाञ्जलि भेंट की है । (पृष्ठ २०-२२) 'माली' जैसे शाब्दिक और सहजबुद्धि के विषयों पर भी लिखा है (पृष्ठ १८)। उपदेशक की शैली 'मैहमा' (महिमा) पृष्ठ १८ में दृष्टिगत होती है । साहित्य को सम्याल महोदय की दूसरी देन डोगरी भाषा में रचित गीता है । यह अनुवाद एक हिन्दी अनुवाद पर आधारित है, क्योंकि आप संस्कृत नहीं जानते थे । डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने इसमें कुछ भाषागत त्रुटियों की ओर संकेत किया है । (Kashmir affairs : Edited by Balraj Puri)

यद्यपि गीता के इस अनुवाद की भाषा सरल है और नि:सन्देह इसमें संवादात्मकता की छाप है पर इसमें उस महान्

विषय और उसके गम्भीर चिन्तन के गुण के प्रति न्याय नहीं किया गया है, जिसके लिये गीता प्रसिद्ध है। इस प्रकरण में संवादात्मक शैली इसके मूल्य को घटाती है तथा कहीं कहीं इसकी गति को मन्द कर देती है। किसी हद तक उद्देश्य सिद्धि के लिये यह अपर्याप्त है। अनुवाद में विपुल गम्भीरता का अभाव है, जो कदाचित लेखक के व्यक्तित्व की आन्तरिक छाप के कारण हुआ है। इसमें अनेक शब्द हिन्दी के आ गये हैं, जिनका प्रयोग औचित्य की सीमा के बाहर है। परन्तु इस प्रयास को हतोत्साह करना उचित नहीं है। क्योंकि इसके द्वारा डोगरी साहित्य के विकास तथा इसमें अन्य भाषाओं से ग्रहण करने तथा उनमें से अनुवाद करके इसे संपन्न बनाने की सम्भावना प्रकाश में आई है। ऐसे प्रयास डोगरी शब्दावली में अभिवृद्धि करने का काम भी करते हैं। ठाकुर रघुनाथ सिंह की भाषा व्यावहारिक है तथा शैली सशक्त है और इनमें डोगरी मुहावरों का प्रयोग समुचित संदर्भ में करने का कौशल भी है। किन्तु इनकी रचनाओं में न तो शम्भुनाथ या अलमस्त जैसा लयमाधुर्य है और न दीनू भाई पन्त या तारा समैलपुरी की भांति इनके काव्य का जनता की समस्याओं से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध ही है। आपकी कविता में चिन्तनशील काव्यतत्व का अभाव है। आप डोगरी की नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से विच्छिन्न हैं, यद्यपि आप इनसे कभी-कभी प्रभावित अवश्य प्रतीत होते हैं। परन्तु फिर भी आपने अपने काव्य की भाषा के बल पर डोगरी मुहावरों के प्रयोग द्वारा तथा गीता का अनुवाद करके डोगरी कविता में अपना स्थान बना लिया है।

कुछ दिन बीमार रह कर १९६३ में आपका निधन हो गया।

पंडित हरदत्त शास्त्री : (१८९०-१९५६) यह तथ्य,

कि डोगरी की अपनी निजी परम्परा है, 'दत्तू' (राजा रणजीतदेव का शासनकाल), पण्डित गंगाराम (जिनका रचनाकाल महाराजा रणवीरसिंह का शासनकाल है) तथा लाला रामधन (जिन्हों ने महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में लिखा) की कविताओं से प्रमाणित हो सकता है। परन्तु उपलब्ध सामग्री की मात्रा इतनी कम है कि इसके आधार पर इस परम्परा के विषय में कोई सुस्पष्ट राय कायम करना सम्भव नहीं। यह मान लेना कठिन है कि दत्तू, पंडित गंगाराम तथा लाला रामधन ने केवल वही कविताएं लिखीं थी जो आज हमें उपलब्ध हुई हैं। इनकी कलागत प्रौढता, इनकी भाषा का माधुर्य तथा अपनी शैली पर इनका पूर्ण नियन्त्रण और अधिकार इस बात की ओर संकेत करते हैं कि इन कवियों ने अवश्य ही और अधिक लिखा होगा। यह पता लगाने के लिये कि क्या कुछ और हस्तलिखित सामग्री अभी शेष है, जिसका अभी तक पता नहीं लगाया जा सका है, या सभी कुछ विस्मृति की अतल गहराईयों में विलीन हो चुका है, और अधिक अनुसन्धान की आवश्यकता है।

पं० हरदत्त शास्त्री डोगरी में आधुनिक चेतना के प्रथम कवि हैं जिनकी कविताओं में सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक समस्याएं अभिव्यक्त हुई हैं। हरदत्त की कविता ने डोगरी साहित्य के विकास को एक निश्चित दिशा दी है।

पंडित हरदत्त जम्मू से तीन मील दूर 'पलौड़ा' नामक गांव में पैदा हुए थे। पांच वर्ष की आयु से ही आप जम्मू में अपने चाचा पंडित संतराम वेदपाठी के पास रहने लगे और वहीं संस्कृत में शिक्षा प्राप्त की। आप जम्मू-कश्मीर सरकार के शिक्षा-विभाग में संस्कृत के अध्यापक नियुक्त हुए। वहां से निवृत्त होने के समय पंडित जी जम्मू प्रान्त के सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुके थे। अपनी नौकरी के दिनों में आपको जम्मू प्रान्त के विभिन्न भागों में जाने का अवसर मिला। आप उन क्षेत्रों के लोगों से परिचय

प्राप्त करते और उनके साथ घुल-मिल जाते। आपको एक भावुक हृदय और एक सचेतन दृष्टि मिली थी। आपकी काव्यप्रतिभा का विकास उस सामाजिक तथा आर्थिक विषमता के वातावरण में हुआ था जो अभिशापपूर्ण विषमताए सामाजिक व्यवस्था एवं स्थिरता के लिए घातक थीं। देश तथा इसके लोगों के प्रति प्रेम और इस दु:खद परिस्थिति के प्रति रोष की भावना ने आपके कवि-हृदय को डोगरी में कविता लिखने के लिये आन्दोलित किया।

पंडित हरदत्त को जम्मू के लोग एक कथावाचक के रूप में अधिक जानते थे। इनके धर्मिष्ठ होने के कारण लोग पंडित जी की बातों को बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से सुनते थे। पं० हरदत्त में धार्मिक कथाएं कहने का विशिष्ट आकर्षण था। इनमें मानवीय समवेदना के सूत्रों को स्पर्श करने, उनकी शोचनीय दशा के प्रति उनमें रोषाग्नि प्रज्वलित करने तथा उन्हें उपहासास्पद बातों पर हसाने की क्षमता थी। इस हंसी का लक्ष्य उनके अपने निज के प्रति ही होता। और जब वे इन बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करते तो तभी उन्हें पंडित जी की कविता के वास्तविक उद्देश्य का भान होता। श्रोताओं में डोगरी बोलने तथा डोगरी समझने वाले लोग होते तथा सरल एवं स्पष्ट शैली में लिखी आपकी रचनाओं का उन पर सीधा प्रभाव पड़ता।

पंडित जी देशभक्ति के घने रग में रगे हुए थे; उनमें अपने अभागे देश की दुर्दशा को समझने की सामर्थ्य थी तथा आपके पास एक कवि का हृदय था। और इस सब से बढ़कर आपके श्रोताओं में ऐसे लोग थे जो आपको सुनने के लिये सदैव आतुर रहते थे। इस प्रकार आपकी रचनाओं में उपदेश द्वारा मनोरंजन न हो कर मनोरंजन द्वारा उपदेश देने का प्रयास दृष्टिगत होता है। नि:सन्देह आपकी शैली बच्चों के अध्यापक जैसो है। आपकी कला, कला के लिये न होकर नैतिक उद्रेक, आध्यात्मिक मूल्यों तथा देशभक्ति के उत्साह को अभिव्यंजित करने का माध्यम थी।

आपकी शैलीगत श्रेष्ठता जन-साधारण की भावनाओं को उद्वेलित करने तथा बीच-बीच में उन्हें हंसाते रहने में बहुत आकर्षक होती। परन्तु इस हास्य में व्यंग्य और उपहास अन्त:प्रवाहित रहता तथा वर्तमान को सुधारने की इच्छा रहती। विचार करने पर श्रोतागण उनके वास्तविक अभिप्राय को भांप लेते। ये व्यंग्योक्तियां उन्हें छोड़ किसी दूसरे के प्रति नहीं होती थीं। आपके वर्णन में लोगों के घर की भीतरी दशा का चित्रण रहता था। पंडित जी के काव्य की उत्कृष्टता सर्वाधिक इनकी सामाजिक तथा गृहस्थ - जीवन संबंधी रचनाओं में लक्षित होती है। आपकी कविता में लालित्य का अभाव है तथा कल्पना की ऊंची उड़ान नहीं है। परन्तु नि:सन्देह इसमें मानवीय तत्व विद्यमान है—जो कभी तो मानव-जाति के साधारण तथा सहज व्यापारों और कभी राष्ट्रीय अनुपात की सीमाओं तक को छू लेता है।

आपकी अधिकांश रचनाओं का विषय स्पष्ट है। प्रत्येक कविता को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है: प्रथम भाग में अतीत की महानता तथा उसके गौरव का चित्रण रहता है, दूसरे भाग का सम्बन्ध वर्तमान - युग से होता है, जो आश्चर्यजनक रूप में अतीत से सर्वथा भिन्न है। आपके कथनानुसार वर्तमान पीढ़ी के लोग सामाजिक अभिशापों, संकुचित विचारों तथा साम्प्रदायिकता के अभिशापों की दलदल में फंसे हुए हैं। यह सब अपमानजनक है। परन्तु हरदत्त खोखले नारों पर जीवित रहने वाले कोरे आदर्शवादी लोगों में से नहीं हैं और न ही आप किसी सनक में आकर विरोध करने वालों में से ही हैं। यदि अतीत में हमारी गौरवमय परम्पराएं थीं तो कोई कारण नहीं कि अपनी इन अवांछनीय परिस्थितियों में भी हम उन्हें पुनर्जीवित करके उनकी पुन: स्थापना न कर सकें। आवश्यकता केवल स्पष्ट दृष्टिकोण तथा दृढ़ संकल्प की है। इसी परिणाम पर पहुंच कर आपकी कविताएं समाप्त होती हैं। इस

विस्तृत ढांचे में हरदत्त उस कलुषमय सामाजिक व्यवस्था की भर्त्सना करते हैं जिसमें दम्भ और पाखण्ड, छल-कपट, अन्ध-विश्वास, धर्मोन्माद, निर्धनों, विधवाओं तथा अछूतों के उत्पीडन का चित्रण है। कहीं चुभती व्यंग्योक्तियां हैं तो कहीं मृदु उपहास है तथा कहीं खुलकर निन्दा की गई है। और इस सब का चित्रण सशक्त और सजीव शैली में हुआ है। भाषा सरल एवं व्यावहारिक है। इसके द्वारा इनका श्रोताओं पर पड़ने वाला प्रभाव स्पष्ट है।

पंडित हरदत्त की देशभक्ति की भावना राजनयिक न होकर सामाजिक है। यद्यपि आपकी कविताओं का मुख्य विषय देश है परन्तु उनकी रचना एक राजनैतिक अर्थशास्त्री अथवा दार्शनिक के दृष्टिकोण से न होकर एक समाज-सुधारक के दृष्टिकोण से हुई है। यह तथ्य आपकी रचना 'मेरा देस' (मेरा देश) तथा 'डोगरा देस' (डोगरा देश) नामक रचनाओं से स्पष्ट है। हरदत्त की कविताओं के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात विषयों की अतिशय विविधता एवं उनका निर्वहण ही नहीं अपितु विषयों का सामंजस्य तथा उनका समुचित निरूपण इनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। हरदत्त एक सुधारक कवि थे इसलिये हिन्दु धर्म को सुधारने का प्रयास करने वाले आर्यसमाजियों की भांति आपने सनातन-धर्मी हिन्दुओं को सुधारने का प्रयत्न किया और हर ऐसे प्रसंग का समावेश किया जो लोकोपयोगी हो सकता था। जब आप देश-व्यापी पतनोन्मुख दुर्दशा को देखते हैं जहां सामाजिक अभिशापों का निर्बाध विस्तार हो रहा है, जहां न्याय के अधिकारियों को न्याय से वंचित रखा जा रहा है, वहां अपने को महान अथवा महान जाति के प्रतिनिधि कहना लज्जास्पद है। इन्हीं अभिशापों के फलस्वरूप हमारा देश अपनी महानता को खो चुका है। जब तक इन विभीषिकाओं का मूलोच्छेद नहीं किया जाता तब तक इसकी कोई सम्भावना नहीं कि हम मित्र - राष्ट्रों में

उपयुक्त स्थान प्राप्त कर सकें। इसके विपरीत हम दुःख और अधः पतन के समुद्र की गहराईयों में नीचे ही नीचे डूबते चले जाएंगे।

हरदत्त की कविताओं में कुछ प्रासंगिक संकेत और कुछ स्थानीय निर्देश मिलते हैं और उनका ज्ञान पाठकों को उनकी समुचित प्रशंसा करने तथा उनसे रसान्वित होने में सहायक होता है। हरदत्त प्रगतिशील कवि थे किन्तु उनकी प्रगतिशीलता एक राजनीतिज्ञ अथवा क्रान्तिकारी की नहीं है। सामाजिक तथा राजनयिक समस्याओं के प्रति आपकी प्रवृत्ति हस्ताक्षेपात्मक है। सामाजिक क्रान्तियों की कोरी बातें करने से कोई लाभ नहीं। दोषों का निवारण करने की दिशा में उठाये गये रचनात्मक कदम ही हमारी सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने में सहायक हो सकते हैं। और आप अपनी कविताओं में कभी उपहासोक्तियों द्वारा और कभी अनुनय-विनय अथवा प्रबोधनात्मक वचनों द्वारा तथा कभी रोष और भर्त्स्ना भरे कथनों द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रयास करते हैं। 'मेरा देस' 'डोगरा देस,' 'फ़ैशन,' 'बेकारी,' 'दालती दा धंधा', आदि कविताएं नैतिक रोष की भावना से ओत-प्रोत हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पंडितजी की प्रवृत्ति हस्ताक्षेपपूर्ण और रचनात्मक है। आप त्रुटिनिवारण और सुधार की भावना से आलोचना करते हैं। आप फ़ैशन-परस्ती द्वारा हो रहे सहज-बोध के विनाश को देखकर विचलित हो जाते हैं। विदेशी फ़ैशन के अन्धानुकरण में सभी प्राचीन परम्पराएं, अर्जुन और भीम की गरिमा भुला दी गई हैं; जिसके फलस्वरूप हमारा गृहस्थ-जीवन दुःखद बन रहा है।

'बेकारी' में आप ने बेकारी की सुलगती हुई समस्या को लिया है। यदि कच्चे माल तथा दूसरे पदार्थों का आयात करने की जगह स्थानीय उद्योग-धंधे शुरू किये जाएं तो इसके द्वारा देश से बेरोज़गारी को दूर करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

यह एक व्यावहारिक सुझाव है जिसे महात्मा गान्धी कार्यपरिणत कर चुके हैं। 'कलिजुगे दी महिमा' शीर्षक रचना में नीति के उपदेशक को हम अनिष्टकारी बातों के प्रचलन पर कुपित पाते हैं। आप की सभी कविताओं में अतीत के प्रति मोह दृष्टिगत होता है। वर्तमान कुरूप और घिनावना है। अतीत को पुनः प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग ऐसे नये भविष्य का निर्माण है जिसका आधार जीवन की पुरातन मान्यताओं पर तो हो किन्तु अन्ध-विश्वासों, धर्मोन्माद तथा सामाजिक विषमता पर न हो। देश की ऊर्जा के विनाश का कारण यही अभिशाप हैं। यह तथ्य फ़ैशन शीर्षक कविता (नीहारिका: पृष्ठ ६२) में स्पष्ट है। वक्ता की शैली--वक्ता का व्यक्तित्व उसकी शैली में निहित रहता है—सशक्त है। श्रेष्ठ तथा धार्मिक कार्यों को विस्मृत कर दिया गया है, जिसका परिणाम प्रस्तुत कलुषित वातावरण है। अतः यदि भगवान इस धरती पर पुनः अवतरित हों तो स्थिति में शुभ परिवर्तन आ सकता है। 'कलिजुगे दी महिमा' की भांति इस कविता में भी हरदत्त के व्यक्तित्व का धार्मिक पक्ष सामने आया है। धार्मिक उद्रेक और भक्त का आध्यात्मिक मूल्यों को प्राथमिकता देना और भौतिकवाद के प्रति उसका घृणाभाव इसमें स्पष्ट हुआ है। गीता की भावना भौतिक मूल्यों के परित्याग, अन्तर्विवेक तथा मानसिक शुद्धि में निहित है।

डोगरी साहित्य में हरदत्त पहले आधुनिक कवि हैं। आपने मातृभाषा के महत्व को समझा और अपनी कविता 'मातृभाषा' में प्राचीन ऋषि-मुनियों के निर्देश द्वारा, जिनमें सदसद्विवेक था तथा जिनके लिये सभी अनिष्टकारी बातें त्याज्य थीं और जो कभी भी मातृभाषा की उपेक्षा नहीं करते थे, इस तथ्य को प्रमाणित किया है। इस कविता में उस राष्ट्रीय आवेश के बीज विद्यमान हैं जिनके द्वारा जनसाधारण को अपनी मातृभाषा के महत्व का बोध हुआ।

आपकी 'लंका तेरी 'नथ्थू बचनी' नामक कविता में नौकरशाही प्रशासन की निरंकुशता की कड़ी भर्त्सना की गई है। यह कविता हमें रामायण के युग में ले जाती है तथा इसमें राजा रावण के अन्तिम दिनों और आजकल के शासकों की स्वेच्छाचारिता में समानता प्रदर्शित की गई है। ऐश्वर्य तथा आग की कल्पना-सृष्टि लेखक के सन्मुख उन आधुनिक प्रजापीड़कों के आसन्न अन्त का स्पष्ट चित्र उपस्थित करती है, जो रावण की भांति कोई तर्क नहीं सुनते तथा बुद्धि से काम नहीं लेते और इसी कारण जिनका रावण जैसा अन्त होना अवश्यम्भावी है। राष्ट्रीय संदर्भ में आपकी उक्ति में कितनी सच्ची भविष्यवाणी निहित है।

आपकी रचना 'दालती दा धंधा' में मुकदमेबाज़ो की प्रथा के दोषों का याथातथ्य चित्र उपस्थित किया गया है। ज़मीन के लिये किये गये मुकदमों का अन्त सर्वनाश में होता है। हम शुरू से ही देखते हैं कि हरदत्त मुकदमों के विरुद्ध हैं। आप मुकदमों के दौरान आने वाली विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण करते हैं। किस प्रकार मुकदमेबाज़ मुकदमा जीतने की झूठी आशा में अपनी सम्पत्ति को रहन रखते हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप वे दिवालिया हो जाते हैं। अदालतों में काम करने वाले चपरासी और मुन्शी अपनी सेवाओं के लिये घूस तथा वकील अपना पारिश्रमिक किस प्रकार मांगते हैं। बेचारे गरीब मुकदमेबाज़ किस तरह अपने इन मुक्तिदाताओं से छुटकारा पाना चाहते हैं और इस कानूनी कार्यवाही के अन्त की कामना करते हैं। शैली सहज, सरल तथा विवेकपूर्ण है। इसमें उपहास भी है। यद्यपि इसके उपहास में प्रखरता नहीं पर इसे पढ़कर पाठक सोचने पर विवश हो जाता है। वकील का मुन्शी जोंक की भांति उसका रक्तपान करता है, वह, जैसे भी हो, मुकदमेबाज़ से धन हथियाना चाहता है। इससे हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि धन को मुकदमेबाज़ी में अपव्यय न करके यदि यह फालतू हो तो, इसे दीन-दुःखियों में बांट देना

चाहिये। यहां उद्देश्य पूर्णतः स्पष्ट है, यद्यपि शैली में शिथिलता आ गई है।

'खज्जल ख्वारी' में भी सुधारक का वही स्वर मुखरित हुआ है। इसमें हरदत्त समकालीन समाज की बुराईयों को कोसते हैं : अन्ध-विश्वास तथा मिथ्या-मान्यताएं, पुरुषों का वृद्धावस्था में विवाह, जिसके फलस्वरूप लड़कियों को यौवनकाल में ही वैधव्य की यातना झेलनी पड़ती है। कविता में स्थानीयता की छाप है तथा यह प्रासंगिक निर्देशों से समृद्ध है। 'हुन नमां जमाना जी' (लोग इसे नया-ज़माना कहते हैं) हमारे गृहस्थ-जीवन पर एक मृदु उपहासोक्ति है। इसका व्यंग्य बड़ा प्रभावजनक बन पड़ा है क्योंकि इसमें हमारे घरेलू जीवन की आर्थिक कठिनाइयां तथा हमारे पाखण्डमय व्यवहार स्पष्टतः अंकित हुए हैं। कवि इससे आहत हुआ है अतः वह अपने श्रोताओं से इस पाखण्ड का परित्याग करने का अनुरोध करता है। रोग पर पर्दा डालकर तथा मूक रहकर अथवा इसे सहन करते रहने से इसका निवारण नहीं हो सकता। हमें सुधार की आवश्यकता है। क्योंकि पहले तो रोग को छिपाना और फिर अपने ही निर्णय के प्रतिकूल यह आशा करना, कि रोग दूर हो जाएगा, व्यर्थ है। हरदत्त की अंतिम रचना है 'फुट्ट मेरे देसै दे काला दी नशानी ए' (फूट मेरे देश के विनाशका चिन्ह है।) यह कविता रोचक स्थानीय प्रसगों से परिपूर्ण है। इसमें १९४७ में हुए साम्प्रदायिक दंगों की, अंग्रेजो शासन की—जो सभी मतभेदों और विपत्तियों के जन्मदाता थे, तथा जिनके कारण देश के विभाजन तक की नौबत आई—तथा विदेशियों के हाथों में कठपुतली बनने वालों की कड़ी निन्दा की गई है। हमें ऐसे लोगों से बचना चाहिये जिनसे देश को अपमानित होना पड़ा है। यद्यपि इसमें उत्कृष्ट साहित्यिक विशेषता नहीं है परन्तु इसकी शैली सशक्त है। इस क़विता का उद्देश्य लोगों को उनकी अवहेलना की मुद्रा से झझोड़ना है और इस दृष्टि से यह बहुत हद तक सफल भी कही जा सकती है।

हरदत्त की विचारसरिता देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण है और इनकी कृतियां इसका ज्वलंत प्रमाण हैं। आपने यह महसूस किया कि आपको अपनी मातृभूमि—डोगरी और डुग्गर—के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करना है। वे सभी बुराईयां—जिनकी आपने भर्त्सना की है—देश में व्याप्त थीं तथा उन्हें दूर करना आवश्यक था। दूसरे क्षेत्रों में लोग दूर दूर तक जाग्रत हैं। यदि डोगरे अब जाग्रत न हुए तो वे पिछड़ जाएंगे तथा न तो समय ही उनकी प्रतीक्षा करेगा और न आने वाली पीढ़ियां ही उन्हें क्षमा करेंगी। इस उपेक्षा-भाव द्वारा पहले ही देश की आर्थिक दशा का ह्रास हुआ है और इसका भविष्य अन्धकारमय है :

'अक्खीं मिट्टी लैनेयां फक्क लोको'

इन परिस्थितियों में हमारे देश का क्या बनेगा ?

'के आखां मेरे देसा तेरा के हाल होग ?

ऐसा करना नितान्त अनिवार्य है अतः तुम्हें स्वयं को जगाना है तथा दूसरों को भी जागृत करना है :

'सज्जनो, अपना आप जगाओ
आपूं जागो देसा गी जगाओ'

ऐसे थे कवि हरदत्त। परन्तु यह भी एक विधि-विडम्बना है कि उस व्यक्ति को, जिसने लोगों को अपनी निद्रा से जाग्रत होने तथा अपनी आर्थिक निराश्रयता को दूर करने के लिये सचेत किया स्वयं वृद्धावस्था में घरबार छोड़ कर, जीविका की खोज में, अपने प्रदेश से बाहिर जाना पड़ा। आप की मृत्यु १९५६ में बम्बई में हुई।

पण्डित हरदत्त को डोगरी साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान प्राप्त रहेगा, इस लिये नहीं कि उनमें उच्च साहित्यिक उत्कृष्टता थी; इस लिये भी नहीं कि उनमें मधुर एकतानता अथवा कल्पना की अद्भुत ऊंची उड़ान थी, अपितु इस लिये कि ये अभाव भी उनके

वास्तविक गुणों—उनकी विषयगत स्थिरता और उस का निर्वहण—के महत्व को घटाते नहीं हैं। आपने ऐसे समय में डोगरी में लिखा तथा इसे लोकप्रिय बनाया जब आधुनिक डोगरी साहित्य की कोई परम्परा ही नहीं थी। आपने एक ऐसे हिन्दी छन्द में लिखा है जो पंजाबी की लोकधुनों पर आधारित है और इस के द्वारा आप लोगों का ध्यान आकर्षित करने में समर्थ हुए हैं। श्री हरदत्त द्वारा स्थापित यह परम्परा दीनूभाई पन्त, रामनाथ शास्त्री, दीप, मधुकर तथा अन्य कई कवियों की कविताओं में आगे बढ़ी है। और एक कवि के रूप में श्री हरदत्त की प्रतिभा को यह अपने आप में एक बहुत बड़ी श्रद्धाञ्जलि है।

स्वामी ब्रह्मानन्द : (१८९१ - १९६२) आधुनिक युग में डोगरी कवि नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति उदासीन नहीं हैं। सर्वश्री हरदत्त शास्त्री, शम्भुनाथ, रामनाथ शास्त्री तथा रामलाल शर्मा की रचनाओं में नैतिक स्वर मुखर हुआ है परन्तु डोगरी कविता में आध्यात्मिक मूल्यों के अनावरण का अपूर्व दृष्टान्त स्वामी ब्रह्मानन्द की कविता में मिलता है।

स्वामीजी का जन्म जम्मू प्रान्त के अखनूर नामक स्थान पर सन् १८९१ ईस्वी में हुआ। आपका वास्तविक नाम संसारसिंह था। आपने प्रारंभिक शिक्षा अखनूर के स्कूल में ही प्राप्त की। ज्ञान की जिज्ञासा इन्हें बाल्यावस्था ही से थी। अपनी शिक्षा समाप्त करके आप जम्मू आये और यहां आपको उपयुक्त वातावरण मिला। यहां पर आपने फ़ारसी तथा अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया तथा वेदों और सूफ़ीमत का अध्ययन किया।

शुरू में आप श्रीरणवीर गवर्नमेंट प्रेस में क्लर्क नियुक्त हुए और वहां से तीन वर्ष बाद जम्मू-कश्मीर सरकार के रिसेप्शन विभाग में आपकी बदली हो गई। परन्तु अपनी धर्मपत्नी की मृत्यु के कारण आपने कुछ वर्ष पश्चात यह नौकरी भी छोड़ दी।

सन्यास ग्रहण करने से पूर्व आप ने जम्मू के महान् संस्कृत विद्वान श्री निकाराम शास्त्री से ब्रह्मसूत्र, शाङ्करभाष्य तथा उपनिषद् पढ़े। डोगरी में लिखना आपने १९५५ में आरम्भ किया।

अपनी मृत्यु होने के समय सन् १९६२ तक आप छः पुस्तकें लिख चुके थे।

स्वामीजी वेदान्त दर्शन के अनुयायी थे। अन्य वेदान्तियों की भांति आप भी यह अनुभव करते थे कि सांसारिक विषयों में हमारी अत्यधिक आसक्ति ही सब सांसारिक दुःखों का मूल कारण है; क्योंकि हम सांसारिक उपलब्धियों तथा हानियों के साथ इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि वास्तविक आनन्द से, जो मानसिक स्थिरता द्वारा प्राप्त हो सकता है, वचित रहते हैं। सारा बाह्य चकाचौंध एक मिथ्या प्रवंचना है। यहां सब कुछ मिथ्या है, माया है। सभी इच्छाओं तथा प्रलोभनों से मन तथा इन्द्रियों को संयमित करना ही आत्मा की शान्ति को प्राप्त करने का सर्वोत्तम मार्ग है। वेदान्ती ब्रह्म को पहचानता है और हम सब के भीतर उसी परब्रह्म का प्रकाश ज्योतित हो रहा है।

यह सब एक अमूर्त और गूढ दर्शन है परन्तु स्वामी ब्रह्मानन्द की सबसे बड़ी सफलता इस सब को सरल, सुबोध तथा सहज और प्रत्यक्ष ढंग से अभिव्यक्त करने में है। वाक्यालकारों की सहायता से आप अपने अभीष्ट अर्थ पर प्रकाश डालते हैं, वस्तुओं की बाह्य चकाचौंध पर मुग्ध होने वाले कभी भी प्रसन्न नहीं रह सकते :

"दिक्खने सुनने अन्दर आवे सो सब झूठा मिथ्या ऐ,
मृग-तृष्णा दा जाल जो पैंदा, रजदा नेईं कोई दिखेया ऐ"

आवश्यकता केवल भटकते हुए मन को वश में करने की है :

'संसारे च कोई नेई बैरी भलेयां नजर दड्ग्राई ऐ
अपने गै इस मनां कन्ने अठ्ठै पैर लड़ाई ऐ'

हम संसार में अत्यधिक आसक्त रहने के कारण हो दुःखी हैं। सांसारिक लेन-देन में ही हम अपनी आध्यात्मिक शक्ति को क्षीण कर देते हैं। मनुष्य जाति के सन्मुख इस धरती पर लोभ, आर्थिक तृष्णा तथा परलोक-भय की दुबिधा है। लोग अपनी विषय-लोलुपता पर तो संयम रख नहीं सकते पर आध्यात्मिक साधना में निरत दिखाई देते हैं। उनका वही परिणाम होता है जो दो नौकाओं के सवार का होता है। ये इस भौतिक संसार की मायावी प्रसन्नताओं तथा उपलब्धियों में मग्न रहते हैं और उस हर्ष एवं आनन्द से वंचित रहते हैं जो इस ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक यथार्थों में निमज्जित होकर प्राप्त हो सकता है।

अतएव वेदान्त-दर्शन के अन्य अनुयायियों की भांति स्वामीजी भी चंचल मन को संयमित रखने पर बल देते हैं, जिसके बिना हम उस आनन्द से उसी प्रकार वंचित रहेंगे जिस प्रकार हम पारे के स्पर्श से वंचित रहते हैं या फिर जैसे उस नाली में पानी नहीं ठहर सकता, जिसके चारों ओर छेद हों।

स्वामीजी की कविता के पांच संग्रह प्रकाशित हुए हैं : 'गुज्ज दा गुड़', 'मानसरोवर', 'गुप्त गङ्गा', 'श्री ब्रह्म संकीर्तन', तथा 'अमृत वर्षा'।

डोगरी कविता, जो स्वामी जी की सरल एवं प्रभावोत्पादक शैली में प्रस्तुत गम्भीर आध्यात्मिक विषयवस्तु द्वारा समृद्ध हुई है, इनके अभाव में निर्धन रहती।

१९६२ में आप अपनी इहलीला समाप्त करके स्वर्गवासी हुए।

मूलराज मेहता : हरदत्त के साथ-साथ लोकप्रिय होने वाले एक और कवि मूलराज मेहता थे। आपके व्यक्तित्व

तथा आपकी कृतियों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है परन्तु आपकी रचना 'जीना पहाड़ें दा जीना' ने आपके लिये डोगरी कविता में स्थान बना लिया है ।

यह कविता पहाड़ी जीवन की मोहक स्मृतियों से भरी हुई है और उन बहुसंख्य गीतों, जिनमें अधिकांश लोकगीत हैं, में से है जो पहाड़ी जीवन का मैदानी और नागरिक जीवन से अन्तर बताती हैं। यह कविता अपनी सरलता और गेयता के कारण उल्लेखनीय है तथा एक पहाड़ी लोक-धुन पर लिखी गई है । इसी कारण लोग प्रायः इसे लोकगीत समझते हैं । इसमें पहाड़ी लोगों के निश्छल स्वभाव, वहां के स्वास्थ्यवर्धक जलवायु, ठण्डे जलस्रोतों तथा रात के समय चमकने वाली वनौषधियों का चित्रण है। कवि नागरिक जीवन तथा वहां के लोगों की निन्दा भी करता है जो शरीर के तो उजले होते हैं परन्तु मन के काले होते हैं, जो सदैव धन-संग्रह करने में जुटे रहते हैं। वे लोग दूसरों की पीडा और वेदना को भला क्या जानें ? बेचारे पहाड़ी लोग अच्छी जीविका की खोज में शहरों में जाते हैं परन्तु वही जानते हैं कि वहां पर उन्हें क्या क्या झेलना पड़ता है।

कविता बोलचाल की भाषा में लिखी गई है तथा इसका सहज और सरल प्रवाह, जिसे पहाड़ी धुन में गाया गया है, इसके सौन्दर्य में अभिवृद्धि करता है।

यह कविता पहाड़ी लोगों के रहन-सहन, उनके कम्बल तथा लोईयां आदि बनाने के व्यवसाय पर भी प्रकाश डालती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि मूलराज मैदानी इलाक़े के रहने वाले थे और सरल स्वभाव के पहाड़ी लोगों से प्रभावित हुए थे । पहाड़ों के इस सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाले, जिनका गुग-गान मूलराज ने इतने माधुर्य से किया है, एक अन्य कवि अलमस्त हैं। खेद है कि मूलराज की अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नहीं हो सकी है।

परन्तु ऐसा विश्वास करने के कारण हैं कि आपने एक से अधिक कविताएं लिखी होंगी।

जगन्नाथ कालरा 'चार्ली : जगन्नाथ कालरा जम्मू के निकट 'कोटली चाड़कां' नामक स्थान पर १८९४ में पैदा हुए थे। आपने मिडल श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की और स्वर्गीय महाराजा प्रताप सिंह के पास उनके निजी विदूषक के रूप में नौकर हो गए। महाराजा प्रतापसिंह की मृत्यु के बाद आप राजस्व-विभाग में चले गए। श्री कालरा रंगमंच पर हास्य की भूमिका किया करते थे, इसीलिये लोग इन्हें चार्ली कहकर पुकारने लगे।

१९४३ में आपकी पत्नी की मृत्यु हो गई तथा इस अप्रत्याशित आघात से इनके भावों का द्वार खुल गया और इन्होंने अपनी पहली कविता लिखी।

'कोई आज मरता है तथा कोई कल, और आने वाले दिनों में दूसरे लोगों को मरना है।'

इसके बाद आपने विविध विषयों पर अनेकों कविताएं लिखीं। जगन्नाथ वस्तुतः हास्यरस के कवि हैं परन्तु आपका हास्य परिमार्जित नहीं होता। यदि व्यंग्योक्ति हो तो उसमें तीखी छुरी की सी चुभन न होकर छड़ के कुण्ठित (मुथरे) प्रहार का झटका सा रहता है। स्वयं प्रसन्न रहना तथा दूसरों को प्रसन्न करना ही श्री कालरा की कविता का मुख्य उद्देश्य होता है। कवि सम्मेलनों में कविता पाठ करते समय आप अधिक लोकप्रिय होते हैं क्योंकि उस समय आपकी चेष्टाएं, आपका स्वर और विलक्षण मुस्कान, जो भले ही किसी की प्रज्ञा को आन्दोलित न करती हो, आपके श्रोता समाज की सुकुमार भावनाओं को अवश्य ही स्पर्श कर जाती है। जगन्नाथ कालरा के पास यद्यपि उत्कृष्ट भाषा और भाव नहीं हैं तो भी निःसन्देह इनमें प्रगाढ़ हास्य का

तत्व विद्यमान है। आपकी कविता में कहीं कहीं जो सुकुमार व्यंग्योक्तियां एवं करुण चित्रण होते हैं प्राय: वे भी विनोद के तत्व से परिपूर्ण होते हैं।

आपकी कविता में स्वर्गीय पंडित हरदत्त का प्रभाव देखा जा सकता है : समाज पर व्यंग्य, जिसमें मनुष्य जाति की बुद्धि को सुधारने के लिये तथा हमारे देश की समाजिक तथा रोजगार संबन्धी परिस्थितियों में प्रबल परिवर्तन लाने के लिये अनुरोध है। इस सब में इनपर हरदत्त का कम प्रभाव दिखाई नहीं देता। इनकी कविता में कहीं कहीं उपदेशात्मक अंश भी हैं परन्तु ये अंश कविता का अभिन्न अंग न होकर अन्त में नत्थी किये गये से प्रतीत होते हैं। 'हिन्द दी पुकार' (भारत की पुकार), 'खरा हा में ग्रां' (मैं गांव ही में अच्छा था।) और 'गरीबें दी दयाली !' (ग़रीबों की दीवाली) आदि इनकी कुछ श्रेष्ठ रचनाएं हैं।

'हिन्द दी पुकार' देशभक्ति की भावना मे भरी हुई रचना है; 'खरा हा में ग्रां' में गांव की स्मृतियों का मोहक चित्रण है तथा नागरिक जीवन - चर्या पर कटाक्ष किया गया है। 'ग़रीबें दी दयाली' में एक ऐसे दरिद्र व्यक्ति का चित्रण है जिसे धनाभाव के कारण दिवाली मनाने में असमर्थ होते हुए भी दिवाली मनानी पड़ती है; जिसके पास दो जून खाने को नहीं, किन्तु आडम्बर बनाए रखने के लिये जिसे कीमती मिठाईयां खरीदनी पड़ती हैं। सामाजिक कुरीतियों के कारण एक निर्धन व्यक्ति दीवाली सम्बन्धी धन व्यय करने से बच नहीं सकता। पुराना ज़माना अच्छा था, आज तो जुआ एवं अन्य सामाजिक बुराईयों का प्रचलन बढ़ गया है। भगवान कृष्ण इन त्योहारों की पवित्रता की पुन: स्थापना करें तथा मानव-जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिये मनुष्य जाति का पथ-प्रदर्शन करें।*

---

*देखिये : जागो डुग्गर, डोगरी संस्था प्रकाशन।

जगन्नाथ कालरा महान कवि नहीं हैं, किन्तु उन दिनों, जब इने-गिने डोगरी-भक्त ही हुआ करते थे, आप इस भाषा में लोगों के बीच, जडतापूर्ण क्षणों में हल्के हास्य-विनोद का संचार किया करते थे।

किशन समैलपुरी : (१९००...) किशन समैलपुरी ने पहले उर्दू कविता लिखना आरंभ किया और अपनी साहित्यिक कृतियों द्वारा ख्याति प्राप्त की। आपने ज़ौक, दाग़, ग़ालिब तथा जोश मलीहाबादी का गहरा अध्ययन किया था किन्तु जब मातृभाषा एवं क्षेत्रीय भाषाओं के आन्दोलनों ने ज़ोर पकड़ा तो आप भी डोगरी की ओर प्रवृत्त हुए ताकि इस भाषा में लिख कर अपनी मातृभूमि से उऋण हो सकें तथा अपने देश और अपने देशवासियों की सेवा कर सकें। किशन महोदय का जन्म साम्बा तहसील के समैलपुर नामक गांव में सन् १९०० ई० में हुआ। आपके पिता पं० सुन्दरदास एक धर्मिष्ठ व्यक्ति थे। किशन बाल्यावस्था से ही एकान्तप्रिय तथा गम्भीर स्वभाव के थे। जब आपकी माता का देहान्त हुआ तो आपकी आयु छः वर्ष की थी और उनकी मृत्यु के आघात ने आपको अधिक चिन्तनशील बना दिया। नाटक, संगीत तथा कविता में अनुरक्त होते हुए भी आप मिडल श्रेणी से आगे न पढ़ सके। डुग्गर की प्रशंसा में आपकी मातृ-भक्ति की भावना को अभिव्यक्ति मिली जो (डुग्गर भूमि) दूसरी मां के तुल्य है :

'फ़िरदौस से है बढ़कर मेरा वतन यह डुग्गर'

(मेरी मातृभूमि डुग्गर स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है) यह कविता उर्दू में है और मातृभूमि के प्रति आपकी परमभक्ति का ज्वलंत उदाहरण है। साहित्यिक रुचि रखने वाले लोगों ने इसकी सराहना की परन्तु उन बहुसंख्यक डोगरों को इससे क्या लाभ हो सकता था जो उर्दू में पढ़ लिख भी नहीं सकते थे और भले ही

यह प्रशंसा-भरी उक्ति उन्हीं के लिये महत्व रखती थी । अतः जब समय का प्रवाह बदला तो किशन समैलपुरी ने भी अपना नया कर्तव्य निर्धारित किया ।

पाकिस्तान की ओर से हुआ कबाईली आक्रमण डुग्गर के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आन्दोलन के लिये एक प्रकार से प्रच्छन्न वरदान सिद्ध हुआ । कवियों को मुक्तिदाताओं और नेताओं का काम करना पड़ा और जनता से डोगरी में अनुरोध करके उसे गहन निद्रा से जागृत करना पड़ा । उन्हें अपनी धरती के सौन्दर्य की सम्पन्न विरासत के प्रति सचेत होना चाहिये । इन्हीं परिस्थितियों में डोगरी में देशभक्ति - काव्य का जन्म हुआ । डुग्गर भूमि केवल स्वर्ग की भांति सुन्दर ही नहीं—(दीनूभाई के शब्दों में : सुर्गा नेया देस डोगरा); किशन समैलपुरी के लिये यह उससे भी कहीं अधिक सुन्दर है :

'सुर्गा दी गल्ल नेईं ला अड़ेया, जस अपने देसा दा गा अड़ेया ।'

(स्वर्ग की बात क्यों करते हो ? अपने देश का यशोगान करो !)

यह देशभक्ति की कविता का चरम - बिन्दु था और यह किशन की उर्दू में अपनी पूर्वरचित डुग्गर - प्रशस्ति की प्रतिध्वनि थी । किशन महोदय की प्रस्तुत कविता में डुग्गर के इतिहास, भूगोल, इसकी दन्तकथाओं तथा काल्पनिक आख्यानों का समावेश है । डोगरी में, बाहिर के लोगों के लिये, यह एक सुन्दर परिचायिका है तथा डुग्गर वासियों को उद्‌बुद्ध करता है । यहां पर प्रकृति ने अपने सारे भण्डार रीते कर दिये हैं, यह वीर योद्धाओं की धरती है । यह सन्तों और देवताओं का निवासस्थान रहा है और सुन्दर तथा वीर नारियों की रंगभूमि एवं स्वास्थ्यप्रद जलवायु, नदियों तथा वन्य-सम्पदा से परिपूर्ण वसुन्धरा है ।

और यदि इतनी रमणीय विभूतियों के रहते भी हमारा प्रदेश स्वर्ग के अनुरूप नहीं बन पाया है तो इसका कारण स्वार्थपरता तथा मुट्ठी भर लोगों द्वारा जनता का शोषण है । इसके लिये इस सामाजिक ढांके में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है, जिसके के कारण यहां विषमता और अन्याय का बोल - बाला है। आर्थिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता के बिना हमारी राजनैतिक स्वतन्त्रता एक मज़ाक है।

'असें ए दिन पलटी सुट्टने नीं'
(हम ने इस युग को बदल देना है ।)

डुग्गर के प्रति आपका यह प्रेम आपकी अन्य कविताओं में भी प्रकट हुआ है । 'डोगरा पैंछी में आपके डुग्गर - प्रेम की वाग्मितापूर्ण अभिव्यक्ति है; इसमें भी डोगरा रमणियों का स्तुतिगान है, जिनकी सुन्दरता चन्द्रमा की श्वेतिमा को भी लज्जित करती है। अपने 'स्यासी गीत' (राजनयिक गीत) में, जो पंजाबी के एक फिल्मी गीत की धुन के अनुकरण पर लिखा गया है, आप डोगरों को उत्थान के लिये अनुरोध करते हैं, क्योंकि देश पर संकट बना हुआ है : यह साम्प्रदायिकता, ईर्ष्या तथा लोगों की पारस्परिक वैरभावना रूपी आम्यन्तरिक शत्रुओं तथा विदेशी आक्रान्ताओं से घिरा हुआ है । इन्हें परास्त करना ही देशकी सुरक्षा का एक-मात्र मार्ग है। यद्यपि इस गीत के भाव सराहनीय हैं पर इसमें नैसर्गिक प्रवाहशीलता एवं संगीतात्मकता का अभाव है ।

किशन समैलपुरी की रचनाओं में अधिक संख्या गीतों और गज़लों की है। किशन महोदय ने एक उर्दू लेखक के रूप में लिखना आरम्भ किया था अतः आपको गज़ल के शिल्प, शैली तथा पद्धति का अच्छा ज्ञान है। इन्होंने अपने उसी अनुभव को प्रयोग में लाकर कुछ अच्छी गज़लें लिखी हैं। आप जम्मू रेडियो स्टेशन में काम करते हैं । इससे आपको अपनी डोगरी कविताओं

एवं ग़ज़लों को लोकप्रिय बनाने में सहायता मिली है। इनकी ग़ज़लों का विषय प्रेम और शृंगार है जो आपकी उर्दू की गजलों में प्रमुख रूप में विद्यमान है। शिल्प की दृष्टि से आपकी ग़ज़लें सफल कही जा सकती हैं तथा ये डोगरी ग़ज़ल में उर्दू ग़ज़ल की सी मनःस्थिति लाने में समर्थ हुई हैं। आप की ग़ज़लों में प्रमोद, हल्का रोमांस, आत्म-करुणा है तथा अपने ऊपर स्वयं हंसा गया है तथा प्रेमिका की प्रशंसा-भरी उक्तियां हैं। कहीं कहीं आपने अपने आश्चर्यजनक बुद्धिकौशल का परिचय दिया है: 'मैंने मुस्कराते हुए उसे आलिङ्गन किया परन्तु वह कुपित होकर बोली, 'क्या तुम मुझे लिपटने योग्य फूलों की टहनी समझते हो?' गजल १, २, (पृष्ठ ८१ अरुणिमा : सम्पादक तारा समैलपुरी) कवि के सुकुमार बुद्धिवैभव का उदाहरण हैं। किशन की कुछ ग़ज़लों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप लोगों को, अपने व्यक्तित्व को क्षति पहुंचा कर भी, हंसाते हैं; स्थिति-विशेष का आमोद एवं हास्य इसी में निहित रहता है। छन्द-योजना लगभग उर्दू गज़ल की ही है।

परन्तु आपकी कविता में बड़ी संख्या ऐसे गीतों की है जिनमें प्रेम और मिलन तथा प्रेम और विरह का मिश्रण हुआ है। कहीं कहीं प्रकृति-चित्रण का भी समावेश हुआ है। आपके कथनानुसार डोगरी में गीत बहुत कम संख्या में थे और आपने इस अभाव की पूर्ति का प्रयास किया है। कहीं कहीं आप देश-प्रेम तथा नारी सौन्दर्य को एकाकार कर देते हैं। आपकी धारणा है कि आपने लोक-गीतों को अपना कर अथवा उनकी एक या दो पंक्तियां लेकर और उनके आधार पर अपने गीतों की रचना करके उन्हें विस्मृत होने से बचा लिया है और इसके साथ साथ उनके सौन्दर्य में अभिवृद्धि भी की है। यह एक विवादास्पद विषय है, क्योंकि ऐसा परिवर्तन सदा बेहतरी के लिये नहीं होता। कभी कभी मूल गीत की मनःस्थिति की पकड़ पूर्णतया नहीं हो पाती तथा कुछ और जोड़ देने से इसमें

वैसी नैसर्गिक प्रवाहशीलता एवं वातावरण का अभाव रहता है। अरुणिमा के पृष्ठ ४३ पर दिया गया गीत इस तथ्य का प्रमाण है; इसमें मूल गीत तथा उसके भाव का मिथ्याख्यान हुआ है, क्योंकि मूल गीत में नव-वधू अपने मायके में माता-पिता के विषय में जानना चाहती है जबकि किशन के गीत में, ऐसा संकेत मिलता है कि वह समझ नहीं पा रही कि वह उसे (जोगी को) देख कर ऐसा क्यों अनुभव कर रही है? वह अनुभव करती है जैसे कि वह कुछ भी न करना चाहती हो तथा थोड़ा सा काम कर के थक जाती हो।

एक बात और भी है। चूंकि लोकगीत किसी प्रकार के यशोलाभ अथवा नाम की ख्याति के किसी सचेतन उद्देश्य से लिखे गए नहीं होते, वे आत्मचेतनाशील नहीं होते। भले ही वे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक प्रयासों द्वारा लिखे गए हों, पर वे समुचित वातावरण की सृष्टि करने की दिशा में लेखकों की मन:स्थिति तथा उनके प्रयासों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु किशन समैलपुरी के कुछ गीतों में उस गरिमा एवं उस मन:स्थिति का अभाव है तथा विभिन्न छन्दों में उसी एक विचार की पुनरुक्ति है। इसके कारण, जहां तक उनके साहित्यिक मूल्यों का सम्बन्ध है, इनमें प्रभावहीनता आ गई है। (देखिये अरुणिमा : पृष्ठ ४१)। गीत—२ (अरुणिमा, पृष्ठ ३९) में उस माधुर्य का अभाव है जो एक लोकगीत की विशिष्टता हुआ करती है। और फिर 'बट्ट' के निर्देश से गम्भीता के नितान्त अभाव का आभास होता है, जबकि प्रारम्भिक पंक्तियों में संसार की द्विमुखी नीति के विषप में गम्भीर तर्क प्रस्तुत किये जा रहे हैं। गीत—१ (पृष्ठ ३९—'परदेसन कूंज') में अन्तिम चरण भरती का प्रतीत होता है तथा उसमें कलात्मकता का अभाव है। और अन्तिम पंक्ति, जिस में वह 'कूंज' पक्षो को अपने साथ दास बना कर लेजाने का अनुरोध करता है, असंगति की सीमा तक जा पहुंची है। पूरे गीत में काव्य की भावना का अभाव है।

किशन समैलपुरी ने हिन्दी कविता की पद्धति पर सवैया, दोहा, कवित्त तथा ठुमरी एवं अन्य रागों पर डोगरी में लिखने का प्रयास भी किया है। जहां तक शिल्प-पाटव का संबन्ध है किशन महोदय में वह विद्यमान है तथा उनके हिन्दी से दोहा, कवित्त और कुण्डलिया को डोगरी में लाने और लिखने के प्रयोगों को पर्याप्त सफलता भी मिली है। पर जहां तक ठुमरी तथा अन्य रागों को डोगरी में ढालने का संबन्ध है, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। रागों की शास्त्रीय पद्धति में अपनी नियत मात्राएं होती हैं तथा उनकी निजी पृष्ठभूमि एवं शैली होती है। वे एक विशिष्ट मन:स्थिति एवं वातावरण की उपज होते हैं। जबकि डोगरी में इन्हें नियत मात्राओं में लिखना तो सम्भव है, पर समैलपुरी इनमें उस विशिष्ट मन:स्थिति तथा संगीत के गुण की सृष्टि करने में समर्थ नहीं हो पाए हैं। इसके लिये सगीत की अच्छी जानकारी की आवश्यकता होती है। किशन समैलपुरी यद्यपि संगीत को समझ लेते हैं किन्तु फिर भी आपको इसके शिल्प तथा शास्त्रीय-ज्ञान पर अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता है। परन्तु इस तथ्य को अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता कि किशन महोदय का यह प्रयास सफल रहा है।

डोगरी को किशन समैलपुरी का योगदान श्लाघनीय है। पिछले कुछ समय से आप साहित्यिक गतिविधि का प्रमुख धारा से विच्छिन्न हो गए हैं और प्रणय-गीत तथा ग़ज़लें लिखने में लगे हैं। किशन महोदय ने डोगरी गीतों की संख्या में अभिवृद्धि की है। यद्यपि इनकी रचनाओं में वर्णनात्मक, नाटकीय तथा चिन्तनशील कविता के गुण विद्यमान नहीं हैं फिर भी आप ने डोगरी साहित्य में नवीन प्रयोग करते हुए ग़ज़लें, कवित्त, सवैये तथा कुण्डलिये आदि लिखकर अच्छी साहित्य सेवा की है। इनके डुग्गर के चित्रणों में, कहीं कहीं बीच में, भले ही त्रुटियां आ गई हों परन्तु ये नि:सन्देह देशभक्ति की भावना से आप्यायित हैं।

परमानन्द अलमस्त : (१९०१......) अलमस्त का नाम एक ऐसे व्यक्ति की ओर संकेत करता है जो निश्चिन्त, आत्म-केन्द्रित तथा जीवन की सामान्य दिनचर्या के प्रति बेपरवाह है तथा जिसकी कविता पर भी इन बातों की छाप है। डुड्डू-बसंतगढ़ (तहसील बसोहली) में कई वर्ष रहने के कारण आपने इस प्रदेश की सुन्दरता को जो भर देखा है और आपकी बहुत सी कविताओं में उस क्षेत्र की मोहक स्मृतियां अभिव्यक्त हुई हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अलमस्त ने पार्वत्य क्षेत्रों, उनके सुन्दर दृश्यों तथा वहां के लोगों की सरलता के स्तुतिगान के साथ डोगरी कविता में प्रवेश किया तथा इनकी समूची कविता में यह पक्ष प्रमुख रूप में विद्यमान है। यही वे क्षेत्र हैं जहां जाकर आपको यह भान हुआ कि डुग्गर भूमि सुन्दर है, इसका जलवायु स्वास्थ्यप्रद है तथा यहां आकर हमें मानसिक शान्ति का आभास होता है। झरनों तथा नदियों का कल-कल नाद, पक्षियों का चहचहाना, फूलों और फलों के निखार तथा ऋतुओं के परिवर्तन से जीवन में नवलता एवं सुकुमारता का बोध होता है। और यह सब अलमस्त की कविता में प्रतिबिम्बित हुआ है। इस सब सामग्री को आपने पहाड़ी गीतों की धुनों तथा उनके छन्दों का बाना पहनाया है; इससे हमें कभी कभी ऐसा आभास होने लगता है कि आपकी कविता लोक-गीतों पर आधारित है। ऐसा लगता है कि पहाड़ों के विषय में लिखते समय आपने पूर्णतया एक पहाड़ी व्यक्ति का बाना ओढ़ लिया है तथा पार्वत्य क्षेत्रों और वहां के वातावरण का जो चित्रण आपने किया है वह पर्याप्त मात्रा में इसी कारण से हुआ है।

अलमस्त अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे और आपको उनका प्रगाढ स्नेह मिला था। पर आप अभी दस ही वर्ष के थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया। आपकी माता मस्तिष्क दौर्बल्य से पीडित थी अतः आप अपने दादा के साथ रहने लगे।

आपने मिडल तक शिक्षा प्राप्त की तथा अपने दादा के मृत्यु हो जाने पर तुरन्त ही आपको एक कम्पौंडर के स्थान के लिये यत्न करना पड़ा।

अलमस्त ने १९३९ में कविता लिखना आरंभ किया। आपकी प्रथम डोगरी कविता जम्मू-कश्मीर राज्य के प्रथम सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह के जन्मोत्सव पर लिखी गई थी। उन दिनों आपको अपनी कविता के प्रेमी कठूआ में मिले जहां पर आप उस समय नियुक्त थे। अलमस्त में संगीत का तत्व प्रबल है तथा आपकी कविताओं में गीतों की सी सुन्दरता है, जो उस समय और भी मनोहारी लगते हैं जब अलमस्त स्वयं इन्हें पढ़कर सुनाते हैं।

अलमस्त की कविता से पता चलता है कि डुड्डू बसंतगढ़ के निवास ने आपके चिन्तन तथा शिल्प को किस प्रकार अपने सांचे में ढाला है। पार्वत्य प्रदेशों, वहां के जन-साधारण, उनके रीतिरिवाजों और शिष्टाचारों के वर्ण्य-विषय का चित्रण पहाड़ी संगीत की नवलता, मादकता तथा इन क्षेत्रों के अल्हड़पन द्वारा हुआ है। कभी कभी हमें इनके विषय-वस्तु तथा शैली को पार्वत्य क्षेत्रों का पर्यायवाची समझने का प्रलोभन हो आता है और यही वह गुण है जिसके कारण आपके गीत डुड्डू-बसंतगढ़ में प्रसिद्ध हुए हैं। जब कभी पहाड़ों में कोई गीत नष्टप्राय होने लगता है तो अलमस्त बड़ी तत्परता से उसे बचाने के लिये प्रवृत्त होते हैं।

'ओ मित्र ! पहाड़ों का जीवन उत्तम है !'

"ठंडा जल-वायु तथा शीतल छाया तुम्हारे जीवन की सारी चिन्ताओं को विस्मृत कर देते हैं।"

पर कोई यह न समझ बैठे कि आपने केवल पहाड़ी क्षेत्रों के विषयों पर ही लिखा है। आपकी रचना 'सुर्ग नेई जान होन्दा पित्तल खड़काए दे' इसके प्रमाण में उद्धृत की जा सकती है।

अलमस्त प्रभंजन की भांति स्वतन्त्र हैं, स्वच्छन्द हैं और आपको संकीर्ण तथा रूढ़ परिस्थितियों में बंध कर रहना वांछ्य नहीं। जब प्रकृति स्वच्छन्द है तथा इसमें कृत्रिमता नहीं, तब भला मनुष्य में यह सब क्यों हो? आनन्द और माधुर्य, ईमानदारी और अत्रिमता में निहित है तथा निश्छल मानवता को फांसने के लिये अकृत्रिमता रंगों का जाल बुनने वाले लोग इन गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकते। वस्तुतः धर्म मानवता तथा मानव-प्रेम की भावना में ही निहित है। केवल इसी के द्वारा मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है तथा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग-दर्शन हो सकता है। इसी कारण आप धार्मिक संस्कारों तथा अनिवार्य विधियों की छलनाओं एवं प्रवंचनाओं द्वारा मानवता को कुमार्ग की ओर प्रवृत्त करने वालों की भर्त्सना करते हैं। भला केवल भजन-कीर्तन मात्र से भी कोई स्वर्गलाभ कर सकता है, जबकि उनके मन भोले-भाले लोगों की आंखों में धूल झोंकने तथा उन्हें धोखा देने की योजनाओं से कलुषित हों? सन्त कबीर को भी जीवन के कपट और कृत्रिमता से घृणा थी तथा उनके विचार में व्यक्ति अच्छे कर्म करके ही स्वर्गलाभ कर सकता है, दम्भ और पाखण्डमय आचरण द्वारा नहीं। आपने कहा है—'पत्थर पूजें हरि मिले, हम लें पूज पहाड़।' तो फिर इस छलना का अनावरण क्यों न किया जाये? ताकि इन स्वार्थी पुजारियों तथा पादरियों के समुदाय के शोषण से करोड़ों लोगों की रक्षा की जा सके? इस कविता में पुजारियों तथा उनकी कृत्रिम जीवनचर्या की कड़ी निन्दा की गई है। इस कविता की उड़ान व्यावहारिक एवं मार्मिक है। इसके ताल से ठीक वैसा ही आभास होता है जैसा कि कांसे की वस्तु की खनक से प्रतीत होता है--ऐसे आविष्कारों द्वारा मनुष्य-जाति को ठगने वालों पर इसका घातक प्रभाव पड़ता है। अलमस्त इन सबको व्यावहारिक ज्ञान की दृष्टि से देखते हैं। मनुष्य-जाति को पथभ्रष्ट करने वाले ये पुजारी तथा पादरी ही हैं। विषमता एवं फूट के बीज बोकर, मानवता की उपेक्षा करके, चांदी-सोने की उपासना

करते हुए, और लोगों में परस्पर घृणा उत्पन्न करके इन्होंने मानवता को भूल-भुलैयों में डाल कर पवित्रता को दूषित किया है। मानवता इन पुजारियों के अनाचारों के दुष्परिणामों से भला कैसे बच सकती है ? हां, महात्मा गांधी के प्रेम तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के संदेश का अनुसरण करते हुए ऐसा करना अवश्य सम्भव है। प्रस्तुत कविता में साम्प्रदायिकतावादियों की कटु आलोचना भी की गई है।

इस एक कविता द्वारा ही अलमस्त लोकप्रिय हो गए। प्रगतिशील शक्तियों को अलमस्त के काव्य में नवीन स्वर सुनाई पड़ा। अलमस्त डोगरी कविता के राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसकी देशभक्ति की भावना को व्यक्त करने में भी पीछे नहीं रहे हैं। १९४७-५० के दिनों स्थानीय समस्याओं के प्रति सबकी धारणा एक सी थी तथा उनके अभिगम की दिशा में समान-रूपता थी। उन दिनों डोगरी के हर कवि ने डुग्गर के गौरवमय अतीत का यशोगान किया। 'देसा दे सिपाईया गी' (देश के सिपाहो के प्रति !) में इस भूमि के योद्धाओं को देश की एकता के लिये जीने तथा इसके लिये संघर्ष करने के निमित्त उद्‌बोधन है। यह संघर्ष केवल विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध ही नहीं अपितु आभ्यन्तरिक फूट एवं साम्प्रदायिकतावादियों के विरुद्ध भी है--'फिरकू'। बापू द्वारा निर्दिष्ट हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के मार्ग पर अग्रसर होने में ही भलाई है। कविता सशक्त है तथा इसमें तात्कालिक परिस्थितियों का निरूपण है।

अपने प्रारंभिक काल में डोगरी कविता देशभक्ति, देश तथा देश-वासियों के प्यार. के आस-पास मंडराती थी। शृंगारिक वर्णन को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। और चूंकि ये कविताएं डोगरा श्रोताओं के सन्मुख पढ़ी जाती थीं, जो कि स्वभाव ही से रूढिवादी थे, डोगरी में शृंगारिक कविता लिखे जाने की कोई गुंजाईश नहीं थी। परन्तु अलमस्त और किशन समैलपुरी

इस दिशा में अग्रसर हुए। इस धरती का गुणगान करते समय इसकी रमणियों के सौन्दर्य की भी प्रशंसा की गई। किशन समैलपुरी ने ग़ज़ल के माध्यम का प्रयोग किया जो उर्दू में प्रेम और शृंगार की भावना को अभिव्यक्त करने के लिये प्रयुक्त होती है। और इस तरह शृंगार का इस प्रकार का प्रचलन क्लेशप्रद प्रतीत नहीं हुआ। अपनी अन्य बहुत सी कविताओं की भांति अलमस्त ने अपने प्रेम-काव्य की रचना लोक-गीतों की धुनों एव छन्दों के आधार पर की; और जब लोग ऐसी कविताएं सुनते तो अनायास ही उन्हें डुग्गर के लोक-गीतों का स्मरण हो आता। शृंगारिक कविता दो प्रकार की होती है—संयोग शृंगार तथा वियोग अथवा विप्रलम्भ शृंगार। अलमस्त की कृतियों में दूसरा पक्ष ही अधिक मुखर हुआ है। 'पहाड़ें दा बसना', 'सावन आया', 'कागद चित्री कल्मां त्रुट्टियां' आदि में विरह का चित्रण हुआ है, इन में वेदना तथा करुणा का चित्रण वास्तविकता लिये हुए है तथा इन्हें संगीत के गुण ने और अधिक मार्मिक बना दिया है।

डोगरी कविता में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन का अभाव था, जबकि संस्कृत और व्रजभाषा में ऐसे बहुत से वर्णन मिलते हैं। अलमस्त की कविता उनके सूक्ष्म-निरूपण का परिणाम है: 'पीले खेत हरे हो गये हैं, तथा हरे रंग के और सघन हो गये हैं।' ('सावन' पृष्ठ ६२, अरुणिमा—संपादक तारा समैलपुरी) इसकी पहली दो पंक्तियां शाब्दिक और ध्वनि चित्रों से परिपूर्ण हैं। लय माधुर्य को अलमस्त की कविता का प्रमुख गुण कहना अत्युक्ति नहीं होगी।

अलमस्त एक क्रियाशील व्यक्ति हैं तथा यह जानते हैं कि कल्पना काव्य का एक महत्वपूर्ण अवयव है परन्तु यह इसका एकमात्र अवयव नहीं है। हम जीवन की गहनतर समस्याओं, मानव जाति के सन्मुख उभरे हुए नैतिक प्रश्नों के प्रति सदैव विमुख होकर नहीं जी सकते। जीवन क्या है? ऐश्वर्य कुछ नहीं।

विलासिता के सभी उपकरण अनित्य हैं। जीवन क्षण-भङ्गुर है तथा मरणोपरान्त कोई भी अपने साथ कुछ नहीं ले जाता, तो फिर सत्कर्म क्यों न किये जाएं। स्वार्थपरता, उत्पीडन और शोषण की निन्दा क्यों न की जाए?

'जीवन नश्वर है, हर किसी ने मरना है।'

ऐश्वर्य तथा धन-संपत्ति तेरे साथ नहीं जाएंगे : ये सब मरणोपरांत यहीं पर धरे रह जाएंगे।*

प्रस्तुत कविता नैराश्य की मनःस्थिति में अपकर्षोन्मुख होने की बजाए एक दार्शनिक वक्तव्य सा बन कर रह गई है। अपने तर्कों की पुष्टि तथा अपने मन्तव्य की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये इसमें सहजबोध के सिद्धान्तों तथा लोकोक्तियों का बढ़ चढ़ कर प्रयोग किया गया है।

अलमस्त अब सरकारी नौकरी से निवृत्त हो चुके हैं। आप सदा से विलक्षण स्वभाव के तथा स्पष्ट-वक्ता रहे हैं, पर अब इन बातों का इनमें और आधिक्य हो गया है, क्योंकि अब सरकारी अनुशासन के प्रति आपका कोई दायित्व नहीं रहा है। आपकी 'सौ दिन झूठे दे' (झूठे के सौ दिन) एक ऐसी कविता है जो अपने विषय-वस्तु तथा उसके निर्वहण में शासकों तथा उनके द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियों के प्रति निर्मम है। और इसके साथ ही साथ लोकोक्तियों के सत्य पर आधारित यह एक सामान्य वक्तव्य है। इसकी हर एक पंक्ति किसी लोकोक्ति से शुरू होती है। तथा इसमें सार्वभौमिक एवं सीमित, दोनों तरह का आकर्षण है। अपनी कुछ समय पहले की रचना 'सुर्ग नेईं जान होन्दा पित्तल खड़काए दे' की अपेक्षा इसमें की गई भर्त्सना तीव्रतम, अधिक स्पष्ट तथा निर्ममतापूर्ण है। 'सौ दिन झूठे दे' में सहजबोध की

---

*अरुणिमा—पृष्ठ ६८

प्रवृत्ति है तथा अलमस्त एक विवेकशील व्यक्ति की तरह बोलते हैं। कविता के स्वर में चुभन है तथा कवि की मनःस्थिति कटुता लिये हुए है। अलमस्त को इस कटुता से अपने आपको बचाना चाहिये क्योंकि इससे आपकी दृष्टि पथ-भ्रष्ट हो जाएगी तथा आप की कृतियों में वह विषयपरकता नहीं रहेगी जिसका प्रदर्शन आप अपनी कृति 'सुर्ग नेईं जान होंदा' में कर चुके हैं। 'सौ दिन' के स्वर में अभद्रता है; इससे आपको अस्थायी प्रशंसक भले ही मिल जाएं परन्तु इसमें अच्छी कलाकृति में होने वाली निरपेक्षता नहीं है। इसमें संगीतात्मक आकर्षण का भी अभाव है।

अलमस्त जनता के कवि हैं। आप जनता की समस्याओं को लेकर लिखते हैं परन्तु आप अत्यधिक स्वात्माभिमानी भी हैं तथा आप का वर्ण्य - विषय का निर्वहण भी स्वात्माभिमानपूर्ण रहता है। अलमस्त के पास एक सूक्ष्म दृष्टि, लयात्मकता है तथा उन्हें डोगरी के लोक-गीतों एवं उनके छन्दों का घनिष्ठ परिचय है। परन्तु कहीं कहीं उत्कृष्ट लयताल की मर्यादा का अभाव है तथा आपकी तुकें भरती की हैं और अभिव्यक्तियां कहीं कहीं घटिया हैं। और साथ ही अलमस्त का कोई नियत जीवन-दर्शन नहीं है। कभी तो आपकी दृष्टि कुछ एक व्यक्तिगत अथवा अस्थायी धारणाओं के रंग में रंगी रहती है तथा कहीं आपका उन बातों के प्रति विश्वास प्रतीत नहीं होता जिन्हें आप लिखते हैं तथा पढ़कर सुनाते हैं।

परन्तु इन अभावों से किसी के गुणों को कोई क्षति नहीं पहुंचती। आपको डोगरी साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त है।

पंडित शम्भुनाथ (संवत १९६२ विक्रमी, १९०५ ई०) अपने चचेरे भाई स्वर्गीय पंडित हरदत्त शास्त्री की काव्य-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए, लगभग एक दशक पूर्व, उत्सुक श्रोतासमाज के

सन्मुख अपनी प्रथम कृति 'विधवा' (विधवा) को सुना कर शम्भुनाथ जी ने डोगरी जगत में हलचल मचा दी थी। आपने अपने संगीत के जादू, अपनी कलाचातुरी द्वारा, जिसका आपने इस कविता में प्रयोग किया था, श्रोताओं को चकित कर दिया। यह एक विधवा की कहानी है जो अपने पति की मृत्यु हो जाने पर उसके साथ सती हो जाती है। वर्ण्य-विषय प्रतिक्रियावादी है तथा इसे उद्भासित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर कौन जानता था कि प्रस्तुत कविता डोगरी को एक ऐसा वर्णनशील कवि प्रदान करेगी जो उत्कृष्टतम ढंग के शब्द-संगीत का सृजन करने तथा ध्वनि एवं शब्दचित्रों का निर्माण करने के लिये इस भाषा के उपकरणों को पूर्णरूपेण काम में लाएगा?

पंडित शम्भुनाथ जम्मू से चार मील दूर पलौड़ा नामक स्थान पर पैदा हुए थे। आपने श्री रणवीर हाई स्कूल जम्मू से मैट्रिक पास किया और प्रिन्स-ऑव-वेल्स कालिज जम्मू (अब गांधी मेमोरियल कालिज) में एफ. ए. तक शिक्षा प्राप्त की। आरम्भिक जीवन से ही आप भद्र चिन्तन तथा भद्र एवं मर्यादित स्वभाव के व्यक्ति रहे हैं। आप वस्तुओं का निरीक्षण सतही ढग से न करके ज्ञान ग्रहण करने के अभिप्राय से करते हैं। इसके द्वारा इनमें इस सृष्टि तथा जीवन की विभिन्न रीतियों और उद्देश्यों के प्रति समवेदना उत्पन्न हुई। कल्पनाशीलता के गुण के साथ साथ आपकी सहानुभूति तथा निरूपण-शीलता ने आपको यथार्थ रूप में कवि बना दिया है। आपके स्वभाव में विपुल गाम्भीर्य है, आपके चरित्र एवं कृतित्व में क्षुद्रता नहीं है। अपनी सूक्ष्म-निरूपण-शक्ति के द्वारा आप सतह को भीतर दूर नीचे तक देख सकते हैं। परन्तु अत्यधिक दयार्द्र-हृदय होने के कारण आप कटाक्ष या व्यंग्य नहीं कर सकते। जब आप परिस्थितियों की विकटता का अनुभव करते हैं तथा देखते हैं कि शोषण तथा दारिद्रय का मूलोच्छेद नहीं हो सकता है, तब आप इनका भावपूर्ण चित्रण करते हैं, किन्तु कटु

झल्लाहट से कदापि नहीं। और जो थोड़ी सी कटुता होती भी है वह इनके भाषागत संगीत के प्रभाव से क्षीणप्राय हो जाती है।

संगीत के तत्व की यह विलक्षणता ही शम्भुनाथ को दूसरे डोगरी कवियों में विशिष्टता प्रदान करती है। एक कारण यह भी है कि आप हिन्दी छन्दों का प्रयोग करते हैं। दूसरे आपकी भाषा का प्रसाद गुण तथा आपकी कलाचातुरी आप के काव्य - माधुर्य में अभिवृद्धि करते हैं। अनुप्रास, स्वरसामंजस्य, शब्दचित्र ध्वनि-चित्र तथा काल्पनिकता—जो आपकी काव्य विषयक धारणा तथा उसकी कलात्मक संपादन शीलता का अभिन्न अंग हैं—आपके काव्यगत गुणों में से कुछ हैं। और 'विदवा', 'फूलां दा कुर्ता', 'मन', 'चेत्ता' (स्मृति) तथा 'बसंत' आपकी कुछ श्रेष्ठ कृतियां हैं जिनमें संगीतात्मकता का यह गुण प्रकट हुआ है।

आपकी कविता में कहीं कहीं मृदु कटाक्ष भी हैं परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है। 'क्लर्क' इनकी एक ऐसी ही रचना है, परन्तु इसमें 'क्लर्क' के प्रति कोई कटाक्ष नहीं किया गया है अपितु उस व्यवस्था के प्रति कटाक्ष है जिसने क्लर्क को इस दशा में पहुंचाया है। कटाक्ष व्यक्तिगत भी हो सकता है परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य सुधार होता है। यदि सुधार ही शम्भुनाथ का उद्देश्य है—जैसा कि वस्तुतः हैं भी—तो यह उद्देश्य भली भांति स्पष्ट नहीं हो पाया है—जैसा कि इनकी कविताओं से स्पष्ट है। ऐसा होना कला की दृष्टि से वांछनीय भी है, परन्तु कई स्थलों पर शम्भुनाथ की अपनी परिमितता के कारण इनका दृष्टिकोण सुस्पष्ट नहीं हो सका है। इससे दृष्टिक्षेप का अभाव प्रकट होता है। आप हमें व्याप्त परिस्थितियों का भान तो कराते हैं किन्तु इनका उपचार सुझाने की क्षमता इनमें नहीं है। अर्थात् आप 'कला कला के लिये है' वाले प्राचीन सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु पूर्ण सत्य यह भी नहीं है, क्योंकि आप जीवन का वर्णन करते हैं और अपनी कला को जीवन की अभिव्यक्ति के

रूप में प्रयुक्त करते हैं, यद्यपि एक रूढ़िवादी परिवार में पालन-पोषण होने, अपने संस्कारों, स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह के निजी विभाग में काम करने तथा ईश्वर और कर्म-सिद्धान्त में निष्ठा होने के कारण इनसे अधिक निर्भीक और कल्पनाशील होने की आशा नहीं की जा सकती। इनमें ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृश्य-निरूपण की क्षमता नहीं तथा आप सक्रिय राजनैतिक शक्तियों से पूर्णतया परिचत नहीं हैं। इसलिये आप वास्तविक परिस्थितियों तथा राजनैतिक नेताओं के लम्बे चौड़े भाषणों की विषमता की ओर संकेत करना ही अपना एक मात्र कर्तव्य समझते हैं। और जब आप सामाजिक विषमताओं का स्पष्टत: चित्रण करते हैं, जैसा कि आपने 'बहादरें दी जम्मादारी' (वीरों का कर्तव्य) या 'जुग बदलोंदा जा करदा' (युग बदलता जा रहा है) अथवा 'बसन्त' नामक कतिताओं में किया है, तो ऐसा इस लिये हुआ है कि यह आपकी मातृभूमि का प्रश्न है तथा आपकी देशभक्ति इनमें नैसर्गिक अनुभूतियों का संचार करती है तथा जहां पर आपका तर्क और व्यावहारिक ज्ञान काम नहीं करता, इसके द्वारा आप वस्तुओं का सूक्ष्म - निरूपण करने में समर्थ होते हैं। कभी कभी सामाजिक दृष्टि के इस अभाव के द्वारा आपकी 'विदवा', 'क्लर्क', 'फूलां दा कुर्ता', आदि रचनाओं का सृजन हुआ है, जो शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट होते हुए भी, अपने आधारभूत दृष्टिकोण के कारण, जो राजनयिक उलझनों की दृष्टि से सीमित होता है, अपूर्ण एवं असंतोषजनक होती हैं।

इस कथन का यह अर्थ नहीं कि शम्भुनाथ महान कवि नहीं हैं। शम्भुनाथ वही कुछ लिखते हैं जो आप देखते हैं तथा अनुभव करते हैं। इसके परिणाम - स्वरूप आपकी कृतियों में प्रामाणिकता रहती है। 'फूलां दा कुर्ता' में एक किशोरी बाला की करुण गाथा का वर्णन है जो ईंधन एकत्रित करने के लिये कठिन

परिश्रम करती है तथा अभाग्यवश उसका कुर्ता फट जाता है। फूलां की मन:स्थिति, उसके आहत भावों, भय, अपनी इस दशा पर उसकी असमर्थता, उसकी मां के मनोभावों का, जिसे यह चिढ़ है कि फूलां की आयु की सभी लड़कियां एक एक करके ब्याही जा रही हैं किन्तु निर्धनता के कारण फूलां का विवाह नहीं हो रहा है; उसके दरिद्र तथा असमर्थ परन्तु स्नेही और दयालु पिता का वर्णन बहुत कौशल से हुआ है। यह शम्भुनाथ की समवेदनाशील दृष्टि है जो कटाक्ष और व्यंग्य की उक्ति में इनके आड़े आती है। इसके साथ ही इनकी यह समवेदना परिस्थिति को वास्तविक और विश्वसनीय बना देती है। फूलां और उसके माता-पिता अपनी तरह के अकेले ही ऐसे व्यक्ति नहीं हैं, ये तो विवाह योग्य जवान लड़कियों तथा उनके दरिद्र एवं दु:खी मां-बाप के 'टाईप' एवं प्रतीक हैं।

शम्भुनाथ न तो पलायनवादी हैं तथा न ही रोमेंटिक हैं। परन्तु कभी कभी आपके भाग्यवादी होने का आभास होता है। यद्यपि भाग्यवादी भी इसके लिये उपयुक्त शब्द नहीं है। क्या यह इस कारण से है कि आप धर्मिष्ठ हैं तथा प्रारब्ध और कर्म-सिद्धान्त में आपकी निष्ठा है ? परन्तु आप निराशावादी नहीं हैं, क्योंकि हिन्दुओं के कर्म-सिद्धान्त के अनुसार कर्मों—समुचित तथा श्रेष्ठ कर्मों—के द्वारा हम भाग्य को बदल सकते हैं। अपनी कविता 'आयू थोड़ी ते कम्म बतेरा' (आयु की अवधि कम है पर काम बहुत अधिक हैं) में आप लोगों को कर्म-निरत रहने तथा समय को व्यर्थ नष्ट न करने के लिये उद्बुद्ध करते हैं, क्योंकि समय द्रुतगति से भागा जा रहा है। इस कविता में किसी प्रकार की पलायन की भावना नहीं यद्यपि किंचित् मात्रा में यह 'विधवा' में लक्षित होती है।

पर शम्भुनाथ प्रमुखत: एक वर्णनशील कवि हैं तथा डोगरी साहित्य को आप का मुख्य योगदान आपकी वर्णनात्मक कविता

है। आप एक श्रेष्ठ अभिनेता हैं तथा इनमें कला के रूप में इस वर्णनात्मकता का समावेश आपकी रंगमंच की भूमिकाओं के कारण हुआ प्रतीत होता है। और इसमें आपने अपने भाषागत अधिकार द्वारा अभिवृद्धि भी की है। यही कारण है कि डोगरी का कोई भी अन्य कवि इनसे श्रेष्ठतर वर्णनात्मक कविता नहीं लिख पाया है। 'फूलां दा कुर्ता' और 'विदवा' से आगे निकलना कठिन है। पर वर्णनात्मक कविता में आपका सबसे बड़ा योगदान 'रामायण' का अनुवाद है। आप रामायण की भावना तथा मन:स्थिति में पूर्णतया रंगे गए हैं तथा आप इस कार्य को पूरा करने के प्रमुख रूप में योग्य हैं और थे। कलेवर की दृष्टि से डोगरी साहित्य बड़ा समृद्ध नहीं है, इसकी शब्दावली की कुछ सीमाएं हैं, क्योंकि यह अभी एक विकासोन्मुख भाषा है, परन्तु इसमें रामायण जैसे महाकाव्य का अनुवाद इसके गतिशील स्वभाव तथा इसकी प्रच्छन्न सामर्थ्य को प्रकट करता है। रामायण कला का एक उत्कृष्ट नमूना है, परन्तु जिस ढंग से पंडित शम्भुनाथ ने इसकी भावना को रूपान्तरित किया है, वह प्रशंसनीय है। इसकी भाषा सरल तथा व्यावहारिक है पर शम्भुनाथ एक समर्थ कलाकार हैं। आप किसी अभिप्राय-विशेष को प्रकट करने के लिये इसके अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं। और जब कहीं कोई विशेष दार्शनिक संदर्भ आ गया है तो वहां आवश्यकतानुसार भाषा की व्यवस्था की गई है। दया या करुणा की भावनाओं का चित्रण करने या आनन्द-मिश्रित उदासी का वर्णन करने में आपने सर्वाधिक कौशल दिखाया है। इस अनुवाद ने डोगरा जन-साधारण की एक चिर-अभिलाषा की पूर्ति की है। वे अब रामायण को स्वयं पढ़ कर समझ सकते हैं, जिसे वे कथारूप में केवल सुना ही करते थे अथवा रंगमंच पर देखा करते थे। और इसके अतिरिक्त इसके द्वारा डोगरी साहित्य का कलेवर भी समृद्ध हुआ है।

पंडित शम्भुनाथ का संबन्ध उस परिवार से है जिसने साहित्य को बड़ा योगदान दिया है। डोगरी, हिन्दी तथा पंजाबी को पंडित हरदत्त का एवं हिन्दी तथा संस्कृत को पंडित पीताम्बर दत्त का योगदान प्रसिद्ध ही है। पं० शम्भुनाथ ने इनकी परम्परा को जीवित रखा है तथा जो गुण-प्राचुर्य हमें पंडित शम्भुनाथ की कृतियों में मिलता है वह किसी भी अन्य काव्य में उपलब्ध नहीं हो सकता। आपने डोगरी के संगीत को पकड़ा है। आप ने कुछ कहानियां भी लिखी हैं और ये भी आपकी भाषा द्वारा अलंकृत हैं, परन्तु आपका वास्तविक क्षेत्र कविता ही है। वस्तुओं के सूक्ष्म-निरूपण में, उनका पूरा पूरा ब्योरा देने में एक कलाकार का कमाल है तथा ऐसी कल्पना - सृष्टि करने में, जहां भाषा को एक महत्वपूर्ण कार्य करना होता है, शम्भुनाथ की तुलना उस सीमा तक 'टैनीसन' अथवा सुमित्रा-नन्दन पंत के साथ की जा सकती है जहां तक वे महान कला-शिल्पी के रूप में विख्यात हैं। इसके लिये यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता हो तो 'विदवा' में नदी के तट पर, मेघाच्छन्न रात्रि में एक बाल-विधवा का चित्रण देखा जा सकता है।

श्री रामलाल शर्मा : (१९०५ ई०........) शर्मा महोदय गुढ़ा सलाथियां नामक स्थान पर सन् १९०५ में खजूरिया पुरोहितों के एक कुलीन घराने में पैदा हुए। अपनी शिक्षा समाप्त करके आप जम्मू-कश्मीर सरकार के वन-विभाग में नौकर हो गये और पचपन वर्ष की आयु में एक रेंज आफिसर के रूप में वहां से निवृत्त हुए। कविता लिखना आपने नौकरी से निवृत्त होने के पश्चात आरंभ किया तथा आपकी कविताओं का प्रथम संग्रह १९६३ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कोई पचास के लगभग कविताएं है। इस कृति में जीवन तथा प्रकृति के विभिन्न पक्षों का निरूपण हुआ है।

श्री शर्मा बहुत घूम-फिर चुके हैं तथा आपको डुग्गर तथा इसके जनसाधारण, इसकी सभ्यता और रीति-रिवाजों का घनिष्ठ परिचय है। नौकरी के दिनों में आपको जनसाधारण तथा उनकी प्रतिदिन की समस्याओं का अध्ययन करने का अवसर मिल चुका है। अतः इस सब से आपको अपनी कविता का निर्माण करने में सहायता मिली है।

'बंसी' (बांसुरी) श्रीरामलाल शर्मा की प्रथम डोगरी रचना थी। अपनी पूर्वरचित हिन्दी कविताओं की भांति इसमें भी आपके प्रिय विषय भक्ति का अंकन हुआ है। 'बंसी', इस शब्द मात्र से ही सनातनधर्मी हिन्दुओं के मन में उभरने वाली असंख्य भावनाएं हमें मन्त्रमुग्ध कर देती हैं और हमारी तथा हमारी आंखों के सामने वंशी बजाते हुए भगवान कृष्ण को पुराणविश्रुत छवि अंकित हो जाती है। कवि प्रश्न करता है कि क्या कारण है कि वंशी ने इतनी शाश्वत ख्यति प्राप्त की है? इसका उत्तर यह है कि इसने कृष्ण-प्रेम पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया है। राधा कृष्ण के प्रति अपने अद्वितीय प्रेम के लिये प्रसिद्ध है परन्तु बांसुरी अपनी अपार भक्ति के लिये और भी अधिक विख्यात है। प्रेम में लाभ की आशा से अधिक दिया जाता है तथा इसका अवसान प्रायः अधिकतर लाभ में ही होता है। वशी ने अपने प्राण समर्पित किये हैं और इसी कारण इसे कृष्ण-प्रेम और भक्ति के रूप में अधिक लाभ हुआ है। यही कारण है कि यह सदैव श्रीकृष्ण के मोहक होंटों के साथ चिपकी रहती है।

यह रामलाल शर्मा के भक्ति-पक्ष तथा इनकी कल्पना-शक्ति का चरम बिन्दु है। कविता की तालपूर्ण लयगति उभरती हुई लयपूर्ण तथा मन्त्रमुग्ध करने वाली मधुर तानों को मुखरित करती है। रामलाल शर्मा का वन्य-जीवन का घनिष्ट परिचय, वहां की वनस्पतियों एव पशुवर्ग का ज्ञान—जोकि सृष्टि की प्रकृति का अभिन्न अग हैं—आपके जीवन तथा प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का

निरूपण करने में सहायक हुआ है । अपने माधुर्य, भाषा के माध्यम पर अपनी गहरी पकड़, जिसके द्वारा विचारों तथा विवरणों का प्रतिपादन हो सकता है, प्रकृति के उत्कट सौरभ—काव्य और भक्ति—के कारण बंसी डोगरी काव्य में अद्वितीय है।

रामलाल शर्मा की कविताओं में एक बड़ी संख्या ऐसे ही भक्तिपूर्ण गीतों तथा कविताओं की है । यहां तक की सांसारिक पक्षों से संबन्ध रखने वाली कविताओं में भी भक्ति-भावना संश्लिष्ट है। यह आपका सबल और दुर्बल पक्ष है; क्योंकि इससे मनकी वह प्रवृत्ति प्रकट होती है जिसमें पत्थरों के बीच उपदेश तथा बहते हुए नदी-नालों में पुस्तकें दिखाई देती हैं, परन्तु इसके साथ एक ऐसी प्रवृत्ति को भी प्रकट करता है जो नैतिक मूल्यों को वहां वलात् समाविष्ट करने का प्रयत्न करती है जहां इनकी अपेक्षा नहीं रहती है ।

शर्मा महोदय ने कुछ कविताएं प्रासंगिक रुचि के विषयों पर भी लिखी हैं। पंचवर्षीय योजनाओं पर लिखी हुई आपकी कविताएं केवल परिगणन-विद्या-संबन्धी आंकड़ों की खिचड़ी ही नहीं हैं। ये योजना चलाने के पीछे निहित उद्देश्यों से आपके घनिष्ठ परिचय की सूचक हैं । ऐसा आभास होता है कि ऐसी कविताओं के द्वारा जनसाधारण को दिया गया उद्बोधन, उनके लिये मात्र सरकारी शुष्क शब्दों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्साहप्रद हो सकता है।

मानवता-हित अपने को रिक्त किये जाने की प्रतीक्षा कर रही प्रच्छन्न पार्वत्य-निधियों एवं पहाड़ों पर लिखी गई आपकी कविता एक ऐसे व्यक्ति की मनोदशा को प्रतिबिम्बित करती है जो निरन्तर प्राकृतिक वातावरण के सम्पर्क में रहा हो । पर्वत साहस और शक्ति के प्रतीक हैं तथा अपने बहुमूल्य ऐश्वर्य को उद्वमित करवाने के लिये भी इन्हें शक्तिशाली एवं साहसी

व्यक्तियों की आवश्यकता है। प्रकृति के अन्य अनेकों अंगों की भांति पर्वतों में भी मानवता के किसी न किसी काम आने की उत्कट आकांक्षा है। अपनी उपमाओं तथा रूपकों द्वारा श्री शर्मा पहाड़ों की उपयोगिता-विषयक अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं।

रामलाल शर्मा ने देशभक्ति के विषय पर भी कविताएं लिखी हैं; चीनी आक्रमण ने आपकी रोषाग्नि को प्रदीप्त कर दिया है तथा वीर योद्धाओं की भांति आप भी चीनियों को खदेड़ने के लिये उठ खड़े हुए हैं; सैनिकों ने बन्दूकें तान ली हैं और श्री रामलाल शर्मा ने अपनी लेखनी तान ली है।

यद्यपि श्री शर्मा ने लिखना जीवन-दोपहरी के बाद ही आरंभ किया, तो भी आपकी रचनाओं में आपकी काव्य-प्रतिभा आश्चर्यजनक मात्रा में प्रकट हुई है। आपकी शैली मनोहर है तथा आपकी अभिव्यक्ति में स्पष्टता है। आपकी कविताएं नैतिक उद्रेक से ओत-प्रोत हैं। अलंकार, जो आपको बहुत रुचिकर हैं, आपकी कविता की शोभा में अभिवृद्धि करते हैं तथा उसे अधिक सुबोध बना देते हैं, किन्तु कहीं कहीं पद्य के कलापक्ष—छन्द तथा लय—का निर्वाह भली भांति नहीं हो पाया है। परन्तु यह कोई बड़ी त्रुटि नहीं है। तीव्र नैतिक ध्वनि, अभिव्यक्ति की मनोहारिता तथा उन्नत विचार आपकी कविताओं में चिन्तन तथा अनुभूतियों से समृद्ध कल्पना-शीलता के गुण का संचार करते हैं।

श्री रामलाल शर्मा ने कुछ गद्य-लेख तथा कहानियां भी लिखी हैं जो मृदु हास्य और व्यंग्य की विशेषता लिये हुए हैं तथा आपकी सूक्ष्म-निरूपण-शीलता एवं ओज-पूर्ण शैली को प्रकट करती हैं। आपको अपने कविता-संग्रह 'किरण' पर जम्मू-कश्मीर संस्कृति व साहित्य अकादमी द्वारा १९६४ में द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया गया था।

बसन्त राम (१९०६......) : जब एक बार क्षेत्रीय भाषाओं का प्रश्न स्पष्ट हो गया तो डोगरी के लिये अपना स्थान प्राप्त करना सरल हो गया। उन लोगों ने, जो डोगरी में लिखने या इसमें बात करने में पहले झिझकते थे, अब यह महसूस किया कि वे यदि अब डोगरी में लिखने लगें तो यह कोई लज्जा की बात नहीं होगी। केवल इतना ही नहीं, जब कवि - सम्मेलनों में डोगरी की प्रशंसा और अभिनन्दन होने लगा तो उनकी सारी झिझक लुप्त हो गई तथा वे डोगरी में कविता लिखने में गौरव का अनुभव करने लगे। जनसाधारण के उन वर्गों पर, जो सभी दृष्टियों से अज्ञानी एवं अनपढ़ समझे जाते थे, इन कविताओं के प्रति, जब कवि-सम्मेलनों में इनका पाठ होता, आश्चर्यजनक किन्तु उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया होती, क्योंकि वे उन लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा जानते एवं समझते थे। और इसके साथ ही लोगों से मिलने वाली इस प्रशंसा से कवि भी यह महसूस करते कि लोग उनसे क्या चाहते हैं। इस प्रकार से यह एक सामुदायिक रुचि एवं सामूहिक आलोचना की प्रक्रिया थी जिसमें कविगण उतना ही जनता से सीखते जितना वे जनता का मनोरंजन करते तथा जितनी शिक्षा वे उन्हें देते। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्यिक रंगभूमि पर कवियों की एक नई पौद उभरी। इनमें बसन्तराम, बरकत पहाड़ी, चूनीलाल कमला, चमक, बालकृष्ण, दुर्गादत्त शास्त्री, रामकृष्ण शास्त्री तथा अन्य कई लोग थे।

बसन्तराम जनता के उस वर्ग से संबन्ध रखते हैं जिन्हें कठोर वर्ण-व्यवस्था के कारण समाज में हीन स्थान प्राप्त हुआ है। इन विपरीत परिस्थितियों के कारण बसन्तराम अशिक्षित रहे तथा अभी तक अशिक्षित हैं। परन्तु इनके पास निरखने में समर्थ दृष्टि है तथा अनुभवी हृदय है। यदि बुद्धि हो तो शिक्षा केवल उसे विकसित करने में सहायक होती है, और बसंतराम के पास ऐसी सूझ-बूझ और बुद्धि है। आप हस्पताल में एक

परिचारक थे तथा आप भली भांति जानते हैं कि सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से आपके वर्ग तथा स्तर के लोगों को किन किन मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। इस तरह आप उन सामाजिक सीमाओं से भली भांति परिचित हैं जो, अभाग्यवश, आपकी काव्य-प्रतिभा के पूर्ण विकास में बाधक हुई है। इनकी कविता में वैसी ही दीनता एवं आत्म-चेतनशीलता है जो वास्तविक जीवन में आपके हिस्से में आई है।

परन्तु ऐसा कहने से बसन्तराम को वर रूप में मिली प्रतिभा के महत्व को कम करने का अभिप्राय नहीं है। इनमें एक सूक्ष्म-निरूपणशील दृष्टि है तथा बुद्धि की नैसर्गिक उर्वरता है जो हमें लोक-गीतों के असंख्य किन्तु गुमनाम लेखकों में दृष्टिगत होती है। और इस पर भी बसन्तराम की कला अधिक आत्म-चेतनाशील है। हमें इनकी प्रत्येक कविता में इनके उसका रचयिता होने की सूचना मिलती है, क्योंकि आप अपनी कविताओं के अन्तिम चरण में अपने नाम का उल्लेख करते हैं। बसंतराम में केवल हंसने और दूसरों को हंसाने की ही नहीं अपितु स्वयं अपने ऊपर हंसने की भी क्षमता है। आपकी उक्ति प्रायः व्यंग्यात्मक होती है। इससे इनमें पैंतरा बदलने और दूसरों पर कटाक्ष करने की बहुत गुंजाइश रहती है।

आपकी कविता 'खरा हा में ग्रां' (मैं गांव ही में ठीक था।) हमें बसंतराम पर हंसाती है, पर तब सहसा एक आश्चर्यजनक मोड़ आता है और हम यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि यह उपहासोक्ति उतनी ही हमारी ओर भी लक्ष्य कर के कही गई है। आपकी कविता अति सरल तथा प्रमोदजनक है, और हम कल्पना कर सकते हैं कि नागरिक जीवन की वह विभ्रान्ति, जो हमारी दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुकी है, एक ग्रामवासी को कितनी भद्दी प्रतीत होती है। आपकी 'बसन्त' हल्के व्यंग्य तथा मृदु-खिन्नता से परिपूर्ण है। कई दशाओं में बसंतराम प्रासंगिक रुचि के विषयों

पर भी कविताएं लिखते हैं । अपनी कविता 'हस्पताल' में चिकित्सा-विभाग के अमले के उपेक्षाभाव, नर्सों के कठोर व्यवहार, औषधियों के वितरण की अविवेकपूर्ण पद्धति, रोगियों की दुर्दशा तथा कम वेतन पाने वाले परिचारकों की दशा का चित्रण है । बसन्तराम इस कविता को सनकीपन का अभ्यास नहीं बनने देते । यह उतना ही एक दोष भी है जितना कि यह एक गुण है । क्योंकि इससे आप की कविताएं तुरन्त सामाजिक महत्व की बन कर रह जाती हैं ।

निरक्षर होने के कारण बसन्तराम की कविता में परिमार्जित कलात्मकता अथवा तर्कोचित विकास का अभाव है । किन्तु सहज-बोधगम्य होने के कारण इनकी कविताएं मनोरंजक होने के साथ साथ शिक्षाप्रद भी होती हैं । आपकी व्यंग्योक्तियां, जिनमें हास्य का तत्व रहता है, कभी कभी बड़ो सूक्ष्म होती हैं । आप डोगरी के हास्य रस के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं ।

बरकत पहाड़ी (१९०७......) बरकत राम जम्मू के सुदूरवर्ती कोने में डोडा नामक स्थान पर पैदा हुए थे । आपके पिता लाला देवीचन्द एक समृद्ध व्यवसायी थे परन्तु बरकतराम के जन्म के समय आपके पिता की आर्थिक स्थिति गिर चुकी थी। बरकतराम ने समृद्धि से लेकर दारिद्रय तक का स्थिति - परिवर्तन देखा था । उनके मकान बिक गये, व्यवसाय नष्ट हो गया तथा आपका परिवार ऋण-ग्रस्त होकर रह गया । इन परिस्थितियों में आप पढ़ने की तीव्र इच्छा होने पर भी शिक्षा प्राप्त न कर सके ।

बरकतराम ने अपने परिवार की दुर्दशा देखी थी । यदि उनके साथ यह सब हो सकता था तो दूसरों के साथ भी ऐसा हो सकता था, और अवश्य होता भी होगा । आपके भीतर सूदखोरी तथा ऐसे धनी लोगों के विरुद्ध विद्रोह की भावना जाग्रत हुई

जो निर्धनों के बल पर उन्नति प्राप्त करते हैं । और इसके साथ ही आप हमारे समाज के समूचे जनसाधारण को आक्रान्त करने वाले दुःखों के प्रति भी सचेत हो गए । साम्प्रदायिकता सारे दुःखों की जड़ थी; सामंतशाही तथा पूंजीवाद देश को क्षीणता और निर्धनता की ओर धकेल रहे थे । लोगों को इन विभीषिकाओं के प्रति सावधान करना चाहिये । परन्तु ऐसा किस माध्यम द्वारा किया जाए ? बरकतराम उर्दू तथा पंजाबी में भी लिखते थे परन्तु डोगरा जनसाधारण इनकी बातें कम ही समझ पाते थे और न ही इनकी कविताओं से रस-विभोर हो सकते थे । यदि वे कहते हैं कि लोग इन सामाजिक बुराइयों के प्रति सचेत हों तो उन्हें उनके सन्मुख उस भाषा में बोलना चाहिये जिसे वे भलीभांति समझ सकें । और इसी कारण से आपने डोगरी में लिखना आरंभ किया । आपका विचार था कि लोगों को सामंतशाही व्यवस्था, पूंजीवाद एवं शोषण के अन्य रूपों के प्रति संघर्ष करना पड़ेगा और उस संघर्ष में डोगरी को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी । अतएव जो कवि डोगरी कविता के कार्य में निरत हैं वे वस्तुतः अपनी जाति तथा अपने देश की सेवा कर रहे हैं । इससे यह प्रकट होता है कि बरकतराम की कविता अहम्मन्यता की चरागाहों में भटकने अथवा काल्पनिक प्रदेशों में विचरने के लिये नहीं थी वरन् वह जनसाधारण तथा उनकी समस्याओं से सीधा संवन्ध रखती थी । आंशिक रूप में यह देशभक्ति ही की कविता थी जो १९४७-४८ के कबाईली आक्रमण के पश्चात समृद्ध हुई थी । आपकी कुछ कविताएं सन् १९४८ में डोगरी संस्था द्वारा प्रकाशित 'जागो डुग्गर' में, जिसमें आधुनिक काल के कुछ चुने हुए कवियों की रचनाएं तथा लोकगीत थे, पंडित गंगाराम तथा लाला रामधन की कविताओं के साथ छपी थीं । आपकी बहुत सी कविताएं अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई हैं किन्तु आप इनमें से अधिकांश रचनाएं डोगरी संस्था द्वारा जम्मू में विभिन्न अवसरों पर आयोजित कवि-सम्मेलनों में पढ़ चुके हैं ।

आपकी 'उठ्ठो शेर जवानो !' (सिंह तुल्य युवको, जाग उठो !) देशभक्ति की भावना से देदीप्यमान रचना है। डुग्गर वह भूमि है जिसकी सीमाएं दूर दूर तक फैली हुई हैं । अपनी अकर्मण्यता के कारण हम अपनी महानता तथा गौरव खो चुके हैं, अब हम दास बनकर रह गए हैं । चोर-लुटेरे हमें किसी काम का नहीं समझते। उनसे लड़कर अपने खोए हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने का यही समय है। डीडो तथा राजेन्द्रसिंह जैसे देश - भक्तों तथा जनरलों ने इसकी स्वाधीनता के लिये अपने प्राणों को होम किया है। यद्यपि निर्धनता और भूख चतुर्दिक् व्याप्त है, पर तो भी डुग्गर-भूमि ऐश्वर्य का भण्डार है । कबाईली आक्रमण प्रच्छन्न वरदान है क्योंकि इसने वीर डोगरों को झंझोड़ा है, उन्हें चेताया है। वे अब बाह्य शत्रु तथा भीतरी शोषकों के साथ जूझेंगे। यह देश हिन्दुओं तथा मुसलमानों का है तथा इसके सम्मान तथा इसकी एकता की रक्षा करना प्रत्येक डोगरे का नैतिक कर्तव्य है।

'मोतिया' (एक प्रकार का फूल) चिन्तनपूर्ण कविता है । कवि सोचता है कि मोतिये को उसके वृन्त, उसकी जननमूल शाखा, से तोड़ लिया गया है पर वह जहां कहीं भी रखा हुआ हो वहीं अपना सौन्दर्य बिखेरता है। यह प्रेमियों की सेजों को सुशोभित करता है, सर्वत्र सौरभ बिखेरता है तथा इसके फूल माला में गूंथे जाते हैं। कितना अच्छा हो यदि यहां के लोग भी संगठन के धागे में पिरो दिये जाएं। यदि हमारे बीच एकता होती तो हम कभी भी दास न बनते तथा हमारा यह देश शक्तिशाली होता ।

'मनुख ते पैंछी' नामक कविता संवादों के रूप में है। इसमें एक पुरुष तथा पक्षी के बीच वार्तालाप द्वारा अभिव्यक्त किया गया है कि भले ही किसी से जीवन के सारे ऐश्वर्य, सारी सुख-सुविधाएं देने का प्रस्ताव किया जाए, दासता फिर दासता ही है । हम

अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं कर सकते, हमें वह सब करना पड़ता है जो हम करना नहीं चाहते।

बरकतराम की शैली उपदेशात्मक है क्योंकि आप महसूस करते हैं कि कला केवल कला ही के लिये नहीं हो सकती। आप कभी कभी अपनी कल्पना की बाग ढीली छोड़ देते हैं तथा हमारे पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली सुन्दर रमणियों के मनोहारी चित्रों की सृष्टि करते हैं। प्राकृतिक चित्रों की सुन्दरता नारी सौन्दर्य पर छा जाने की बजाय उसे और अधिक उभारती है। वह देश की अलंकार है; अपनी सुन्दरता तथा शोभा के द्वारा वह स्वर्ग से उतरी हुई देवी के तुल्य दिखाई देती है। वह पर्वतों तक को आश्चर्य और विस्मय से भर देती है। और जहां तक पक्षियों का संबन्ध है, वह वन की महारानी है अथवा वनदेवी ही है।

बरकतराम की कविता में भाषा तथा चिन्तन के उत्कृष्ट गुणों का अभाव है परन्तु आपकी कविता देशभक्ति एवं समाज-सुधार की भावनाओं से आप्यायित है। आपकी कविता १९४७ और १९५३ के बीच की डोगरी कविता की विशिष्ट प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है।

चूनीलाल कमला (१९१२-१९६०) : चूनीलाल कमला मूलतः पंजाबी के कवि थे तथा गत बीस वर्षों से कविता लिख रहे थे। स्यालकोट के पंजाबी के प्रसिद्ध कवि श्री जमनालाल मान जी तथा भगत ताराचन्द गोसाईं का घनिष्ठ संपर्क आपकी काव्य-प्रतिभा तथा दृष्टिकोण के विकास में सहायक हुआ। 'शिव दर्शन,' 'सैरे कश्मीर' तथा 'नया कश्मीर' इनकी पंजाबी कविताओं के प्रकाशन हैं। पर चूंकि कमला ने अपने जीवन का प्रमुख भाग जम्मू में ही व्यतीत किया था, और चूंकि जम्मू में अब डोगरी साहित्य के नये मित्र तथा प्रशंसक प्राप्त हो रहे थे, अतः आप भी इस आन्दोलन से विलग न रह सके।

आप ने अनुभव किया कि उस धरती के प्रति, जहां आप रहते हैं तथा जीविकोपार्जन करते हैं, आपका भी कुछ कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान द्वारा किये गये कबाईली आक्रमण तथा धनिकों द्वारा निर्धनों के उत्पीडन ने आपके चिन्तन तथा आपकी लेखनी को तीव्रता से प्रभावित किया। आपकी पंजाबी कविताएं यद्यपि पंजाबी लेखकों की गोष्ठियों में बहुत सराही जाती थीं किन्तु वे डोगरी-भाषी लोगों को उतना आकर्षित नहीं कर सकती थीं। कमला ने युग की पुकार सुनी तथा डुग्गर, इसके लोगों तथा उनकी समस्याओं के विषय में लिखा। आपकी डोगरी कविता में भी पंजाबी कविता तथा भाषा का प्रभाव है. कभी कभी तो यह अगोचर रूप में इसके भीतर प्रविष्ट हो गया है।

चूनीलाल पान-सिगरेट बेचने का धंधा करते थे। आपको विविध प्रकार के लोगों के संपर्क में आना पड़ता था, जिनमें कुछ सीधे-सादे लोग होते, कुछ गंवार तथा कुछ ठाटबाट वाले, कुछ धनी तथा कुछ निर्धन होते। आपने उनका निकट से अध्ययन किया और अपनी कविताओं में उन पर लिखा। स्वयं मूलतः मध्यवर्ग का होने के कारण आपने श्रमिकवर्ग पर कविताएं लिखीं। इनकी प्रसिद्ध डोगरी रचनाओं में एक 'करसानें दी दुनियां' (किसानों की दुनिया) है। यह ग्रामीण वातावरण, कृषकों तथा उनकी दशा का यथार्थ चित्र है। आप उनके जीने को वास्तविक जीना नहीं कह सकते। इसमें शोषण-प्रणाली की कड़ी निंदा की गई है, जहां पर हल चलाने वाला भूखा तथा कपड़ा बुनने वाला नंगा रहता है। यह हमें अंग्रेज़ी के कवि 'शैली' की क्रान्तिकारी कविता 'सांग टु द मेन् ऑव इंगलेंड' का स्मरण दिलाती है। पर कमला की कविता समझौते एवं संशोधनात्मक परिणाम पर पहुंच कर समाप्त होती है।

चूनीलाल कमला को प्रमुख कवियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता किन्तु आपके सरल विषयवस्तु तथा निश्छल

भावनाओं ने आपको डोगरी कविता में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने में ऐसे समय में सहायता दी जब कुछ इने गिने लोग ही डोगरी में लिख रहे थे। १९६० में आपका देहावसान हो गया।*

दुर्गादास 'चमक' (१९१२-१९६०) : श्री चमक का जन्म १९१२ में जम्मू के निकटवर्ती गांव लालाचक में हुआ था। एक स्थानीय स्कूल में पांचवीं तक पढ़ कर आप आगे पढ़ने के लिये जम्मू आ गये। किन्तु मेट्रिक पास करने से पहले ही आप ने पढ़ाई छोड़ दी। 'चमक' ने छोटी आयु में ही कविता लिखना आरंभ किया तथा आपके कृतित्व पर नरसिंहदास नर्गिस का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। आपने डोगरी में लिखना तब आरंभ किया जब डोगरी के साहित्य-क्षेत्र में नये डोगरी लेखकों की पौद प्रकट हो चुकी थी। इससे पूर्व आप पंजाबी अथवा हिन्दुस्तानी में लिखते थे। श्री चमक की अधिकांश कविताएं राजनैतिक विषयों पर लिखी गई हैं। आपने १९४८-४९ में उन लोगों की इच्छा का आदर किया जो चाहते थे कि आप डोगरी में लिखें, क्योंकि मुशायरों में अपने कविता-पाठ के सशक्त स्वरूप के कारण आपमें श्रोताओं के भावों को आंदोलित करने की क्षमता थी। दुर्गादास चमक में डुग्गर की वीरता तथा उसके गौरव के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। आपने वाणी के द्वारा इस प्रसिद्ध भूमि के प्रति अपनी भक्ति को अभिव्यक्त करना अपना लक्ष्य बना लिया था : अपनी बुद्धि को खोए बिना कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना डोगरों का प्रमुख गुण है, तथा अतीत की भांति भविष्य में भी अपने साहस, लगान एवं सतत उद्योग-शीलता द्वारा वे किसी भी संकट के किसी भी ज्वार को पछाड़ सकेंगे।**

---

*कमला की डोगरी कविताओं के लिये देखिये 'जागो डुग्गर', डोगरी संस्था प्रकाशन, १९४८

**देखिये 'जागो डुग्गर।'

अपनी धरती पर पाकिस्तान की प्रेरणा से हुए अनुचित आक्रमण से उत्पन्न देशभक्ति के उस प्रथम प्रवाह में इस प्रकार की कविताएं डोगरा लोगों को विशेष रूप से रुचिकर होती थीं और चमक ने उस लोक-रुचि के अनुसरण द्वारा ख्याति प्राप्त की।

'मरना सा वैरूगी या पावा हंकारा गी' में यद्यपि स्थानीय एवं प्रासंगिक संकेत हैं, पर इसकी भावना लगभग आध्यात्मिक है। एक दूसरे को मारने या एक दूसरे की प्रसन्नता नष्ट करने की बजाय हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अपने समानरूप शत्रु (उस काल में अंग्रेज) को नष्ट करना चाहिये या फिर मिथ्याभिमान और अहम्मन्यता का परित्याग करना चाहिये। यदि भारत में विदेशियों द्वारा इस दुर्भावना का बीजारोपण न किया गया होता, तो गांधी का यह देश खूनी संघर्षों द्वारा जीर्णशीर्ण न होता, जिससे अन्ततः इसे विभाजित होना पड़ा। प्रस्तुत कविता हिन्दुओं तथा मुसलमानों को अपनी क्षुद्र ईर्ष्याओं तथा विवादों से ऊपर उठने के लिये उनका आह्वान करती है। इसकी भाषा निःसन्देह डोगरी, पंजाबी तथा हिन्दुस्तानी का मिश्रण है किन्तु इसकी शैली सशक्त एवं आलंकारिक है। यह कविता हमें उस सुखमय अतीत के वातावरण में ले जाती है, जब धर्म तथा ईश्वर-भक्ति सर्वोपरि समझे जाते थे तथा घृणा और अनादर पर आधारित आधुनिक कालीन संघर्षों की ओर अग्रसर होती है। १९६० के आरंभ में श्री चमक का देहान्त हो गया।*

रामनाथ शास्त्री (१९१५......) : शास्त्री जी का जन्म एक अभिजात ब्राह्मण परिवार में सन् १९१५ में हुआ था। आपने स्कूलों तथा श्रीरघुनाथ पाठशाला में शिक्षा प्राप्त की।

---

*'चमक की डोगरी कविताओं के लिये देखिये 'जागो डुग्गर'।

अपनी शिक्षा जारी रखते हुए आपने शास्त्री, प्रभाकर तथा एम. ए. की उपाधियां प्राप्त कीं। अपनी शिक्षा समाप्त कर के आप जम्मू कश्मीर राज्य के शिक्षा-विभाग में नौकर हो गये तथा आजकल मौलाना आज़ाद मेमोरियल कालेज जम्मू में प्राध्यापक हैं।

प्रो० शास्त्री ने हिन्दी कहानीकार के रूप में अपना साहित्यिक जीवन आरम्भ किया। 'गुलाबसिंह' तथा 'दाता रानू' आपकी सफल कृतियां हैं। आप एकांकी, गद्यगीत तथा निबन्ध भी लिखते थे। आप हिन्दी साहित्य मण्डल के मंत्री थे तथा आपने हिन्दी की उन्नति के लिये बहुत काम किया।

१९४६ में 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ हुआ। उन दिनों केवल पंडित हरदत्त शास्त्री और दीनूभाई पन्त ही डोगरी में कविता लिखते थे और भगवतप्रसाद साठे कहानियां लिखते थे। चौथे दशक में क्षेत्रीय भाषाओं का आन्दोलन भारत के विभिन्न भागों में ज़ोर पकड़ रहा था तथा डोगरी प्रेमियों पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था। रामनाथ शास्त्री ने इस नई प्रवृत्ति को भांप लिया तथा सर्वात्मना डोगरी के उत्थान के कार्य में लग गये। १९४३ में डोगरी संस्था की स्थापना हुई। डोगरी के साथ ही यह संस्था डोगरी भाषी लोगों के हित के लिये भी सन्नद्ध हो गई। इसने चित्रकला, मूर्तिकला तथा साहित्य के क्षेत्र में डोगरों के विलुप्त गौरव को पुनर्जीवित करने के लिये भी कार्य किया।

प्रो० शास्त्री ने कविता लिखना देर से आरम्भ किया। शुरू में आपने कहानियां तथा प्रथम डोगरी नाटक 'बावा जित्तो' लिखा जिसे कई स्थानों पर सफलता-पूर्वक खेला गया। आपकी कविताएं डोगरी काव्य की चयनिका 'जागो डुग्गर' में अन्य लोगों की कविताओं के साथ १९४८ में प्रकाशित हुई ? इन कविताओं में दो बातों पर बल दिया गया है : डोगरों का

गौरवमय ग्रतीत और वर्तमान युग में उनकी महानता का पुनरुत्थान। ये कविताएं श्रेष्ठ भावनाओं तथा देशभक्ति की उमंग से परिपूर्ण हैं तथा उन्हें परिस्थितियों के अनुसार जागृत होने के लिये प्रेरित करती हैं। ये कविताएं सशक्त शैली में हैं, यद्यपि इन में उस शाब्दिक लय का ग्रभाव है जिसका समावेश आपकी कुछ काल बाद की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। 'ए बंजर बनियां कियां केसर क्यारियां' (ये केसर की क्यारियां बजर कैसे बन गईं ?) में आप डोगरों को गहन-निद्रा से जागने के लिये, नवयुग का स्वागत करने तथा इस भूमि के खोए हुए गौरव का पुनरुद्धार करने के लिये इन्हें उद्बोधित करते हैं। विरोध करने वालों के दिन लद गये हैं, अब डोगरों की बारी है। 'ए कून आया' (यह कौन आया है ?) में ग्राप नई प्रगतिशील शक्तियों के प्रति ग्रपनी ग्रास्था प्रकट करते हैं। अज्ञान तथा पुरानी प्रतिक्रियावादी शक्तियों का ह्रास हो रहा है तथा सभी वर्गों के लोग ग्रपने सुखमय भविष्य के निर्माण के लिये जागृत हो गये हैं। डोगरा श्रमिकों तथा किसानों, योद्धाओं तथा देशभक्त माताग्रों को चेत जाना चाहिये, जाग्रत लोगों ने अपने भविष्य की रूपरेखा बना ली है। रात बूढ़ी हो गई है ग्रौर इसका ग्रवसान समीप है। नव प्रकाश, मन्दगति होते हुए भी, प्रकट होने ही को है। ग्रापकी 'एह राती दा खीरी बेला' नामक कविता की प्रस्तुत पंक्ति, यद्यपि किसी भिन्न संदर्भ में कही गई है, जनता की नई ग्राशाग्रों तथा उत्कट ग्राकांक्षाग्रों के उदय का संकेत देती है। शास्त्री जी ने अपनी कविताग्रों, भाषणों तथा लेखों द्वारा डोगरों को इस 'नवप्रभात' का ग्रभिनन्दन करने की प्रेरणा दी है। शास्त्री जी ने डोगरा जीवन के विविध पक्षों पर कविताएं लिखी हैं। कभी तो आप उन्हें जागरण के लिये उद्बोधित करते हैं और कभी ग्राप उनकी ग्रकर्मण्यता एवं निश्चेष्टता के लिये उन की ग्रालोचना करते हैं। आपने गृहस्थ जीवन का भी बहुविध चित्रण किया है; तथा उस पत्नी की वेदना का, जिसका पति जीविकोपार्जन के लिये बाहर गया

है और उस बालविधवा का भी चित्रण किया है जिसके मन में आशाएं अब भी प्रबल हैं परन्तु समाज की दीवारें बड़ी दृढता से जिसका रास्ता रोके हुए हैं। 'चक्की' में एक ऐसी युवती का वणन है जिसे गेहूं तथा मक्की पीसने के लिये रात के समय भी कड़ा परिश्रम करना पड़ता है, जब कि उसकी सास और ननद गहरी नींद सोई हुई होती हैं। दत्तू की पंक्तियों की प्रतिध्वनि, जिसमें परामर्श मांगा गया है कि वह अपनी सास और ननद का सौहार्द किस प्रकार प्राप्त करे, और जिसकी प्रतिध्वनि आगे चलकर पद्मा की पंक्तियों में सुनाई देती है, इस तथ्य को प्रकट करती हैं कि बहू और उसके ससुराल वालों के बीच होने वाले तनावपूर्ण संबंध एक शाश्वत समस्या है, परन्तु चक्की का कड़ा परिश्रम एक प्रन्छन्न वरदान है। वह काम में व्यस्त रहती हैं तथा अपने सारे दुःख भूल जाती है अथवा उन्हें भुलाने का प्रयास करती है। सभी सो गए हैं पर ये दोनों जाग रहो हैं, लगता है कि उसके स्पर्शमात्र से ही चक्की सप्राण हो गई है। पर जहां चक्की के दोनों पत्थर सदैव परस्पर सम्मिलित रहते हैं, वहां उसका वास्तविक हृदय उसके पति के पास है, जो अज्ञात देश में है तथा उसका शरीर सास के घर में एक बन्दी के समान है। यहां मे विचार बन्दी गृह की ओर अग्रसर होता है तथा बहू और बंदी की तुलना का विवेचन कुशलता पूर्वक किया गया है। बन्दीगृह में चक्की चलाते समय सब कुछ भूल जाने वाले बन्दी की कल्पना उस स्त्री पर पूरी उतरती है जो अपने ससुराल, पतिविरह तथा अपने दुःखों को भुलाने का प्रयत्न कर रही है। क्या होता उन बन्दियों के दुःखों का, यदि उनके काम करने के लिये यह चक्की न होती? यदि यह चक्की न होती तो उस स्त्री के लिये बड़ा मुश्किल हो जाता जिसे अपना दुःख विस्मृत करने के लिये चक्की के समान दूसरा कोई साथी नहीं। चक्की के दो पाटों से उभरता हुआ एकलय संगीत उसकी प्रसन्नता का सूचक है तथा उसे उस के पति का स्मरण दिलाता है। और तब वह अपने अग-अंग में नए सांसों के

संचार का अनुभव करती है, और इस तरह उसका मन चक्की की प्रसन्नता के प्रति ईर्ष्या से भर जाता है। पर कोई बात नहीं। जब उसके पति लौटेंगे तो तब वह अपनी इस विश्वसनीय सखी को पूर्णतया भूल जाएगी, उसे अपने सारे दु:ख, सारी यातनाएं विस्मृत हो जाएंगी और तब उसके चारों ओर हर्षोन्माद का वसंत महक उठेगा।

यह कविता चिन्तन की प्रौढता को व्यक्त करती है जिसे बड़ी कुशलता से कार्यान्वित किया गया है। कविता की लय एक स्त्री की शोकाकुलता से लेकर उसको क्षोभ तथा असूया की मन:स्थितियों को अभिव्यक्त करने के लिये पूर्णतया उपयुक्त सिद्ध हुई है। सभी स्थितियां यथार्थ-पूर्ण हैं। वास्तविक यथार्थ अन्तिम चरण में दृष्टिगत होता है जिस में वह चक्की से कहती है कि जब उसके पति घर लौटेंगे तब उसे वह (चक्की) याद नहीं रहेगी तथा वह अपनी सारी यातनाएं भूल जाएगी। वह अपनी उस प्रसन्नता में इतती मग्न रहेगी कि उसे अपने अतीत की ओर झांकने का भी अवकाश नहीं होगा।

'एह रातीं दा खीरी बेला'* एक सुन्दर कविता है परन्तु पूर्णतया कलात्मक कृति नहीं। इस का पहला भाग वर्णनात्मक है तथा कल्पना वर्णन द्वारा उभर रही है। प्रथम भाग म भेंट अथवा मिलन का भाव मुखर है। विचित्र भेंटें जिनका परिचय बुद्धि द्वारा ही हो सकता है, लड़कियों के पार्वतियों के रूप में उल्लेख द्वारा तथा उनकी इच्छाओं के शिव के प्रति पार्वती की इच्छाओं के रूप में उल्लेख द्वारा स्पष्ट हो जाती हैं। इनपक्तियों में पौराणिक कल्पना जैसा आनंद देने का गुण है तथा स्थूल, कल्पना तथा पौराणिक शैली की कल्पना का मिश्रण वस्तुत: उत्कृष्ट बन पड़ा है। विभिन्न ध्वनियों तथा स्वरों द्वारा

---

*प्रातकिरण पृष्ठ २२

प्रतिपादित मन्थरगति से सूर्योदय का प्रकट होना तुरंत ग्राध्यात्मिक गंभीरता के वातावरण का सृजन करता है।

दूसरे भाग में विरह वर्णन है, क्योंकि युवती अपने पति से सर्वदा के लिये बिछुड़ गई है क्यों कि उसका देहान्त होगया है। पहले भाग में प्रसन्नता और ग्राध्यात्मिक भावनाओं का चित्रण हुआ है; दूसरा भाग बालविधवा की शोकाकुलता एवं भ्रांत मनोवृति को प्रकट करता है। यह उस अत्याचार पूर्ण व्यवहार का भी प्रामाणिक चित्र है जिसे उसको मूक रह कर निरन्तर झेलना पड़ता है। किन्तु कविता का अन्त तर्कसंगत नहीं है; वस्तुतः यह सहसा एक प्रश्नचिह्न के साथ मामाप्त हो जाती है। इस में निराशा का आभास होता है, क्योंकि जो प्रश्न प्रबलता से उभारा गया है उसका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह विषयवस्तु के निर्वहण का दोष है।

शास्त्री जी ने कुछ कविताएं डोगरी तथा डोगरों के संबंध में भी लिखी हैं पर इसके साथ डोगरी के विरोधियों की भी भर्त्सना की है, विशेषतः उन डोगरों की जो डोगरी के विरोधी हैं। डोगरी के बिना डोगरों को किसी प्रकार का सम्मान नहीं मिल सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाश के बिना चन्द्रमा का कोई महत्व नहीं है। यदि भूतकाल में डोगरी उन्नति नहीं कर पाई है तो इसका कारण यह रहा है कि कट्टरपंथी लोगों ने डोगरी के भाग्य को सीमित कर दिया हुआ था तथा डोगरी-भक्तों द्वारा प्रदीप्त की हुई कला एव संस्कृति की जोत को झक्की लोगों ने बुझा दिया था। विरोधी तत्वों की आलोचना करने के साथ साथ शास्त्री जी ने डोगरी प्रेमियों के मन में आत्मविश्वास का संचार करने का भी प्रयास किया, 'अक्ख कैसी निम्भीं तेरी' तथा 'धरती दे सुर्गे दी मुडी ए जवानो' (धरती के अच्छे दिन पुनः लौट रहे हैं) डुग्गर एव डोगरी के गौरव से परिपूर्ण हैं। इस

धरती का प्रेम, साहस और शौर्य आपकी 'रावी दे आरें पारें पैसे दियां फुलीयां' शीर्षक रचना में भी दृष्टिगत होता है। प्रसिद्ध रमणीक स्थल सन्नासर के विषय में भी शास्त्री जी ने कुछ चिरस्मरणीय कविताएं तथा 'डोगरा आर्ट गैलरी दी इक तस्वीर' भी लिखी है। 'चेता' में एक आहत मां की अनुभूतियों तथा अपने शिशु के प्रति उसके वात्सल्य का मार्मिक चित्रण है।

शास्त्री जी मनुष्य के गौरव तथा मानवता की महानता में विश्वास रखते हैं तथा आपके विचार में कलाकारों तथा कवियों का जन्म किसी उद्देश्य-विशेष की पूर्ति के लिये हुआ करता है। सत्यपरायण व्यक्ति निर्भीक होते हैं तथा मानवता अमर है, शाश्वत है। मनुष्य हज़ारों बार मृगतृष्णा की प्रवंचना में आया है, पर ऐसे अवसर भी आते हैं जब सफलता के बीज पराजय की यातनाओं के बीच छिपे रहते हैं—(अमर एह मनुक्खता)*, तथा कवि मानवता का मस्तिष्क है अतः उसे किसी भी भौतिक अथवा शारीरिक शक्ति के द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता। अतिलोभ तथा धन का प्रलोभन बुद्धिमान व्यक्ति को भी पतित बना देता है किन्तु एक कवि का मन पारस के समान है अतः पारस स्वर्ण से कैसे भयाक्रान्त किया जा सकता है? इस में अहं की गन्ध आती है परन्तु इस अहं का जन्म कवि की समाज के प्रति श्रेष्ठ कर्तव्य-भावना से हुआ है।

शास्त्री जी कभी कभी विवादास्पद कविता भी लिखते हैं तथा आपकी 'रूपकुण्ड' एक ऐसी ही रचना है। कला की दृष्टि से यह एक सफल कृति है। इस में भावुकता है तथा सूझ-बूझ है परन्तु इस में आप शौर्य और विजय की पुरातन धारणाओं को चुनौती देते हैं। विजय किसके लिये? किसके ऊपर विजय? किसी

---

*'प्रातकिरण' में रामनाथ शास्त्री: सम्पादक: मधुकर।

देशकी अन्यायपूर्ण विजय दूसरे देश की अनपेक्षित पराजय हो सकती है; एक राष्ट्रीय वीर. जिसने विदेशियों पर विजय प्राप्त की हो, उनके (विदेशियों) द्वारा प्रजापीड़क समझा जा सकता है। यह एक चुनौतीपूर्ण विचार है किन्तु शास्त्री जी ने अपने आप को इस धारणा के वशीभूत नहीं होने दिया है। आप इसका निर्वहण शान्त मन और संयम से करते हैं, यद्यपि इसकी मूल भावना को जीवित रखने की क्षमता इसके भीतर निहित है।

घनिष्ठ सांस्कृतिक बन्धुता की दिशा का कार्य-क्षेत्र यहां से केवल एक पग आगे है तथा आपने कश्मीर भूमि, इसके सुन्दर सफ़ेदे और चिनार के पेड़ों को सुन्दर श्रद्धांजलि भेंट की है। और साथ ही आपने लल्लेश्वरी, महजूर तथा नादिम जैसे कलाकारों, शिल्पियों तथा कवियों की प्रशंसा की है। कश्मीर की संस्कृति महान है क्योंकि सफ़ेदे और चिनार की भांति इसकी भी जड़ें धरातल के दूर नीचे तक चली गई हैं। ('पौदा'-पृष्ठ ५०-५२, प्रातकिरण, सम्पादक-मधुकर।) और शास्त्री जी ने संसार भर में प्रगति तथा शान्ति की सक्रिय शक्तियों को अपनी कविता का उद्देश्य बना लिया है। मानवता के इतिहास में कुछ संकटमय अवसर आते हैं और घुटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय पर व्यक्ति अपना कर्तव्य पहचानता है तथा समाज की यथार्थ परिस्थितियों का विवेचन करने के लिये अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रयोग करता है। 'समें दी लचारी' में आप डुग्गर की इस घुटन का चित्रण करते हैं तथा इसमें दूसरों के लिये मार्ग प्रशस्त करते हैं। 'तद्दू ए इतिहास हसदाए, एक क्रान्तिकारी भावना से परिपूर्ण कविता है, क्यों कि इस में घुटन और दमन का परिणाम हमारे सामने है। क्रान्ति के बीज अंकुरित हो रहे हैं और पुराने निहित-स्वार्थों को भूसात् करने वाले तूफ़ान का उठना अवश्यम्भावी है। परन्तु इस विप्लव के बाद ही सुव्यवस्था और स्थिरता आती है. जो कि प्रगति के दो महान् सोपान हैं।

शास्त्री महोदय ने ग़ज़लें लिखने के प्रयोग भी किये हैं। ये वस्तुतः दीप, किशन समैलपुरी तथा वेदराही की ग़ज़लों की भांति उर्दू ग़ज़ल की पद्धति से मेल नहीं खातीं हैं किन्तु ये डोगरी साहित्य में अपना एक विशेष स्वरूप स्थापित करती हैं। कुछ दृष्टियों से शास्त्री जी को डोगरी ग़ज़ल की एक नई पद्धति का प्रतिपादक कहा जा सकता है (मधुकर ने भी कुछ ग़ज़लें शास्त्री जी की शैली पर लिखी हैं) और ये लेखक के शक्तिशाली व्यक्तित्व को प्रदर्शित करतो हैं। कहीं कहीं राष्ट्रीय विषयों की ओर भी संकेत हैं तथा कुछ गज़लों में अतीत के संदर्भ में वर्तमान-कालीन वास्तविकताओं को एकाकार किया गया है।

'अजें बी ओस डबरी चा कदें ए बाज औंदा ए,
जे यारें दे बिना हुंदे ते कुशबा पार होई जन्दे।'

इसमें कदाचित् १९५३ की परिस्थितियों की ओर संकेत है, यद्यपि ऐसा लगता है जैसे इसमें डोगरों की किसी अतीत की घटना की ओर संकेत किया गया है। इस में यथार्थ स्थिति पर एक व्यापक वक्तव्य भी है। पहली तोन रचनाएं उर्दू शैली में हैं तथा अन्य दो डोगरी शैली में हैं। ये पंक्तियां :

जेड़ी कन्तानें मिलन ही आई चोरी,
ओ बजोगन गै फुल्लें पर रोई गेई।'

दुरूह कल्पना से परिपूर्ण हैं। शास्त्री जी प्रायः ऐसी कविता नहीं लिखते हैं, पर जब भी आप लिखते हैं, तब उन में अपनी कल्पना - ज्योतित-बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं। (ये ओस की बूंदें नहीं हैं, अपितु एक स्त्री के आंसू हैं, जो उसने अपनी शोकाकुल अवस्था में उस समय बहाये थे जब वह चोरी से अपने प्रिय से मिलने गई थी।) इस शैली की तुलना फिज्ज़राल्ड की रुबाइयों तथा उसके 'गुलाब के फूल' तथा 'कैसर' विषयक संकेतों के साथ की जा सकती है।

'उसके काजल में यमुना का जल प्रवाहित होता दिखाई देता है,
उसके होंटों की मुस्कान छोटी गगा जैसी दिखाई दे रही है,
प्रेम - विह्वल आंखें सरस्वती के समान हैं।
ऐसा लगता है उसकी आंखों में पवित्र त्रिवेणी का संगम हो
गया है।'*

आप एक समालोचक, निबन्ध-लेखक, कहानीकार तथा नाटककार भी हैं। आपकी कविता में छन्दरचना-कौशल एवं चिन्तनशीलता है जो हमें १८वीं शताब्दी के अंग्रेजी के कवियों का स्मरण दिलाती है। कल्पना आपकी कविता में है किन्तु कहीं कल्पना की ऊंची उड़ान दृष्टिगत नहीं होता। तर्क-प्रवीणता में भी आप १८वीं शताब्दी के अंग्रेज़ी-कवियों के अनुरूप ही हैं। आपकी रचना-पद्धति संवादात्मक तथा बोलचाल के ढंग की न होकर साहित्यिक है, जिसमें बहुत से शब्द हिन्दी के आ गये हैं। शास्त्री जी कहीं कहीं एक चिन्तनशील कवि के रूप में भी प्रकट होते हैं, परन्तु अनुवादक के रूप में आप की प्रतिभा और भी अधिक उभर आई है। साहित्यिकता एवं हिन्दीपन लिये हुए आपकी डोगरी कविता के विषय में चाहे कुछ भी कहा जाए, पर शास्त्री जी कालिदास के मेघदूत, भर्तृहरि के शतकों एवं रविबाबू के 'डाकघर' जैसे नाटकों के आत्मतत्व को डोगरी में प्रतिबिम्बित करने में अत्यधिक सफल हुए हैं। आपकी रचनाओं में संवाद स्वाभाविक हैं तथा दार्शनिक विवरण साहित्यिक शैली में हैं और अत्यधिक योग्यता और सफलता के प्रतीक हैं।

शास्त्री जी बहुत अधिक लिखने वाले लेखक हैं। आप ने डोगरी में तथा डोगरी साहित्य के विषयों पर अनेकों पुस्तकों का संपादन भी किया है। ऐसे लेखकों की संख्या बहुत कम है जो इनसे प्रभावित न हुए हों तथा यश शर्मा, रामकुमार अबरोल,

---

*देखिये 'प्रातकिरण' : पृष्ट ५६

वेद राही, पद्मा तथा मोहनलाल सपोलिया की कविता पर आपका प्रभाव निश्चय ही प्रभूत मात्रा में पड़ा है।

इतना अधिक कार्य कर लेने की सफलता एक उपलब्धि है; यह किसी भी व्यक्ति को ख्याति प्रदान कर सकती है। और शास्त्री जी को यह ख्याति मिली है। पर आपने इस से अधिक कुछ और भी किया है। आपने कविता, गद्य तथा नाटक के क्षेत्रों में डोगरी को समृद्ध बनाने के लिये तो योगदान दिया ही है पर इसके साथ साथ आपने संस्कृत के गौरव-ग्रन्थों : कालिदास के 'मेघदूत' भर्तृहरि के नीतिशतक, शृंगारशतक तथा वैराग्यशतक तथा रवीन्द्र-नाथ ठाकुर के कुछ नाटकों और उनकी गीतांजलि का अनुवाद करके इसके कलेवर में भी अभिवृद्धि की है।

दीनू भाई पन्त (१९१७......) यद्यपि पंडित हरदत्त शास्त्री डोगरी के पहले आधुनिक कवि थे परन्तु बदले हुए तथा बदलते हुए समय के अनुरूप इसे (डोगरी कविता को) नया रूप तथा नया दृष्टिकोण देने वाले कवि दीनू भाई ही हैं। समस्याओं के प्रति हरदत्त का दृष्टिकोण सामाजिक तथा सामाजिक एवं धार्मिक था परन्तु दीनू अपने साथ एक नवीन राजनयिक तथा विचारधारात्मक चेतना लेकर आए, जिसके बिना डोगरी कविता वस्तुतः कभी भी आधुनिक नहीं कही जा सकती थी। निश्चय ही दीनू भाई को डोगरी में कविता लिखने की प्रेरणा पंडित हरदत्त शास्त्री की कविताओं से मिली थी।

दीनूभाई एक धर्मपरायण ब्राह्मण परिवार में पैंथल नामक गांव में सन् १९१७ में उत्पन्न हुए। शिक्षा-प्राप्ति के लिये जम्मू आकर आपने कठिन परिश्रम किया। आपने संस्कृत में विशारद तथा हिन्दी में प्रभाकर की उपाधियां प्राप्त कीं। आरम्भ में आप हिन्दी में लिखते थे तथा आपकी हिन्दी कविताएं 'युग चला,' 'पथ पर दीप जलाने वाले' तथा 'हुंकार' अपने क्रांति-भरे भावों

और संगीत के लिये आज भी स्मरण की जाती हैं। परन्तु जब देश में राष्ट्रीय मुक्ति का आन्दोलन तीव्रतर हो रहा था, स्वशासन के लिये स्थानीय आन्दोलन को सुदृढ करने की आवश्यकता थी। तन्द्रा-ग्रस्त डोगरा जनसाधारण को जाग्रत करना ही सर्वोत्तम काम था तथा इसका सब से अच्छा माध्यम उन्हें डोगरी में उद्‌बुद्ध करना ही था। और उनके स्वात्माभिमान तथा सम्मान की भावना को आन्दोलित करने की सर्वश्रेष्ठ विधा कविता ही थी। इन्हीं तथ्यों के फलस्वरूप दीनू की प्रारंभिक कविताएं क्रांतिकारी उद्रेक, ओज पूर्ण भावों तथा शक्तिशाली भाषा से प्रदीप्त हैं। कहीं कहीं समुचित संयम तथा चिन्तनशीलता का अभाव है, जैसा कि 'मंगू दी छबील' में दृष्टिगत होता है। परंतु उन दिनों ध्वंसोन्मुख अवस्थिति को एक धक्का देने की आवश्यकता थी जोकि भावावेश में आई हुई जनता को जाग्रत करने में सहायक हो सकती थी, और हुई भी थी। बौद्धिक कविता तो केवल मस्तिष्क को छूकर ही रह जाती थी।

दीनू का जन्म एक सामान्य साधनों वाले परिवार में हुआ था। अपने गांव तथा जम्मू नगर में आप देख चुके थे कि किस प्रकार श्रमिक और किसान दिन भर कड़ा परिश्रम करके भी दो जून भोजन नहीं पा सकते तथा वे लोग, जो सर्वथा निठल्ले रहते हैं, वृद्धि और उन्नति प्राप्त करते जा रहे हैं। ऐसा क्यों? हम कड़ी, जलती धूप में परिश्रम करते हैं, कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलते हैं, हम स्वयं सामर्थ्य से बढ़कर काम करके दूसरों के घरों को (विभिन्न पदार्थों से) भर देते हैं, और यह सब कर के भी हम भूखों क्यों मरें? हमारे घर क्यों रीते रहें? (जागो डुग्गर पृष्ठ-४०)। निश्चय ही यह ऐसा संसार जीने के योग्य नहीं है। इसमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता है (एह दुनिया : जागो डुग्गर : पृष्ठ ३९); किसानों और मजदूरों को इस लड़खड़ाती व्यवस्था को आखिरी झटका देना होगा। और अपने प्रसिद्ध क्रांतिकारी गीत-- 'उठ मजूरा जाग किसानां, तेरा बेला आया ई' में आप पुजारी - समाज (पंडों और मौलवियों)

की सहायता से शोषकों द्वारा किये जाने वाले प्रवंचनापूर्ण कार्यों को अनावृत करते हैं, जो लोगों के मन में ईश्वर का नाम लेकर भयका संचार करते हैं। यह ईश्वरीय भय, जो निहितस्वार्थों द्वारा उत्पन्न किया गया है, पाखण्ड है। कालप्रवाह इन स्वार्थी लोगों के प्रतिकूल है तथा एक ही ठोस प्रयास से इनका पतन किया जा सकता है। इससे देखा जा सकता है कि किशन समैलपुरी, तारामणि तथा मधुकर जैसे परवर्ती कवियों पर दीनू की कविता का कितना प्रभाव पड़ा।

अपनी मातृभूमि के सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाले पहले कवि दीनू थे—'जै जै डुग्गर देस सुहाना'। यह संतों तथा पुण्यात्माओं, वीर योद्धाओं तथा कलाकारों, सरल, ईमानदार तथा स्पष्टवक्ता लोगों की प्राकृतिक सौन्दर्य - सम्पन्न धरती है; यदि किसी ने इसके सौन्दर्य की प्रशंसा नहीं की है तो इस का कारण उसके भीतर सहानुभूति तथा समुचित दृष्टि का अभाव है। अपनी धरती के सौन्दर्य से आनन्दित होने तथा इसकी प्रशंसा करने के लिये इसे एक कवि की दृष्टि से देखना चाहिये (मेरे देसा दा शलैपा मेरी अखीं कन्ने दिक्ख') परन्तु दीनू ऐसे रोमांसवादी और पलायनवादी कवि नहीं हैं जो अपनी प्रिय भूमि में व्याप्त दुर्दशा से आंखें मूंद लें। सामन्तशाही तथा पूंजीवाद के अभिशाप अब भी विद्यमान हैं। 'मंगू दी छबील' इसी रोषपूर्ण मनःस्थिति की अभिव्यक्ति है तथा दीनू डोगरी में पहले 'रुष्ट युवक' (एंग्री यङ्मैन्) थे। इसमें युवक मंगू का वर्णन है, जिसका एक पूंजीपति शोषक के हाथों सब कुछ छिन जाता है और तब वह साहूकार के घर को जला कर, अपनी प्रतिहिंसा की ज्वाला को शान्त करके अन्धकार में विलीन हो जाता हैं। इस कविता में दीनू की भावुकता ने इनके संतुलित विवेक को ग्रस लिया है; आप एक अराजकतावादी जैसे लगते हैं, जो आवेश में आकर केवल ध्वंस करना जानता है। क्रान्तिकारी उत्साह से परिपूर्ण होने पर भी इस कविता में काव्यगुणों का अभाव

है। एक अपरिपक्व कलाकार की भांति दीनू ने अपने विषयवस्तु को भावुकतापूर्ण बना दिया है।

१८४५ में प्रकाशित 'गुतलूं' आपकी हास्य-व्यंग्य की कविताओं का संग्रह है। ये कविताएं इतनी लोकप्रिय हुई कि इनका पंजाबी तक में अनुवाद किया गया तथा दीनू देखते ही देखते दिनों में प्रसिद्ध हो गये। इन कविताओं में प्रवाह है, सरलता है तथा व्यावहारिक अभिव्यक्ति है, जो अति मनोरंजक तथा चौंकाने वाली है। सरलता केवल बाहिर से देखने ही में है तथा इसमें भासमान कलात्मकता का अभाव वस्तुतः अपने भीतर उत्कृष्ट कलात्मकता को छिपाए हुए है। कवि मानो कटाक्ष कर रहा है। सरलता का उपयोग आप अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए करते हैं ताकि लोग पहले तो हंसें और बाद में इस पर विचार करें। इसमें व्यंग्य है, जो अत्यधिक प्रभाव - जनक है, क्योंकि यह किसी व्यक्ति-विशेष के विरुद्ध न होकर समाज की छलनाओं तथा पाखण्डों के प्रति है तथा झुंझलाहट का अभाव इसे और भी अधिक रसास्पद बना देता है। आपकी 'शैहर पैहलो पहल गे' (पहली नगर-यात्रा) अत्यन्त प्रमोद-जनक है तथा 'चाचा दुनी चन्दा दा ब्याह' (चाचा दुनीचन्द का विवाह) भी एक ऐसी ही रचना है। ये कविताएं कवि के व्यक्तित्व की परिचायक थीं क्योंकि इनसे लेखक की सूक्ष्मदर्शिता तथा उसका विचार-वैचित्र्य दृष्टिगत होता है। इनसे इनकी भाषा की लचक तथा गतिशीलता भी प्रकट होती है, जिसमें किसी भी स्थिति का विवेचन करने की क्षमता है। और दीनू ने अपने अभीष्ट को प्रकट करने के लिए भाषा के समस्त साधनों का उपयोग किया है।

दीनू की कृतियों का कुछ विशिष्ट उद्देश्य था और यह उद्देश्य था लोगों को बदलते हुए समय के प्रति सचेत करना। दासता तथा प्रशासनिक निरंकुशता का उच्छेद करना था, क्योंकि

दासता का जीवन मृत्यु से कहीं अधिक अनिष्ट-कारक होता है—

'मरने कोला बी माड़ा लोको जीना इस गुलामी दा'

और इसी कारण अपनी प्रसिद्ध कविताओं 'उट्ठ मजूरा' तथा 'बोल जवानां हल्ला बोल !' में सामंतशाही, प्रशासनिक निरंकुशता तथा पूंजीवाद के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उद्बोधन है। आपने साम्प्रदायिकतावादियों पर कठोर प्रहार किया है, जिन्हें धर्म का तो कुछ भी ज्ञान नहीं पर जो सरल-स्वभाव जनता का अपनी स्वार्थसाधना के लिये दुरुपयोग करने में तत्पर रहते हैं—

"मन्दर मसीत कदें जम्मियें नईं दिखे जिनें
उनें लुण्ड-लीडरें बगाड़ी दी गल्ल सारी"

(जिन्हों ने कभी भूल कर भी मंदिरों या मस्जिदों का मुंह नहीं देखा, उन्हीं गुण्डे नेताओं ने सारी बात बिगाड़ी हुई है।) अन्याय, प्रशासनिक निरकुशता तथा उत्पीडन के प्रति आपकी घृणा आपकी कविताओं में स्पष्टतः लक्षित होती है। आप जम्मू के राष्ट्रीय आन्दोलनों में सदैव आगे रहे हैं। १९४५ में जब चनैनी के शासक के विरुद्ध सार्वजनिक संघर्ष आरंभ हुआ तो आपने इन उत्तेजनापूर्ण शब्दों के साथ प्रसिद्ध 'निर्गम' का नेतृत्व किया था—

"तू एं बस्स पापिया, अस दूर चले
तेरे जुल्में थों गे होई मजबूर चले"

(ओ पापी ! यहां पर तू ही रह। तेरे अत्याचारों से विवश होकर हम यहां से भाग रहे हैं।)

जब वास्तविक परिस्थिति से अनभिज्ञ, बाहर के लोग हर डोगरे को प्रपीडन के गठजोड़ का एक अंग समझते हुए उसकी

आलोचना करते तो आप का विचलित होना स्वाभाविक ही था—

'लोक मीनां मारदे ए डोगरें दा राज ऐ
डोगरें दा हाल मंदा मिलदा नेईं साग ऐ।''

(लोग ताना देते हैं कि यह डोगरों का राज्य है पर यहां (इस राज्य में) डोगरों की दशा दयनीय है, उन्हें तो साधारण भोजन तक उपलब्ध नहीं है।)

राष्ट्रीय सरकार बनने पर आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर भी विदेशी आक्रमण से देश की सुरक्षा के लिये डोगरों का जागृत होना परमावश्यक था। बहन और भाई के एक युगलगान में बहन के बोल उसकी देशभक्ति की भावना के कारण प्रेरणा-जनक हैं—

''ए पेई कुञ्जी, बन्दे गैहने, खोली लै सन्दूक,
बेची बट्टी जिय्यां थोए लेई लै बन्दूक,
अस मरी जाचे साढा देस सुखी रौ
वीरा तुकी तेरीया जवानिया दी सौ।''

(हम भले ही मर जाएं किन्तु हमारा देश सुखी रहे।) १९४५ में प्रकाशित 'वीरगुलाब' के मूल में दीनू के यही श्रेष्ठ विचार निहित थे। उस स्थिति में दीनू के लिए वीर गुलाब डोगरों के शौर्य, उनकी श्रेष्ठता और गौरव के प्रतीक थे। जम्मू-कश्मीर राज्य के संस्थापक महाराजा गुलाबसिंह ने लद्दाख तथा गिलगित तक इस राज्य की सीमाओं का विस्तार किया तथा आपको पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह ने उस समय सम्मानित किया जब सोलह वर्ष की छोटी आयु में आपने जम्मू की सुरक्षा के लिए रणजीतसिंह की सेनाओं के साथ युद्ध किया। डोगरी का यह छोटा सा

महाकाव्य प्रखर तथा सशक्त शैलो में है। मियां मोटा के शब्द सम्राट् हेनरी पांचवें के शब्द स्मरण दिलाते हैं, जब उन्होंने 'एगिनकोर्ट' के युद्ध के अवसर पर वेस्टमूरलैंड से कहा था कि केवल वही लोग वहां पर ठहरें जिन्हें रक्तपातपूर्ण युद्ध की तीव्र इच्छा हो। कायरों को युद्ध करना छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वे देश की मानहानि ही करवाते हैं। दीनू के वीर-गुलाब की शैली ओजःपूर्ण है तथा गुलाबसिंह के चरित्र के साथ पूरा-पूरा न्याय किया गया है। भाषा पर दीनू महोदय को पूर्ण अधिकार है तथा आपकी पद्य-रचना प्रौढ़ है।

१९४७ में जब डोगरी संस्था ने संगठित होने के लिये कलाकारों का आह्वान किया तो दीनू भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये तथा आपने इसके लिये महत्वपूर्ण कार्य किया। आपकी कविताओं में आपकी मानसिक उद्विग्नता का पता चलता था, क्योंकि स्वाधीनता के बाद भी दशा पूर्णतया सुधरी नहीं थी। कुछ कविताओं में पूंजीवाद के प्रति आपकी असहिष्णुता, ('कोदी बसंत' और 'अड़ब बैड़ा') मध्यवर्ग की अस्थिर प्रकृति (यां इद्दर हो यां उद्दर हो!) तथा 'बेरोजगारी' के माध्यम से प्रकट हुई है। लोग भोजन पाना चाहते हैं क्योंकि वे कामचोर नहीं हैं। उन्हें काम देना सरकार का कर्तव्य है (कम्म करा ते रुट्टी दे)। ये कविताएं बहुत लोकप्रिय हुईं क्योंकि इनमें जन-साधारण की भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया था, यद्यपि उपरोक्त अंतिम कविता साहित्यिक दृष्टि से स्तरीय नहीं है।

अपनी 'दादी ते मां' शीर्षक कविता में आपने हिन्दी तथा डोगरी की समस्या को रचनात्मक तथा सौहार्दपूर्ण ढंग से निरूपित किया है। दोनों भाषाओं के बीच विवाद का कोई कारण ही नहीं है। डोगरों के लिए हिन्दी दादी के तुल्य है तथा डोगरी उनकी मां है। दोनों का अपना निजी महत्व है तथा दोनों अपरिहार्य हैं। कविता में डोगरे, डोगरी तथा हिन्दी के लिये शिशु, मां तथा

दादा के प्रतीकों का निर्वाह कलात्मक ढंग से हुआ है। दीनू का कृतियों में प्रस्तुत कविता को विशिष्ट स्थान प्राप्त है क्योंकि इसमें आपने अपनी प्रतिभा को और भी अधिक क्रियात्मक तथा रचनात्मक दिशा की ओर उन्मुख किया है।

दीनू जम्मू-कश्मीर राज्य के देहात-सुधार विभाग में ब्लॉक डिवेलपमेंट आफिसर हैं। आप किसानों तथा मज़दूरों की समस्याओं से परिचित हैं तथा पंचवर्षीय योजनाओं के महत्व को भी खूब समझते हैं। लोगों को कविता के माध्यम द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिये, और आपकी कविता 'कम्म करना सिक्ख, मंजिल गी पुज्जने तेईं', 'आ शर्त बद्दी लै (बारोसारी' आओ हम कड़ा परिश्रत करने की शर्त बांध लें) इसी ध्येय से लिखी गई हैं। इसमें दीनू का बुद्धिगत अनुभव प्रकट हुआ है परन्तु आपकी पूर्वरचित कविताओं के चुभन, शैलीगत प्रखरता, ओज और हास्य के गुण इनमें दृष्टिगत नहीं होते। शंका होती है कि शायद दीनू महोदय अपनी वास्तविक अनुभूतियों को संयमित कर रहे हैं। 'गुजरी' (एक गुर्जर सुन्दरी) में आपने अपने कवि को एक रोमेंटिक प्रसंग की ओर मोड़ा है। परन्तु दीनू के व्यक्तित्व में पलायन-वाद की अणुमात्र भी गुंजाइश नहीं है। आप शृंगार रस के कवि की भांति गुजरी के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, परन्तु आपके लिये 'गुजरी' एक सुन्दर रमणी के अतिरिक्त कुछ और भी है। उसको भावना, उसका साहस और कार्यक्षमता आज के युग के लिये परमावश्यक है। वह आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर है। वह कड़े शारीरिक परिश्रम द्वारा अपना जीविकोपार्जन स्वयं करती है। न तो वह सोने चांदी की भूखी है और न ही किसी की परवाह ही करती है। आधुनिक युग में उसकी इस कर्तव्यपरायणता को दीनू एक मोड़ देते हैं : वह अतीतकालीन सीता नहीं है जो रावण के अपहरण करने के लिए आने पर नियत रेखा से बाहिर नहीं निकल पाई थी। यह तो ऐसे रावण का कड़ा प्रतिरोध करेगी।

वह स्वच्छन्द तो है परन्तु उसमें प्रमाद नहीं। वह आदम की निर्भीक बेटी है। गंगा की आदिम तरंगों की भांति साहसी है। प्रस्तुत कविता रामायण तथा भागवत पुराण के निर्देशों से सम्पन्न है। राधा का निर्देश तुरन्त उन सामाजिक मूल्यों को प्रकट करता है जो दीनू को प्रिय हैं। राधा एक गोपबाला थी तथा वह कर्मठता तथा मानवता की स्वच्छन्दता की भावना का प्रतिनिधित्व करती है। गुजरी आधुनिक युग की राधा है और इस तरह वह कृष्ण-कन्हैय्या की साली है।

कविता में वर्णन सौन्दर्य तथा संगीतात्मकता है। शब्दों के लयमाधुर्य—शब्द तथा ध्वनिचित्रों—से कविता के लावण्य में अभिवृद्धि हुई है। परन्तु दीनू ने इस प्रकार की अधिक कविताएं नहीं लिखी है।

दीनू समझते हैं कि आप अपनी कविता में उन सब बातों का विवेचन नहीं कर पाते हैं जो कुछ आप इस बदले हुए युग में अनुभव करते हैं। प्रवृत्तियां बदल चुकी हैं। अतः आप गद्य-साहित्य, विशेषतः नाटक लिखने की ओर अधिक ध्यान देने लगे हैं। विस्तृत कलेवर तथा चरित्रों की बहुलता होने के कारण नाटक द्वारा वास्तविक अनुभूतियों को आंखों से ओझल किये बिना अभिव्यक्त करने की गुंजाइश अधिक रहती है। आपने 'नमां ग्रां' लिखने में प्रो० रामनाथ शास्त्री तथा रामकुमार अबरोल के साथ सहयोग दिया है तथा 'सरपंच' और 'संझाली' अकेले दीनू जी द्वारा लिखे गए नाटक हैं।

डोगरी साहित्य, गद्य तथा पद्य को दीनू ने बहुत अधिक महत्व दिया है। आप डोगरी के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में से हैं। आपके भाषागत अधिकार, व्यावहारिक शैली, हास्यमिश्रित प्रखरता, कटाक्ष और व्यंग्य से शायद ही कोई आगे निकल पाया है। जनसाधारण की दशा को बहुत कम लोगों ने भली भांति समझा है

तथा किसी ने भी इतनी लगन तथा इतने सशक्त रूप में इनका वर्णन नहीं किया है।

दुर्गादत्त शास्त्री (१९१७.....) डोगरी का यह आन्दोलन ज्यों ज्यों गतिशील होता गया, तथा कवि-गोष्ठियों की संख्या बढ़ती गई, जो कि जम्मू के विभिन्न भागों में आयोजित की जाती थीं, डोगरी लेखकों की संख्या भी प्रगुणित होती गई। सर्वश्री दुर्गादत्त शास्त्री, गंगादत्त शास्त्री 'विनोद', रामकृष्ण शास्त्री तथा श्यामदत्त 'पराग' ने भी डोगरी में लिखना आरंम्भ किया। इन्होंने हिन्दी में कविता लिखना छोड़ नहीं दिया है, अब भी ये हिन्दी के कवि कहलाना ही पसंद करेंगे, परन्तु ये डोगरी के प्रति उत्साह की उमड़ती हुई तरंगों के सन्मुख टिक न सके। इनकी डोगरी कविता पर हिन्दी का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है—इनकी प्रतिपादन - पद्धति, इनकी छन्दयोजना तथा शैली ही नहीं, कहीं तो इनकी चिन्तन प्रणाली पर भी हिन्दी का प्रभाव दिखाई देता है। परन्तु डोगरी-कविता विषयक इनका प्रयास अपनी मातृभाषा से उऋण होने की स्वाभाविक भावना को संतुष्ट करने का फल है। इससे उतनी ही, अपने देश में अभिवृद्ध हो रहे डोगरी के महत्व के प्रति, इनकी संचेतना भी प्रकट होती है।

दुर्गादत्त शास्त्री एक सरकारी स्कूल में अध्यापक हैं। आपकी कविता में ऐसे विषयों का समावेश मिलता है जो विचारणायुक्त, प्रासंगिक तथा वर्णनात्मक हैं। परन्तु आपकी कविता में नैतिक संकेत प्रमुख रूप में विद्यमान हैं क्योंकि आप वृत्ति से ही अध्यापक हैं। श्री दुर्गादत्त की कविता पढ़ते समय तर्क का स्वर कर्णगोचर होता है तथा इनमें उन ललित भावनाओं का अभाव है जो स्वतः ही अपने को पाठक के हृदय में ले जाती हैं। आपकी कविता में माधुर्य और संगीत की प्रचुरता शायद ही कहीं देखने को मिलेगी। पर इसके स्थान पर छन्द योजना की

प्रवीणता तथा तर्क-कौशल इनमें विद्यमान है। दुर्गादत्त एक धर्मपरायण व्यक्ति हैं तथा आपकी कविताएं भजनों जैसे लघुगीत हैं। परन्तु जनसाधारण के मध्य रहने के कारण आप उन्हें नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से अवगत कराने का प्रयास करते हैं। आपने देशभक्ति विषयक कविताएं भी लिखी हैं।

गंगादत्त विनोद (१९१८....) श्री गंगादत्त शास्त्री 'विनोद' बहुत योग्य हैं तथा श्री प्रताप कालेज श्रीनगर में संस्कृत के प्राध्यापक हैं। आप अध्ययनशील तथा धीरस्वभाव व्यक्ति हैं। आपने संस्कृत, हिन्दी तथा डोगरी में भी लिखा है। आपकी रचनाएं रहस्यवाद से संबन्ध रखती हैं परन्तु आपके वर्ण्य-विषय अप्रसिद्ध उल्लेखों तथा वर्णनों के कारण भी अधिक गूढ दिखाई देते हैं। श्री विनोद की डोगरी कविताएं अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई हैं। परन्तु 'उल्लोल' नाम से आपकी हिन्दी कविताओं का एक संग्रह अभी कुछ समय पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

श्री बालकृष्ण (१९१९.....) : आप का जन्म जम्मू के निकट अम्बगरोटा नामक गांव में सन् १९१९ में हुआ था। बालकृष्ण उन कवियों में से हैं जिन्होंने डोगरी के आन्दोलन के प्रारंभिक दिनों में कविता लिखना आरंभ किया था। बालकृष्ण अपने आसपास के वातावरण तथा धनिकों द्वारा निर्धनों के उत्पीडन से प्रभावित हुए। बहु-संख्यकों द्वारा अल्पसंख्यकों के राजनैतिक तथा सामाजिक शोषण को देखने से उद्भूत आपका रोष आपकी कविताओं में प्रकट हुआ। एक ब्राह्मण कृषक का आत्मज होने के कारण आप ज़मींदारों द्वारा किये जाने वाले किसानों के शोषण को खूब समझते थे। एक किसान के पुत्र के रूप में प्राप्त अनुभव ने आपके मन को किसानों तथा मजदूरों के प्रति समवेदना से परिपूर्ण कर दिया। बालकृष्ण ने कड़ा परिश्रम करके एम. ए. की परीक्षा पास की तथा इन दिनों आप प्रदेश के एक राजकीय कालेज में प्राध्यापक के रूप में काम कर

रहे हैं। आप को हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी के साहित्य का अच्छा ज्ञान है।

आपकी कविताओं में क्रान्ति की भावना तथा एक ऐसे आदर्शवादी युवक की अधीरता दृष्टिगत होती हैं जो यथार्थ को अपने सपनों से कठोरतर पाता है। किन्तु बालकृष्ण केवल कोरे सपने देखने वाले नहीं हैं, आप यह महसूस करते हैं कि मानवजाति के समस्त दुःखों का अन्त तभी संभव हो सकेगा जब वह स्वाधीनता एवं मुक्ति के वातावरण में सांस लेगी। आप की भाषा सशक्त एवं स्पष्ट है तथा आपके विचार सुव्यवस्थित और युक्ति-युक्त रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। आपकी कविताएं विशेषतः लोकप्रिय हुई हैं क्योंकि आपके द्वारा प्रतिपादित विषय उन समस्याओं से सम्बद्ध होते हैं जिनका हल जोतने वाले तथा खेतों में काम करने वाले लोगों को प्रायः सामना करना पड़ता है।

बालकृष्ण का दृष्टिकोण प्रगतिशील है तथा आपकी कविताओं में इसका स्पष्टतः अंकन हुआ है।

आपकी रचना 'झुनक' में हम आपके विचारों को विविधवर्णा कल्पना सृष्टि द्वारा अभिव्यंजित होते देखते हैं। रात्रि तीव्रगति से विलुप्त हो रही है। तथा प्रकाश-रश्मियां अंधकार को फाड़ कर प्रकट हो रही हैं। स्वार्थपरायण तथा निरंकुश शासन से दूषित अन्धेरी रात दुःखों और यातनाओं की प्रतीक है तथा प्रातःकालीन सूर्य राष्ट्रीय सरकार की प्रगतिशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। रात्रि के पक्षी, सांप जैसे भयानक तथा कुरूप जन्तु विलुप्त हो रहे हैं। यह मज़दूरों तथा किसानों को अपनी निद्रा से जागने तथा अपनी दासता की शृंखलाओं को झटका देकर तोड़ने का समय है। यदि वे अब ऐसा नहीं करते हैं तो फिर उन्हें स्वाधीनता और मुक्ति प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं मिलेगा।

आपकी 'देसे दी बेड़ी' नामक रचना में प्रतिक्रियावादी तथा प्रगति की शक्तियों के बीच संतुलन रखा गया है तथा नाव मानो भवर में है तथा इसे दोनों ओर से प्रतिकूल दिशाओं की ओर खींचा जा रहा है। तूफ़ान, बादलों तथा ओलों की कल्पना विषयवस्तु के लिये उपयुक्त है परन्तु इसमें किसी को भी संदेह नहीं होता कि बालकृष्ण की सहानुभूति किस के पक्ष में है। देश (नौका) शान्ति और उन्नति के स्वर्ग की ओर अग्रसर होने के लिए दृढ़संकल्प है। यद्यपि मांझी (निरंकुश शासक) इसे साम्प्रदायिकता और स्वार्थपरता रूपी जल की गहराइयों की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु इसमें बैठे हुए यात्रियों ने उस लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिये दृढ़ संकल्प किया हुआ है, जहां आकाश स्वच्छ है तथा तूफ़ानों का अन्त हो चुका है।

अभी कुछ समय पूर्व बालकृष्ण जी की बदली जम्मू में हो गई है तथा एक बार फिर आपको अपनी जन्म-भूमि के प्राकृतिक धरातल पर भेज दिया गया है। आशा है कि फिर एक बार आपकी काव्य-प्रतिभा से नवीन पल्लव तथा कुसुम प्रस्फुटित होंगे।

श्रीरामलाल गुप्ता (१९२०...) : श्री रामलाल गुप्ता उधमपुर ज़िला के रहने वाले हैं। आप एक प्रमुख प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता हैं तथा आपने कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं जिनमें उस पुनर्जागरण का वर्णन है, जिसके द्वारा स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद जनता प्रबुद्ध हुई है। किन्तु अभी तक आपकी कोई भी कविता प्रकाशित नहीं हुई है।

रामकृष्ण शास्त्री (१९२४...) : श्री दुर्गादत्त शास्त्री की भांति श्री रामकृष्ण शास्त्री भी वस्तुतः उपदेशक कवि हैं। आप श्री रघुनाथ संस्कृत पुस्तकालय में पुस्तकालय के

कार्यभारी हैं तथा आपका अध्ययन विस्तृत है । गौरवमय अतीत के उल्लेखों तथा संकेतों द्वारा आप लोगों को नैतिक मूल्यों को हृदयंगम करने तथा अपने गौरवमय अतीत की पुनः स्थापना करने के लिये उन्हें प्रबुद्ध करते हैं । आपकी शैली तथा छंद-योजना में हिन्दी अथवा संस्कृत की किंचित्मात्र भी छाप नहीं है किन्तु इनमें अपनी कविताओं में सामान्य तथा प्रासंगिक विषयों को एकाकार करने की क्षमता है । 'वैशाखी' केवल नववर्ष का प्रवेशोत्सव ही नहीं अपितु उस सब कुछ के लिये है जिस के लिये नया वर्ष आया है तथा यह (वैशाखी) अच्छे दिनों के आने तथा दुःखों और अनाचारों के विनाश के लिये भी आई है ।

श्री रोमालसिंह (१९२५ · · ·) : श्री रोमाल सिंह का जन्म जम्मू प्रांत के कठुआ जिले में बिलावर नामक स्थान पर हुआ था । आज कल आप जम्मू-कश्मीर राज्य के वन्य-विभाग में फारेस्टर हैं ।

आप गत पांच वर्षों से कविता लिख रहे हैं तथा आप ने कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं, जिन में पंचवर्षीय योजनाओं के विभिन्न पक्षों का विवेचन किया गया है । आपका दृष्टिकोण रचनात्मक है तथा आप अपने लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखते हैं । आप जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करते हैं तथा आपकी शैली सुस्पष्ट है ।

तारा समैलपुरी (१९२६......) : 'जनकवि' वह अभिधान है जो तारामणि को दिया जा सकता है । तारामणि ही एक ऐसे कवि हैं जो दीनू भाई पंत से मिलते जुलते हैं, क्योंकि दोनों की कविता जनता की समस्याओं को लेकर लिखी गई है । दीनू पंथल के रहने वाले हैं; आप ने चनैनी के शासक की दमन-नीति के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया है । आपने कटरा तथा धार नामक

स्थान देखे हैं तथा आपको इनका घनिष्ठ परिचय है। भाव यह कि दीनू जम्मू के पहाड़ी प्रदेश से संबंध रखते हैं तथा तारा समैलपुरी साम्बा के हैं, जो मैदानी इलाके में है। यह 'कण्डी' भूमि है जहां सूर्य की झुलसाने वाली गरमी पड़ती है। तथा पहले यहां के लोगों को पीने का पानी मीलों की दूरी से लाना पड़ता था और कहीं कहीं तो वे अब भी लाते हैं। अतएव यहां के लोगों में परिश्रमी और दृढसंकल्प होने के गुण विद्यमान हैं। यह वही कण्डी है जिस पर गंगाराम ने अपनी प्रसिद्ध कविता कण्डी दा बसना' लिखी थी। वातावरण की दृष्टि से दीनू तथा तारा समैलपुरी भिन्न जलवायु वाले इलाकों के रहने वाले हैं। परन्तु दोनों का आविर्भाव जनता के बीच से हुआ है तथा दोनों जनता के बीच ही रहे हैं तथा उन्हीं की भाषा बोलते हैं। यही कारण है कि दोनों की लेखन-पद्धति में परस्पर इतनी समानता है। दोनों ही ऐसी भाषा में लिखते हैं जिसमें भाषण की सी भंगिमा है, हास्य तथा व्यंग्य का तत्व है। और फिर दोनों की कविता का विषय जनसाधारण हैं, जिन्हें निम्न कोटि के वातावरण में रहना पड़ता है और कड़ा परिश्रम करके भी जो सामान्य सुविधाओं से वंचित रहते हैं। निम्न-मध्यवर्ग के परिवारों से संबन्धित होने के कारण आप जनसाधारण की कठिनाइयों से परिचित हैं।

ये सभी बातें इनकी कविता में विद्यमान हैं। जैसा कि तारा समैलपुरी स्वयं कहते हैं, आपने दीनू भाई का गुतलूं सुनने के पश्चात ही कविता लिखना आरंभ किया था, जिस में हास्य और व्यंग्य प्रचुरता से विद्यमान है। ये दोनों तत्व तारा समैलपुरी की 'एह कुन साब ने लङ्गा दे' और 'गिलारा' में विद्यमान हैं। इनमें से पहली कविता में हास्य और व्यंग्य दोनों हैं। गुब्बारे की भांति फूले हुए धनी व्यक्ति का वर्णन बहुत प्रभावोत्पादक है। यह विवरण अतिरंजित है तथा हास्य रस की मनोरंजकता लिये हुए हैं, जिस में केवल एक विशेष पक्ष पर ही बल दिया गया है। इसमें केवल उस (धनी) के गोल-मटोल होने के पक्ष पर ही बल दिया

गया है जो पाठक को प्रमुदित तथा हास्य-विभोर कर देता है। और इसके साथ ही इस चित्र में पूंजीपतियों एवं पूंजीवादी व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। वह इस लिये मोटा हो गया है कि उसने एक बड़ा ठेका ले लिया है; वह तेज़ चलता है, क्यों कि जिस व्यवस्था का वह प्रतिनिधि है, उसके अब थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं। वह मन का काला है तथा काले काम—काला बाजार—करता है। प्रस्तुत कविता मृदु-हास्य - मंडित व्यंग्य लिये हुए है। यह ढंग, जिसे कवि ने दीनू भाई पन्त से अधिगत किया है, प्रभावोत्पादक है, क्योंकि प्रसन्न करने के साथ-साथ इसके द्वारा कई तथ्यों का अनावरण भी होता है, यद्यपि इन में किंचित् अन्तर भी है। दीनू भाई जहां एक समस्या को उठा कर उसका समाधान प्रस्तुत करते हैं वहां तारामणि केवल समस्या को उठाते ही हैं और सदैव उसका समाधान प्रस्तुत नहीं करते। दीनू तारा समैलपुरी से अपेक्षतः अधिक परिपक्व और श्रेष्ठतर कवि हैं।

'गिलारा' स्त्री-वेशभूषा पर एक हल्की-फुल्की रचना है। यह गिलारा नामक एक ढीले-ढाले वस्त्रविशेष के पहनने के फैशन पर एक मृदु कटाक्ष है, जिसने कवि के मन में बहुविध उपमाओं को उभारा है। ये सब की सब उपमाएं अत्युक्तिपूर्ण हैं तथा कवि के इस अभिप्राय की पुष्टि करती हैं कि यह वस्त्रविशेष भद्रोचित नहीं है।

'कदूं जाग ए बीमारी' भी एक व्यंग्यात्मक रचना है, यद्यपि इसमें हास्यरस की परिस्थितियां है। हास्य का पुट होने के कारण इसका व्यंग्य बहुत प्रभाव-जनक है। एक जवान लड़की योषापस्मार (हिस्टीरिया) नामक रोग से पीडित है। समुचित जानकारी न होने तथा इस रोग से अनभिज्ञ होने के कारण लोगों को संदेह होता है कि उसे किसी पिशाच ने पकड़ लिया है अथवा इस पर किसी प्रेतात्मा की छाया है। इस रोग का

कोई वैज्ञानिक उपचार न करके रोगी को यंत्रणा पहुंचाई जाती है अथवा आदिम विधियों से इस रोग की चिकित्सा की जाती है। यह अन्धविश्वासिता तथा अज्ञान की आलोचना है, जिस के कारण हर रोग में भूतों - प्रेतों की ओर ही लोगों का ध्यान अधिक जाता है तथा रुष्ट आत्माओं को शान्त करने के लिये बलियां दी जाती हैं। कविता के अन्त में बताया गया है कि योषापस्मार (हिस्टीरिया) की चिकित्सा जादू-टोने से नहीं हो सकती। इसमें चिकित्सक द्वारा उपचार करवाने की आवश्यकता रहती है। कविता संवादात्मक पद्धति पर लिखी गई है तथा इसका वर्ण्य-विषय ऐसा है जो सीधा जनता से सम्बन्ध रखता है। स्वयं भी ऐसे ही लोगों में से होने के कारण तारा समैलपुरी उन्हें भली भांति समझते हैं तथा उन्हें शिक्षा देने का यत्न करते हैं। आपकी 'कुण्डलियां' भी एक व्यंग्यात्मक प्रयास हैं। इसमें अत्यधिक मद्यपान तथा चरस पीने के दुष्परिणामों का बड़े मनोरंजक ढंग से वर्णन किया गया है। इसका स्वर जाना पहचाना है तथा शैली सुपरिचित है।

कण्डी में जन्म होने तथा वहां निवास करने के कारण आप वहां रहने वाले लोगों की अपार कठिनाइयों से भली भांति परिचित हैं। आपकी कविता 'कण्डी दा बसना' राजा रणवीर सिंह के शासनकालीन पंडित गंगाराम द्वारा उसी शीर्षक से लिखी गई कविता से स्पष्टतः प्रेरित है। परन्तु तारामणि की कविता दोनों में अपेक्षतः अधिक लम्बी है और इसमें उससे अधिक पहलुओं का निरूपण किया गया है : इसके गरम जलवायु, ग्रीष्म ऋतु में होने वाले भयंकर कीड़ों मकोड़ों, वहां के ढोरों, जिन्हें पीने को पानी तथा खाने को चारा नहीं मिलता, लोगों की कठिनाइयों, जिन्हे मीलों की दूरी से पीने का पानी लाने का कष्ट झेलना पड़ता है आदि अनेकों बातों का समावेश किया गया है। पानी की कमी को पूरा करने के लिये कोई ठोस यत्न नहीं किया गया है।

यद्यपि कुछ गाड़ियों में पानी भर कर कुछ गांवों में पहुंचाया जाता है पर यह पर्याप्त नहीं है । इस में कुछ प्रासंगिक निर्देश भी हैं, जैसे पानी पहुंचाने वाली गाड़ियों का आरंभ । यद्यपि इसका आलेख्यपट गंगाराम वाली रचना 'कण्डी दा बसना' से अधिक विस्तृत है पर जहां इसका कलेवर बड़ा हो गया है वहां इसमें उस जैसी गंभीरता नहीं आ पाई है । इस में गंगाराम की कविता जैसा अर्थ-गौरव, संक्षेप तथा तीव्रता नहीं है । इस के स्वर में कटुता है तथा इसमें गंगाराम की 'कण्डी' जैसे काव्य-गुण का अभाव है । पर इस कविता से पता चलता है कि तारामणि को अपने वर्ण्य-विषय की गहरी पकड़ तथा जनता की समस्याओं का घनिष्ठ परिचय है । तारामणि की शैली-सशक्त है जोकि इनकी पूर्वरचित कविताओं 'कदूं जाग ए बिमारी' तथा 'फौजी पेन्शनर' में प्रकट हो चुकी है । 'फौजी पेन्शनर' कविता में अपने देश से बाहिर जाकर दूसरों के लिये युद्ध करने वाले फौजी पेन्शनर का करुण वर्णन है, जिसे सेवा-निवृत्ति के बाद मात्र पांच रुपये पेन्शन मिलतो है तथा इस तुच्छ रकम को वसूल करने के लिये भी उसे कड़ी धूप में मीलों चल कर जम्मू आना पड़ता है । इसमें इस दुर्व्यवस्था की भी निन्दा है जिसमें ऐसी बातों को घटित होने दिया जाता है । पैन्शनर (सैनिक) की अन्तिम तथा सर्वोत्तम धनप्राप्ति मृत्यु के हाथों ही प्राप्त होती है जब वह अपने समस्त दुःखों, अपनी सारी यातनाओं से मुक्त हो जाता है । प्रस्तुत कविता सैनिकों के प्रति किये जाने वाले दुर्व्यवहार को ध्यान-केन्द्रित करती है, जो युद्ध - भूमि में, भले ही अंग्रेज़ों की गौरव-रक्षा के लिये, युद्ध करके बड़े कष्ट झेल चुके हैं तथा अन्त में जिनकी मृत्यु अति हीन दरिद्रावस्था में होती है ।

तारा समैलपुरी ने जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं; आप आर्थिक बन्धनों में बन्धे हैं । यदि अब कड़ा परिश्रम करके तथा अधिकाधिक परिश्रम करके भी किसी को उसका प्राप्य

उपलब्ध नहीं होता तो समाज की इस अवस्थिति के साथ ही सामाजिक व्यवस्था में भी कहीं कोई दोष अवश्य है। यह व्यवस्था किस लिये ? इस दशा से मुक्ति प्राप्त करने के लिए परिवर्तन परमावश्यक है। तारा समैलपुरी जनता के कवि हैं और उन्हीं की भावनाओं को मुखरित करते हैं। इस दृष्टि से तारामणि एक ऐसे कलाकार हैं जो अपनी कला का उपयोग जीवन के लिए करते हैं (न कि कला के लिये)। अपनी 'मज़दूर' शीर्षक रचना में आप मज़दूरों के सन्मुख उनकी समस्याएं उभारते हैं। 'के जुग बदलोंदा जा करदा' में एक बड़ा प्रश्न-चिन्ह है। क्या वास्तव में युग बदल रहा है, जैसी कि नेताओं तथा कुछ लोगों की धारणा है ? वस्तुतः ऐसी कोई आशापूर्ण परिस्थिति नहीं है, क्योंकि निर्धन और धनी की विषमता तथा उसी तीव्रता के साथ शोषक और शोषित वर्ग अब भी विद्यमान हैं। परन्तु तारा समैलपुरी ने अपने वर्ण्य-विषयों को विकसित किया है तथा अपने दृष्टिकोण को विस्तृत किया है, जैसाकि 'हुन साढी बारी आई ऐ' में दृष्टिगत होता है। आप बदली हुई परिस्थितियों तथा समय की मांग से परिचित हैं। अब अपने श्रम का समुचित फल प्राप्त किये बिना कड़ा परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। मज़दूरों का शोषण करने वालों, सदा कारों की सवारी करने वालों तथा बिना हाथ-पांव हिलाए वैभवशाली जीवन व्यतीत करने वालों का अन्त समीप है। अब उन्हें कारों से उतरना है, क्योंकि जो धूलि उन्होंने अपनी कारों द्वारा उड़ाई थी अब एक तूफ़ान का रूप ले चुकी है। 'चल्ल मनां' (चल मेरे मन) में वह मनःस्थिति व्यंजित हुई है जिसमें वर्तमान परिस्थितियों के प्रति अधीरता की छाप आगई है तथा विकल्प सुझाया गया है। एक ऐसे संसार की अवश्यकता है, जिसमें किसी प्रकार का शोषण, भूख और दारिद्रय न हों। कविता में नैराश्य की भावना नहीं है क्योंकि इसमें एक नवीन व्यवस्था सुझाई गई है जिसकी स्थापना करना सम्भव हो सकता है। 'बेकार नौज़वान ते कवि' प्रश्नोत्तर रूप में लिखी गई कविता है।

युवक बेरोज़गार तथा विवश हैं। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाने पर भी इसमें सामाजिक निर्धनता तथा शोषण पर टीका-टिप्पणी की गई है। कवि युवकों को परामर्श देता है कि वे हताश न हों। वे आज अकेले नहीं हैं, विश्व भर के कोटिश: मज़दूर उनके साथी हैं, जिनमें वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बदलने की क्षमता है; आवश्यकता केवल दृढ़-संकल्प की है। तारा समैलपुरी के दृष्टिकोण का क्रमिक विकास हुआ है तथा आपके विचारों में परिपक्वता आ रही है। अब आप केवल समस्या का उल्लेख भर ही नहीं करते वरन् उसका समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। आपकी भाषा तथा स्वर जनता के हैं तथा इस गुण के परिणाम-स्वरूप आपकी कविता में संवादात्मकता तथा घनिष्ठता का पुट है। वे अब अधिक यथार्थपूर्ण दृष्टिगत होती हैं।

तारा समैलपुरी प्राय: जनसाधारण की समस्याओं के निरूपण ही में व्यस्त रहते हैं, परन्तु आपने प्रकृति के साम्राज्य से कतिपय टुकड़े बटोरने के लिये भी समय निकाल लिया है। 'बारां माह ते बहारां' (बारह मास तथा ऋतुएं) ऋतुवर्णन की पद्धति पर लिखी गई कविता है, जो बहुत से लोक-गीतों में मिलता है तथा डोगरी कविता में जिसका सूत्रपात सर्वप्रथम कवि अलमस्त द्वारा हुआ है। विवरण की प्रामाणिकता से तो इन्कार नहीं किया जा सकता किन्तु तारा के वर्णन में अलमस्त की सी स्वच्छन्दता और संगीत का अभाव है। नि:सन्देह इसमें चित्रमयता है तथा यहां तारा समैलपुरी की कविता में परिपक्वता दिखाई देती है। इस प्रकार की कविता डोगरी के लिये भी नई है तथा तारा महोदय के लिये भी क्योंकि इसमें ऋतुओं तथा वर्ष के बारह महीनों में होने वाले परिवर्तनों का विस्तृत वर्णन किया गया है। (देखिये : 'मगधूलि' तारा समैलपुरी का भाग)।

प्रस्तुत कविता के ढांचे में कल्पना सुव्यवस्थित है। पवन-

झकोरों से हिलती हुई फसलें ऐसी दिखाई देती हैं जैसे युवती-बालएं झुकने पर सुन्दर दिखाई देती हैं। ऐसा लगता है मानों हवा उनके केशों को संवार रही हो। यह अत्यन्त मनोहारी दृश्य है तथा प्रसन्नचित्त किसान ढोलक की थाप पर नृत्य कर रहे हैं। ऋतुओं तथा उत्सवों का परस्पर सम्बन्ध बताया गया है तथा विभिन्न व्यवसायों के लोगों के क्रियाकलापों का चित्रण किया गया है। तारा समैलपुरी ने इस प्रकार की कविता को अपनी रचना 'अनसम्बे गीत' (अक्षय गीत) में आगे बढ़ाया है जो जुलाई १९६० की योजना में प्रकाशित हुई थी। कविता मुक्त-छन्द में लिखी गई है परंतु इस का अपना निजी संगीत तथा शैली - सौन्दर्य है। प्रस्तुत कविता तारामणि की श्रेष्ठतम रचना है तथा डोगरी में अभिव्यक्ति के सौन्दर्य तथा परिपक्वता का दुर्लभ उदाहरण है। शब्द-माधुर्य अनुप्रास, स्वरैक्य, झरनों और नदियों में मिलने वाला संगीत, फूलों, पक्षियों तथा प्रकृति के अन्य दर्शनीय चित्रों को बड़े कौशल तथा कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। कल्पना कविता के अंग अंग में समाई हुई है तथा सुगठित है। इस में कुछ भी फालतू नहीं है तथा समग्र भावना को सुन्दरता से निभाया गया है। तारा समैलपुरी की कला - प्रियता तथा कला इस रचना में देदीप्यमान हो रही है। इसमें श्रृंगारिक तथा अकृतिम सौन्दर्य है, कुछ एक दुःखों के वेदनामय पक्षों का निरूपण भी हुआ है, किन्तु उन सब का सीधा सम्बन्ध जीवन से है। और जीवन सुन्दर है तथा इसे जीना भी सौन्दर्यमय है। कौन कहता है कि इस में लावण्य तथा संगीत का अभाव है। कविता वर्णनात्मक है। और आश्चर्यजनक बात तो यह है कि तारा समैलपुरी ने इसका वर्णन डोगरी जैसी तथा साधारण बोलचाल की भाषा में किया है जिससे इसमें गति - शीलता तथा उदात्त सम्भावनाएं प्रकट हुई हैं। यह कविता तारा समैलपुरी में एक नवीन परिवर्तन की सूचक है। अब तक तो आप ने जनता की

समस्याओं को लेकर ही लिखा था । और उस सब की शैली इश्तहारी थी जो अब यथार्थ रूप में कवित्वपूर्ण हो रही है ।

वेदराही ने अपनी पुस्तक 'जगदियां जोता' के पृष्ठ सोलह पर लिखा है कि तारा समैलपुरी की कविता में फूलों का सौरभ तथा प्रेम का हंसी-विनोद नहीं है । यह ठीक है, जब वेद राही ने यह पुस्तक लिखी थी तब तक तारा समैलपुरी ने ऐसी कोई भी रचना नहीं लिखी थी । परन्तु 'बहारां' तथा 'अनसम्बे गीत' इस दिशा की ओर इन के अग्रसर होने का पता देते हैं । तारामणि अपनी प्रारंभिक कविता के शृंगारिक सौन्दर्य, जीवन के मर्यादित किन्तु मनोहारी पक्षों, गहन चिन्तन - शीलता, लयमाधुर्य तथा वास्तविक कलात्मकता के गुणों के अभाव की पूर्ति के लिये प्रयास कर रहे हैं। इसका आरंभ पहले हो हो चुका है और यह आरंभ अच्छी प्रकार हुआ है । और अपनी सूक्ष्म निरूपणशीलता, भाषा के सधनों का उपयोग करने की क्षमता तथा महान् कृति के लिये अपेक्षित समवेदना के प्रदर्शन द्वारा आप निश्चय ही समुचित ख्यातिलाभ कर सकेंगे ।

तारामणि ने डोगरी 'कहावत कोश' नामक ग्रन्थ भी लिखा है, जो डोगरी लोकोक्तियों तथा कहावतों का संकलन है, जिसमें हिन्दी तथा उर्दू में उनके समानार्थक शब्द दिये गये हैं । राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित यह एक उपयोगी पुस्तक है जो डोगरी के शब्दकोष तथा व्याकरण के निर्माण में सहायक होगी । तारामणि अब अधिक कठिन और चिन्तन - प्रधान विषयों का चित्रण करने में प्रौढतर होते जा रहे हैं । बोलचाल की व्यावहारिक अभिव्यंजनशीलता पर आपका अधिकार अब भी वैसा ही है जिसके द्वारा आपकी कृतियों में स्थानीयता के सौंन्दर्य का संचार होता है ।

यश शर्मा (१६२७ .. ..) यश शर्मा का नाम हमें

'मेला', 'बनजारा' और 'संझा दा दीप' (सांझ के दीप) के कवि का स्मरण दिलाता है। क्यों कि उन्हीं कविताओं के गुणों के कारण आप डोगरी के श्रोताओं में अधिक लोकप्रिय हैं। यश एक गायक कवि हैं तथा सुरीले स्वर में गाई हुई कविताएं आपके लिये तथा डोगरी के लिये सहानुभूति रखने वालों के मन में आदरणीय स्थान पाती हैं। आपके कविता पढ़ने में एक आकर्षण है, जिसकी चौंध में आपकी कलागत तथा शिल्पविषयक त्रुटियां अदृश्य हो जाती हैं।

यश महोदय ने अपना कवि-जीवन हिन्दी कविता से आरंभ किया। था पहले आप रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा बच्चन की कविताओं का पाठ किया करते थे। बच्चन के काव्य, विशेषतः उनकी 'मधुबाला,' 'मधुशाला' तथा लघुगीतों की, जिन में 'निशानिमंत्रण' प्रमुख है, यश की कविता तथा शैली पर गहरी छाप है। १९४४-१९४७ में आप प्रिन्स-ऑव वेल्स कालिज (अब गवर्नमेंट गांधी मेमोरिल काजिज) जम्मू में हिन्दी के कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। कबाईली आक्रमणों ने आपको रोमान्स की छोटी सी दुनिया से बाहर निकाल दिया तथा आपने शत्रु का सामना करने के लिए जनता को प्रबुद्ध करने के लिए हिन्दी में गीत लिखे। गांधी जी की मृत्यु से आपको आघात पहुंचा और आपने एक कविता लिख कर स्वर्गीय नेता को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की, जिस में शिल्पगत त्रुटियां तो थीं परन्तु एक घायल हृदय का भावोच्छ्वास था। और जब आपने रेडियो कश्मीर में काम करना आरंभ किया तो आप ग्रामीणों के लिये प्रसारित किये जाने वाले (ग्राईं भ्राएं आस्ते) कार्यक्रम में भाग लेने लगे। इससे यश जी ने यह महसूस किया कि इन्हें अपनी मातृभाषा के प्रति भी अपना दायित्व निभाना है।

यश महोदय ने देशभक्ति के गीतों के साथ डोगरी में प्रवेश किया। ये सरल तथा प्रत्यक्ष शैली में लिखे गए थे तथा आपके

मधुर स्वर में श्रोताओं के मनको आन्दोलित करने की क्षमता थी। डुग्गर आक्रान्ताओं द्वारा धमकाया जा रहा था और इसके सम्मान तथा इसको स्वाधीनता जोखिम में पड़ गये थे। 'डुग्गर भूमि को बचाने के लिये इसके मानरक्षा हेतु मर मिटने की आवश्यकता थी।' एक पुरुष तथा उसकी पत्नी के गुणगान के रूप में लिखे गये गीत में डोगरों को अपनी मातृभूमि के रक्षाहित मर मिटने के लिए चेताया गया है, जैसा कि उनके पूर्वज अतीत में किया करते थे। गीत सशक्त है, यद्यपि इसमें माधुर्य का अभाव है। आपकी 'करसान' (कृषक) एक चुनौती पूर्ण रचना है, क्यों कि यह किसान को उसका गौरव और सम्मान लौटाती है, जो किसान जनता का नेता है तथा जिसकी उदारता के फलस्वरूप स्वार्थपरायण लोग धनी और सम्पन्न हो गए हैं तथा क्रूर व्यवहार करते आ रहे हैं। 'साढ़े सौने गी शिड़कां ते चौक पे दे' (हमें रात में सड़कों और चौराहों पर सोना पड़ता है।) शीर्षक रचना मानो बीसवीं सदी के किसानों और श्रमिकों को शोषकों द्वारा किये जाने वाले अन्याय और प्रपीडन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये कवि 'शैली' द्वारा दिये गये आह्वान का उत्तर है। यदि इस कविता को भली भांति गाया जाए तो उस में उद्वेलित करने का गुण है। इसका विषय पूर्णतया क्रान्तिकारी है। लोग अपनी स्थिति पर किंचित् मात्र भी संतुष्ट नहीं हैं क्योंकि उन्हीं के परिश्रम के बल पर मुट्ठी - भर धनी लोग उन्नति करते जा रहे हैं, जिन्हें विलासिता के सब साधन उपलब्ध हैं। प्रस्तुत कविता में श्रेष्ठतर संगीतात्मकता के गुण का अभाव है। परन्तु यदि इस में माधुर्य का समावेश कर दिया जाता तो इसकी शक्ति और बल क्षीण हो जाते। 'संझां दा दिया' पूर्णतया बच्चन के निशा-निमन्त्रण से प्रेरित रचना है और लगभग उस का डोगरी रूपान्तर है। इसमें यश एक ऐसी मनःस्थिति का आह्वान करते हैं, जिस में उस प्रिय की, जो अब इस संसार में नहीं है, विरह वेदना—चिरविरह है। तब सांझ के समय घर लौटने की क्या

जल्दी है ? प्रकाश युक्त कमरे में अब कौन उसकी प्रतीक्षा कर रहा है ? यहां रोमांस की उत्कण्ठा है, तीव्र मानसिक वेदना है, जिसे यश ने डोगरी कविता में चित्रित किया है । तो इस तरह यदि यह बच्चन की कविता का ही अनुकरण है तो क्या इस में कोई हानि है ?

बच्चन का प्रभाव यश की अन्य कविताओं में भी देखा जा सकता है । क्योंकि बच्चन की भांति यश भी अपने वर्ण्य-विषय के निर्वहण में अफीम के प्रभाव से मिलने वाले पीड़ा-मिश्रित माधुर्य और सम्मोहकता का संचार हुआ है । वस्तुतः वेदना पीड़ाजनक नहीं रहती है । कभी-कभी यश लोक गीतों के छन्द में बोलते हैं । इनका यह गुण इन्हें तुरन्त लोकगीतों की परम्परा के समीप ले आता है तथा आपको उस धारा का अंग बना देता है, परन्तु आप जब अत्यन्त वेदनामय विषयों पर लिखते हैं तो तब आप के चित्रण में एक ऐसा गुण आ जाता है जो पीड़ा को भी एक सम्मोहनशील वस्तु बना देता है ।

यश महोदय में पुनरुक्ति की टेव है । यह एक त्रुटि है क्योंकि यह इनके चिन्तन तथा कृतित्व को सीमित कर देती है । आपने 'गिल्ले गोटे चुल्ली लाई, धूएं बाने रोनी आं' (मैंने गीले उपले चूल्हे में लगा दिये हैं और अब धुएं के बहाने रो रही हूं ।) इस लोकगीत के आधार पर एक गीत लिखा है । गीत इस रूप में भी सम्पूर्ण है, क्योंकि इसी में बहुत कुछ कह दिया गया है : एक विवाहित लड़की की अथवा उस लड़की की विवशता है जिसे प्रेम में सफलता नहीं हुई है । ठीक उसी भाव की पुनरावृत्ति यश रचित गीत के अंतिम चरण में हुई है । (मगधूलि, पृष्ठ ४ सम्पादक श्री शम्भुनाथ) अपने गीतों में आप घनिष्ठ व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक समस्याओं का निरूपण करते हैं और गेयता के गुण से युक्त यही घनिष्ठता इन्हें डोगरी-काव्य में एक आकर्षक वैशिष्ट्य प्रदान करती है । यश की प्रतिभा न तो विवेचनात्मक है

श्रौर न ही वर्णनात्मक। यही कारण है कि आपने न तो कोई विवेचनात्मक अथवा न ही कोई लंबी कविता लिखी है। श्रौर जब कभी श्रापने इस प्रकार का कोई प्रयास किया भी है तो 'मेला' की भांति श्रापने उसे श्रधूरा ही छोड़ दिया है। केवल किसी विशिष्ट मनःस्थिति श्रथवा किसी विशिष्ट श्रनुभूति को चित्रित करने में ही यश सर्वाधिक सिद्धहस्त हैं। देशभक्ति विषयक श्रापकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएं भी लधुगीतों के रूप में हैं।

श्रपने गीतों में यश महोदय विभिन्न विधियों का उपयोग करते हैं। गीत-२ (मगधूलि, पृष्ठ ६, दूसरा चरण) में कुंजू श्रौर चंचलो की प्रतिध्वनि है, जिसमें चंचलो कहती है कि वह किस प्रकार कपड़े धोए जा रही है श्रौर रोए जा रही है। 'मेरा देस' (मगधूलिः पृष्ठ २६) में आप ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जो लोक-गीतों के बहुत अनुरूप दृष्टिगत होती है। नभ में छाये हुए श्वेत मेघों को हरी घास पर चलते हुए मेमनों की भांति दिखाया गया है। लोक-भावना स्पष्ट है पर इसके साथ ही इसमें सशक्त व्यक्तिगत विवेचन भी है जो यश की गहरी देशभक्ति को प्रकट करता है। इन्हें इसे छोड़ किसी भी दूसरी वस्तु की आवश्यकता नहीं कि इनकी (हृदय की) आंखों में इनका देश सदैव जीवित रहे।

ऐसी बात नहीं कि यश में किसी दृश्य का निरूपण करने श्रथवा किसी घटना का वर्णन करने की क्षमता नहीं। पर इतना जरूर है कि इनके विषय-वस्तु के विर्वहण में स्थिरता नहीं है; यह छितराया हुश्रा श्रौर श्रावेशपूर्ण होता है। इसके दो उदाहरण 'बसन्त' श्रौर 'मेला' हैं। वसंत का वर्णन श्रत्युत्तम है, जिसमें गोरी प्रिय मिलन तथा एक गजरा खरीदने की धुन में तन मन की सुध भूल गई है। यह उत्सव का समय है। प्रस्तुत कविता में लय-गति है तथा गोरी की उल्लासपूर्ण मनःस्थिति का बड़ी कुशलता

से वर्णन किया गया है तथा पीले परिधान में एक सुन्दरी की कल्पना सृष्टि, जो दूर से 'गुट्टे' के फूल जैसी दिखाई देती है, इसके आकार में भली भांति गुंथी हुई है। उपमाएं भावानुरूप हैं तथा इसका चतुर्थ चरण (मगधूलि, पृष्ठ १०) प्रत्यक्षत: अंग्रेज़ी के कवि वर्ड्ज़वर्थ की कविता 'सालिटरी रीपर' से प्रेरित है, जिसे स्थानीय वातावरण तथा एक आख्यान के सांचे में ढाला गया है। पर यह सब होते हुए भी यह कविता अपूर्ण है। एक विशेष स्थिति के बाद यश के भाव पूर्ववत न रह कर नीरस हो जाते हैं और एकाएक रुक जाते हैं। प्रस्तुत गीत अपने आकार-प्रकार में एक सुन्दर गीत है परन्तु फिर भी इससे एक परिष्कृत और संपूर्ण रचना होने का आभास नहीं मिलता। एक उत्तम रचना होते हुए भी यह एक खण्डित अंश सा प्रतीत होती है।

'मेला' भी एक ऐसा ही विलक्षण टुकड़ा है, क्योंकि 'बसंत' की भांति यह भी संपूर्ण और परिष्कृत नहीं है, इसका अंत भी आकस्मिक और असंतोषप्रद है। परन्तु पहली बार पढ़ने पर, और विशेषत: जब इसे यश के मुंह से सुना जाए, तो ऐसा आभास शायद ही होता है।

इसके भाव भी 'बसंत' के अनुरूप हैं। परन्तु इसकी कल्पना सृष्टि अधिक अन्तर्ग्रस्त तथा जटिल है। कलात्मकता की दृष्टि से यह कविता का अभिन्न अंग है। देहाती मेले का मनोहारी चित्रण अपूर्व कौशल तथा बहुमुखी प्रतिभा द्वारा किया गया है और यह पूर्णतया प्रामाणिक है। उपमाएं उपयुक्त हैं तथा स्थानीयता का अंकन अथवा स्थानीय इतिहास और स्थानीय युवकों के निर्देश, जो कि वीरता की मदिरा में मस्त हैं, कविता के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करते हैं। डोगरी में शृंगारिक सौंदर्य पूर्ण कविताओं की संख्या अधिक नहीं है। अलमस्त, किशन समैलपुरी और यश ने भी कुछ कविताएं लिखी हैं और निश्चय ही मेला भी एक ऐसी ही रचना

है। अपने सौन्दर्य द्वारा यह मन में एक ताज़गी छोड़ जाती है पर मन चाहता है कि इसका अंत वैसा न हो जैसा कि हुआ है।

यद्यपि यश की कविता के दो विशिष्ट लक्षण—देशभक्ति—अपनी धरती तथा इसके लोगों के प्रति प्यार—तथा आपका सौंदर्य-प्रेम हैं जो आप के गीतों में अभिव्यक्त हुए हैं। यश की कविता कभी कभी इन सीमाओं को पार करके लेखकों के हित के लिये चल रहे विश्वव्यापी आन्दोलन तथा विश्व-शान्ति की स्थापना की दिशा में उनके सक्रिय योगदान का अंग बन जाती है। यश की कविता में यह प्रभाव अस्थायी था परन्तु इसके द्वारा हमें इनकी दो उत्कृष्ट रचनाएं प्राप्त हुई हैं: 'अमन' (शान्ति), जो 'पीस काऊंसिल' के आह्वान की प्रेरणा से लिखी गई थी तथा 'मेरे साथी'। इस दिशा में यश सभी राष्ट्रीय अवरोधों को पीछे छोड़ गये तथा अपनी कविता को वस्तुतः अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया, क्योंकि आपके साथी एक विशेष देश तक ही सीमित नहीं हैं अपितु संसार के सभी भागों में विद्यमान हैं—कश्मीर के 'महजूर', जम्मू के 'शास्त्री' तथा तुर्की के 'नाज़िम' आदि। आप इस बात को समझते हैं कि ये लेखक भी आप ही की भांति अपनी कृतियों में मानवता की भावनाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।

यश महोदय ने प्रो० रामनाथ शास्त्री से बहुत कुछ सीखा है तथा यश के भाव, भाषा तथा शैली पर पड़ा उनका प्रभाव उल्लेखनीय है। परन्तु यश में दूसरों के विचार लेकर उन्हें अपना कर उन्हें मौलिक जैसा बना देने की क्षमता है। आपकी भाषा बीच बीच में बच्चन और दिनेश की हिन्दी कविता से प्रभावित दिखाई देती है। आपकी कविता में स्थायी उड़ान नहीं है तथा आपकी सारी कविताएं एकत्रित करने पर भी एक बड़ी जिल्द का रूप नहीं लेतीं। परन्तु देशभक्ति और गीति-काव्य के क्षेत्र में यश स्वयं अपने में ही एक वर्ग-विशेष हैं।

ओंकारसिंह आवारा (१९२८......) : ओंकार सिंह आवारा का परिचय उनके अपने ही शब्दों में देना उपयुक्त होगा : मैं आवारा जनम जनम दा......'

'मैं जन्म जन्म का आवारा हूं और मेरे पैरों को कहीं भी विश्राम नहीं।' आप सदैव एक भटके हुए राही रहे हैं तथा किसी एक काम वा एक स्थान पर स्थिर रहने में असफल रहे हैं। आपका जन्म १९२८ ई० में ज़िला कांगड़ा (पूर्वी पजाब) के हरसार नामक गांव में हुआ था। आरंभ से ही आपको विरोधी परिस्थितियों का सामना रहा। शैशव में ही आपके पिता का देहान्त हो गया तथा आपकी शिक्षा की व्यवस्था आपके चाचा ने की। देश के विभाजन से आपको एक और आघात पहुंचा और उसके बाद भी ऐसे अनेकों आघात पहुंचे। अपनी करुण दशा का चित्रण, आपके अपने ही शब्दों में, कितता याथातथ्य है :

'पीड़ किन्नी इमार निं होआ
सारी आयु च प्यार निं थोआ'

(सारे जीवन में मुझे एक ही साथी मिला हैं, इसका नाम शारीरिक यातना है, तथा कभी यह शारीरिक व्यथा के नाम से चीन्हा जा सकता है।)

आवारा अपने स्कूल के दिनों से ही साहित्य में रुचि लेने लगे थे तथा उर्दू और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों से भली भांति परिचित हो चुके थे। विभाजन से पूर्व जब आप डी. ए. वी. कालिज के छात्र थे, आपने अपनी पहली कविता 'राष्ट्र की उन्नति का रहस्य' लिखी जो 'आर्यजगत' में प्रकाशित हुई। उस समय आवारा 'सैनिक गुलेरी' थे। विभाजन के उपरान्त आपको एक से दूसरे स्थान तथा एक वृत्ति से दूसरी वृत्ति के लिये दौड़ - धूप करनी पड़ी। विवाह से भी कोई स्थिरता न आ सकी तथा

आपको धर्मसाला में पुनर्वास मंत्रालय में नौकरी मिल गई। आपका वास्तविक कवि-जीवन यहां से आरंभ हुआ। आपकी रचनाएं स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

......

परन्तु आपको डोगरी में लिखने की प्रेरणा अपने मित्र योगेन्द्रनाथ कपूर से मिली। कुछ समय तक 'डोगरा देश' के सम्पादक के रूप में काम करने के बाद आप अपने ही गांव में अध्यापक नियुक्त हुए। पर आप वहां पर भी न टिक सके। आप जम्मू आ गये तथा एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापन कार्य करने लगे।

आवारा ने जीवन को बड़े पास से देखा है तथा आप जानते हैं कि आर्थिक संकट से आक्रान्त होने का क्या अर्थ होता है। इस यन्त्रणा से आपने बहुत कुछ सीखा है और इससे इनमें परिपक्वता आई है तथा करुणा और ज्ञान का संचार हुआ है। आप जानते हैं कि 'जरूरत' किस चीज़ का नाम है, भूख और दारिद्रय क्या होते हैं। और इन दोनों अदमनीय शक्तियों के थपेडे खाकर अच्छे आदमी भी बुरे बन जाते हैं। लोग अपनी श्रेष्ठता तथा धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों को खो देते हैं। इस पर भी आपकी दृष्टि कलुषित नहीं हुई, क्योंकि आप जानते हैं कि जब तक इस समाज में आर्थिक विषमताएं विद्यमान हैं ऐसी दोषपूर्ण बातें होना अनिवार्य है। आप की प्रसिद्ध कविता 'चोर' का यही वर्ण्य-विषय है। रात अंधेरी तथा मौन है, केवल हवा की सरसराहट या कुत्तों के भौंकने की आवाज़ सुनाई दे रही है। सरदी है तथा सभी लोग सोए हुए हैं। यदि ऐसी रात में भी कोई बाहिर निकला है तो निश्चय ही वह किसी भयंकर आवश्यकता के द्वारा बाहिर धकेला गया है। चोर को मालूम है कि चोरी करना पाप है और ऐसा करने से मरना कहीं अच्छा है। वह अपनी ही पदचाप से चौंक जाता है तथा कभी कभी परमात्मा की

मूर्ति उसकी आंखों के सन्मुख उभर आती है। भूख और निर्धनता उसे इस दिशा की ओर धकेल रहे हैं। उसका इकलौता बेटा बीमार है और उसके पास कोई पैसा नहीं है। क्षुधा-पीडित समाज का ऐसे पापों से आक्रान्त होना अवश्यम्भावी है और अपराधों की संख्या में बृद्धि होना निश्चित है। आवश्यकता अपनी पूर्ति के लिये नये मार्ग सुझाती है। वैयक्तिक बात को लेकर आवारा उसका व्यापकीकरण करते हैं तथा घोषणा करते हैं :

चोरें दी ऐ मां भुख, उसी नि मारया
चोरें मजबूरें गी जे फांसिया बी चाड़या''

''चोरी का मूल कारण भूख है। जब तक उसे शान्त नहीं किया जाता तब तक अपराधों का अन्त कदापि नहीं होगा, भले ही चोर को सूली पर क्यों न चढ़ा दिया जाए।'' इस चित्रण में बात की पूरी परख है तथा समाज के लिए निर्णय देने से बचने की इच्छा है जो बलात् अपराधी घोषित कर दिये गये हैं। तारा समैलपुरी ने भी ठीक ऐसी ही बात कही है : 'जित्ती लैन्दा मानू मारके जंग'......(आदमी युद्ध करके शत्रु पर विजयी होता है पर वह भी आवश्यकताओं और भूख के द्वारा परास्त कर दिया जाता है।)

'चोर' में वर्णन सजीव है तथा आवारा रात के अन्धकारमय वातावरण का सृजन करने में सफल हुए हैं, जिसमें 'अपराध' किये जाते हैं। आवारा ने चोर की मनोदशा, उसके भय, आत्मा द्वारा की जाने वाली प्रतारणा तथा उसकी उस विकट आवश्यकता का, जिसके द्वारा उसे इस दुर्भाग्यपूर्ण काम की ओर उन्मुख होना पड़ा है, विषय-परक होते हुए भी समवेदनात्मक चित्रण किया है। आवारा एक सामाजिक कवि हैं। आप देखते हैं कि यहां सभी

कुछ पैसे से होता है। यदि गांठ में धन हो तो मान, प्रतिष्ठा, सुख सुविधाएं सब प्राप्त हो जाते हैं। पैसा सब कुछ खरीद सकता है, यहां तक कि एक जवान स्त्री की मर्यादा, माताओं का वात्सल्य तथा सामान्य लोगों क इज्जत तक खरीदी जा सकती है। शोषण कोई न कोई रूप धारण कर के उन्नति करता जा रहा है। पुजारी को देखिये, जो परमात्मा तथा धर्म के पवित्र नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि कर रहा है; उधर वह मोटा 'लाला' (साहूकार) है जो निर्धन लोगों का शोषण करता है तथा 'काला बाज़ार' में उन्नति कर रहा है। यह आवारा के 'बाज़ार' का वर्ण्य-विषय है। इसमें धनवानों और निर्धनों, अच्छा भोजन पाने वालों और क्षुधापीडितों, बहुमूल्य वेशभूषा में सजी-धजी स्त्रियों तथा उन लोगों के वैषम्य का चित्रण किया गया है जिनके पास तन की नग्नता को ढांपने के लिये भी कुछ नहीं है। मज़दूरों के पास सिर छिपाने को भी जगह नहीं है और धनवान् आनंद मना रहे हैं। अपनी सामान्य आवश्यकताएं पूरी करने के लिये एक कवि अपने श्रेष्ठतम गीतों तथा कलाकार अपनी कला को बेच रहा है। ऐसा शोषण तथा इस प्रकार का कारोबार कब तक चलेगा? 'बाज़ार' की कल्पना-सृष्टि का चित्रण बड़ी कुशलता और ईमानदारी के साथ किया गया है। परन्तु कवि हतोत्साह नहीं होता है। इस सब का भी कोई न कोई उपाय अवश्य किया जा सकता है। लोगों को अपनी तथा अपने हितों की रक्षा करनी चाहिये। उन्हें निरंकुशता तथा दमन-नीति पर चलने वाले शासन को बदल कर एक नए समाज का निर्माण करना है, जहां जीवन जीने योग्य हो।

"जुलमां दा मुख परती ओड़ो, नमां समाज बनाओ, उठ्ठो!"
(अत्याचारों का मुंह मोड़ दो, तथा उठो और एक नये समाज का निर्माण करो।)

आपकी 'आवारा' एक रोमेंटिक रचना है, जिसमें आदर्शों की

गवेषणा तथा साहसपूर्ण कार्यों की खोज है; कविता में भटकते रहने की पिपासा है, जिस से हमें अंग्रेज़ी कविता 'वाण्डर थर्स्ट' का स्मरण हो आता है। पर केवल आवारा महोदय वाली रचना 'आवारा' में अभीष्ट क्षेत्र अपेक्षतया विस्तृत है; यह कविता प्यार और रोमांस तथा कभी स्थिर होकर कहीं रुक जाने की इच्छा को समोए हुए है, परन्तु उसे असीम मार्ग की भांति, सुन्दर नयनों तथा लाल चूड़ियों वाली कलाइयों की ओर ध्यान दिये बिना बढ़ते ही जाना चाहिये, यद्यपि इन्हें देख कर इसके पांव डगमगाने लगते हैं। वर्णन, उपमाओं तथा शब्दों की लय से आवारा की मानसिक उत्कण्ठा तथा इसके साथ ही भटकने की, कभी शान्त न होने वाली, अदम्य आकांक्षा व्यक्त होती है। भले ही आवारा विश्राम करना चाहें पर इनकी यह इच्छा अदम्य है—

"नदी के दोनों तट परस्पर मिलने के लिए यत्नशील हैं परन्तु नदी बहती चली जा रही है। मुझे चलते रहने का वरदान मिला है; मेरे पांव कभी नहीं रुकते।"*

आपकी अन्य श्रेष्ठ कविताएं 'पैंछी', 'पैंछी से', तथा 'धर्मसाला की याद' हैं। आवारा की कविता चिंतन-प्रधान है। यह पढ़नें किंचित् भी सरल नहीं है। इसे पूर्णतया समझने के लिए बड़े ध्यान से पढ़ना पड़ता है क्योंकि आवारा की शैली तथा दृष्टिकोण में डोगरी के अन्य कवियों से एक निजी विशिष्टता है। अन्य डोगरी कवियों से आपकी पदरचना भिन्न है तथा कहीं कहीं आपकी वाक्य-रचना में कांगड़ा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। जैसे—'ठोकरां दी मूर्ति', "आपने गै पैरें' आदि। कहीं कहीं चिन्तन तत्व इतना प्रबल हो गया है कि वह आप के संगीत तत्व पर भी छा गया है। परन्तु आपके "अश्रू" में इन दोनों तत्वों का उत्तम सामंजस्य हुआ है।

---

*मगधूलि : सम्पादक पं० शम्भुनाथ, पृष्ठ ४५-४७

आवारा ने यंत्रणा और पीड़ा को झेला है तथा आपकी कविता में इसका बार-बार उल्लेख हुआ है। यह पीड़ा, जहां आपको दूसरों के प्रति समवेदना तथा करुणा तक से आप्यायित कर देती है वहां इनमें आत्म-ग्लानि का भाव उत्पन्न नहीं करती। इनमें यातनाओं को सहन करने का साहस है, यद्यपि इसके द्वारा अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव के प्रति आप सचेत हैं। इससे कभी कभी इनमें दुर्बलता आ जाती है तथा आप चीख उठते हैं—

'पीड़ किन्नी इमार निं होआ
सारी आयु च प्यार निं थोआ'

(पीड़ा का कोई अन्त नहीं तथा जीवन भर मुझे प्रेम नहीं मिल सका।)

परन्तु पीडा को आप अपने अस्तित्व का एक अंग मानते हैं तथा इसे अपनी विजय का प्रतीक समझते हैं। आप साहस नहीं छोड़ते और न ही आप अपने स्वात्माभिमान को खोना चाहते हैं। अब आप पीड़ा और यातना सहने के आदी हो गये हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि आप घनी यंत्रणा के तीव्रतम आघात प्रतिदिन सहते हैं।

इसका परिणाम यह हुआ है कि आवारा का दृष्टिकोण विस्तृत हो गया है। आप कला के महल के हाथी-दांत के बने उस मीनार से बाहर निकल आये हैं जहां अनेकों कवि अपनी आहत अनुभूतियों को सान्त्वना देने के लिये शरण लेते हैं। आवारा के व्यक्तित्व का यह पक्ष उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि यह सृजनात्मक है। इस यन्त्रणा ने आपकी सृजनात्मक मनःशक्ति के द्वार खोल दिये हैं तथा आपको भावुकता-भरी रोमेंटिक वाणी बोलने से बचा लिया है—

'किश रोन्दे गये बहारें गी, भुल्ले बिसरे दे प्यारें गी,
जिन्दगी जेड़े नि जी सकदे ओ गिनदे न चन्न तारेंगी।'

(कुछ लोग बीते हुए सुखों को याद करके रोते हैं तथा अन्य भूले - बिसरे प्यार पर आंसू बहाते हैं । जो जीवन के संघर्ष नहीं झेल सकते वे केवल चांद तारे ही गिनते रहते हैं।)

इस उक्ति से साहस और दृढ़ - संकल्प सूचित होता है । परन्तु आवारा को अपने ऊपर पड़े इस यंत्रणा के कठोर प्रभाव को मुलायम करना पड़ता है, जो किसी न किसी प्रकार इनकी कविता में उभर आता है: और कहीं कहीं आप को अपने में तथा दूसरों में भावुकता का संचार करने के तीव्र प्रलोभन से जूझना पड़ता है, जो भाग्य के क्रूर थपेड़ों से इन्हीं की भांति आहत हो चुके हैं। देखिये : मगधूलि, पृष्ठ २८-१४।)

केहरसिंह मधुकर (१९२९.........) : इस शताब्दी के पांचवें दशक में डोगरी कविता के दृष्टिकोण, तथा भावक्षेत्र को विस्तृत करने का कुछ कुछ श्रेय केहरसिंह मधुकर को प्राप्त है। आप का जन्म १९२९ में गुढ़ा सलाथियां के एक सैनिक - अधिकारी के सम्पन्न परिवार में हुआ था। यह गांव राजपूतों का गढ़ था, विशेषत: राजभक्त राजपूतों का । आपके पिता स्वयं एक राजभक्त व्यक्ति थे। तब मधुकर का विवाह एक प्रतिष्ठित सैनिक अधिकारी की कन्या के साथ हुआ । परिवार में इकलौता पुत्र होने के कारण आपको अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियों का अतिरिक्त स्नेह प्राप्त हुआ । इस ने आपकी मन:स्थितियों तथा आपकी प्रकृति पर अतिशय प्रभाव छोड़ा। परन्तु आप के दृष्टिकोण में अपने पूर्वजों की राजभक्तिपूर्ण परम्पराओं का खण्डन है। कवि के रूप में आप एक क्रान्तिकारी हैं।

१९४० तथा १९५० के बीच का दकश डोगरी कविता का देशभक्ति-काल कहा जा सकता है। सभी कवियों ने, लगभग एक स्वर होकर, डोगरी, डुग्गर तथा डोगरों की महानता एवं गौरव का गान किया। डोगरा संस्कृति को विघटनकारी तथा साम्प्रदायिक शक्तियों से आतंक उत्पन्न हो गया तथा जम्मू-कश्मीर राज्य पर पाकिस्तान द्वारा आक्रमण किया गया। लोग अपने ही प्रदेश में मस्त थे, वे भारत को अपना देश नहीं समझते थे। इससे संकीर्ण राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा मिल रहा था तथा इस से डोगरा दृष्टि सीमित हो रही थी। ऐसे समय में मधुकर अपना प्रसिद्ध आह्वान लेकर आए—

'देसा गी बनाना ते मिटाना तुन्दे हत्थ ऐ।'*

(देश का निर्माण अथवा विनाश तुम्हारे हाथ में है।) यह आंखें खोलने वाली कविता थी। अपने को संकीर्ण दुनिया में बन्द रखने की जगह उन्हें उन ढांचों को तोड़ना था, देशकी रक्षा करनी थी तथा इसका पूर्णतः नव-निर्माण करना था। पुरु, पृथ्वीराज, मीर क़ासिम, शिवाजी आदि देश के वीरों का यशोगान किया गया तथा राजा आम्भी जयचन्द और मीर जाफर जैसे देशद्रोहियों की निंदा की गई। साम्प्रदायिकता एक फलों का नाश करने वाले कीड़े की तरह देश के प्राणभूत तत्वों को भीतर ही भीतर खाए जा रही थी; देश के निर्माण के लिये इस से संघर्ष करके इसका मूलोच्छेद करना आवश्यक हो गया था।

ऐसा कविता द्वारा तीव्र प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसे जनता तथा कवियों को उनके डुग्गर में से बाहर ला कर उन्हें समूचे देश के धरातल पर ले आने में अपूर्व सफलता मिली।

---

*'मधुकण'

इस के बाद अन्य कवियों ने भी ऐसी कविताएं लिखना आरंभ किया और वे उससे एक पग और आगे निकल गये । विश्व एक इकाई है तथा सारे श्रमिकों को एक होना है । दीनू, दीप तथा यश शर्मा ने विश्व-शान्ति तथा उसके विकास के लिए चल रहे आन्दोलन के साथ अपनी मानसिक घनिष्ठता अभिव्यक्त की । दीप की प्रसिद्ध कविता—'कल हा में कल्ला मेरे साथी नीं गनोत अज्ज,' दीनू की 'यां इद्दर हो यां उद्दर हो,' और यश शर्मा की रचना 'ऐम्नी दी लोड़ ऐ' इस नई विचारधारा से कम प्रभावित नहीं हैं।

मधुकर की कविताएं सर्वप्रथम 'नमीं मिजरां'—डोगरी कविता की नवीन प्रवृत्तियों के संकलन—शीर्षक से प्रकाशित हुई । यह बात नहीं कि मधुकर पूर्णतया विलग हो गए थे । बल्कि मधुकर की पुराने धरातल में गहरी पैठ थी तथा आप पुरानी परंपराओं को आगे बढ़ा रहे थे। मधुकर की महानता का कारण यह भी है कि आपने पुराने धरातल पर खड़े हो कर भी इसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत किया, इसे प्रौढता प्रदान की तथा नये नये प्रयोग किये । 'अपना देस', 'नमें गीत' (नये गीत), 'नमी चेतना' (नई चेतना) इसके प्रमाण हैं। आप हरदत्त, दीनू भाई, समैलपुरी, शास्त्री तथा दीप द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं । परन्तु आपने नई भाव - भूमियों की ओर प्रस्थान किया है जैसा कि आपकी 'ऐम्नी' (शांति) और 'नमां इतहास' (नया इतिहास) शीर्षक रचनाओं से स्पष्ट है। यह बात कम अर्थपूर्ण नहीं है कि आपकी कविताओं के शीर्षकों में बहुधा 'नमीं' 'नमां' (नवीन) शब्द का प्रयोग हुआ है जो उस नवीन भावना का प्रतीक है जो डोगरी साहित्य में आ चुकी थी । मधुकर ने 'नमां' (नवीन) शब्द को एक नया अर्थ दिया है ।

परोक्ष रूप से मधुकर को डोगरी साहित्य में 'गज़ल' को लाने का श्रेय भी प्राप्त है। १९५३ से पूर्व एक प्रकार से राज-

नयिक अस्थिरता थी तथा वर्तमान जगत में राजनीति से जीवन की प्रत्येक धारा प्रभावित थी। कलाकार और कवि इस से प्रभावित होने वालों में अग्रणी होते हैं. परन्तु ये लोग अपनी अनुभूतियों को प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में झिझकते थे। इसका एक दूसरा पहलू भी था : अपने मित्रवर्ग से मधुकर के सम्बन्ध उतने अच्छे नहीं रहे थे जितने कि इससे पूर्व रह चुके थे। गज़ल एक ऐसा माध्यम था जिसके द्वारा ये लोग अपनी राजनैतिक अभिलाषाओं तथा वैयक्तिक अनुभूतिओं को मुखरित कर सकते थे। गजल फारसी तथा उर्दू काव्य का एक ऐसा रूप है जिस का प्रयोग प्रेम और निराशा, रोमांस और पलायन की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिये किया जाता रहा है तथा जिसका प्रत्येक छन्द दूसरे छन्द से पूर्णतः स्वतंत्र होता है। बाहिर से देखने में इसमें छन्दों की परस्पर असम्बद्धता का आभास होता है परन्तु वस्तुतः ये एक संगठित इकाई होती हैं। फिर क्यों न गज़ल ही के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया जाए ? इस दिशा में प्रयोग किये गये और यद्यपि मधुकर सफल गज़लें नहीं लिख सके पर डोगरी कविता में गज़ल का श्रीगणेश हो गया, जिस में शास्त्री, दीप, वेदराही तथा अन्य कवियों ने योगदान दिया। किशन समैलपुरी डोगरी गज़ल में स्वतन्त्र रूप से प्रयोग कर चुके थे, क्योंकि आप उससे पूर्व उर्दू में भी बहुत बड़ी संख्या में गज़लें लिख चुके थे। दीप की गजलों ने अपने आपको प्रचार, वैयक्तिक निराशा अथवा हर्षोन्माद से परिपूर्ण होने से बचाकर इनमें अपनी राजनीतिक तथा वैयक्तिक अनुभूतियों को समन्वित किया।

मधुकर अपनी कविता में कल्पना, अनुभव तथा अनुभूतिओं को एकाकार करते हैं। आप भारत की अन्य भाषाओं की नवीनतम प्रवृत्तियों से सम्पर्क बनाए हुए हैं तथा आपने अपनी डोगरी कविता में उन प्रवृत्तियों का समावेश बहुत सफलता पूर्वक किया

है। 'चरखा' से दिखाई देता है कि मधुकर में एक डोगरा विधवा नारी के जीवन को चरखे के साथ उसके सम्बन्ध द्वारा, चित्रित करने की महनीयता, चिन्तन तथा अनुभूतियां विद्यमान हैं। इसमें मधुकर प्रो० रामनाथ शास्त्री की 'चक्की' शीर्षक रचना से प्रभावित हुए दिखाई देते हैं; परन्तु जहां शास्त्री जी की रचना अधिक विचार-पुष्ट है तथा चिन्तत - प्रधान है वहां मधुकर की रचना अपेक्षत: अधिक भावुकता लिये हुए है। इसमें एक उदासी सी समाई हुई है, परन्तु इसमें निराशा नहीं है, क्यों कि उस विधवा में साहस के साथ अपनी सभी भाग्य - विडम्बनाओं से जूझने का साहस है, ठीक उस प्रकार जैसे उसने मुस्करा कर अपनी सभी खुशियों को स्वीकारा था। सुपरिचित पारिवारिक समस्याओं का निरूपण सहानुभूति-पूर्वक तथा सूझ - बूझ द्वारा किया गया है।

गृहस्थ जीवन की झलक आपकी 'डोली' शीर्षक रचना में भी मिलती है। आयु में बड़ी होती हुई लड़की बढ़ती हुई फसल के समान है तथा उसका मन अजाने तथा नए संसार के प्रति उत्कण्ठा और अविश्वास से भरा रहता है। माता पिता की स्थिति एक किसान जैसी होती है परन्तु विधि-विडम्बना यह होती है कि ये (लड़कियों वाली) फसलें उनके अपने घरों के लिये नहीं होतीं, अपितु तय्यार होने पर उन्हें बाहिर वाले आकर ले जाते हैं। एक बड़ी होती हुई कन्या की स्थिति ठीक उस बढ़ती हुई फसल जैसी है तथा इस में सामंतशाही व्यवस्था की ओर प्रच्छन्न संकेत हैं जब जागीदार लोग किसी प्रकार का परिश्रम किये बिना धरती की उपज को उठा कर ले जाते थे। और क्या आधुनिक विवाह-प्रणाली एक सामन्तशाही संस्था नहीं है? लेकिन यहां उत्सुकतापूर्ण अभिलाषा तथा अज्ञात के लिये रोमांच रहता है। यद्यपि ये सारी बातं अनसुनी नहीं होतीं। एक बेटी को अपने परिवार, अपने घर-बार को दूसरी दुनिया के लिये क्यों छोड़ना पड़ता है तथा किसी अनजानी वस्तु को अपनाना पड़ता है? यह दुविधापूर्ण स्थिति है तथा आशा और भय की मिश्रित

भावनाओं को जन्म देती है। अतः कहारों को अपने पग उठाते समय बड़ा सचेत रहना चाहिये।

मधुकर ने साधारण प्रसंगों को उठाया है परन्तु अपनी दृष्टि के द्वारा आपने इन में नये प्राण भर दिये हैं। आप जानते हैं कि समय में द्रुतगति से परिवर्तन आ रहा है; शोषण के दिन बड़ी शीघ्रता से समाप्त होते जा रहे हैं। शोषण और जनता की दुर्दशा पर आधारित इस दुर्व्यवस्था को बदलने के लिए श्रमिकों का एक मामूली परन्तु सम्मिलित प्रयास पर्याप्त होगा। मधुकर प्रगतिशील कवि हैं, क्योंकि एक विशेषाधिकार - प्राप्त समाज का अग होने के कारण आप किसी समय मुट्ठी - भर लोगों द्वारा किये जाने वाले बहुसंख्यक लोगों के शोषण को देख चुके हैं। परन्तु इन्हों ने यह सब एक भावुक की आंखों से देखा है, इसका अन्त होना आवश्यक है। मानव जाति की एक बहुत बड़ी संख्या उन बैलों के समान है जो जुते रहते हैं तथा जिनकी आंखों पर पट्टी बंधी रहती है ताकि वे कुछ भी न देख सकें तथा न ही वस्तुओं के बीच विभेद कर सकें और अनंत काल तक कड़ा परिश्रम करते चले जाएं तथा दूसरों की सेवा में मग्न रहें। और उनके परिश्रम का लाभ कौन उठाता है? शोषक वर्ग। मनुष्य पशुओं की भांति क्यों सदा ही जुते रहें? जुआ, बैल तथा इन्हें हांकने वाले व्यक्ति के प्रतीकों द्वारा कवि बड़ी चतुरता से व्यक्त करता है कि श्रमिक तथा किसान जुते हुए बैल हैं तथा शोषक इन बैलों के कठिन परिश्रम के बल पर जीने वाले लोग हैं। परन्तु लोगों में सहज-बुद्धि तथा सूझ बूझ है। उन्हें भली प्रकार समझ लेना चाहिये—एक हो कर क्यों न एक आखिरी धक्का लगाएं? 'रूप जुगा दा बदला करदा इक्के पलटा खानां, पलें खिनें दी गल्ल छड़ी हुन, बिन्द क जोर गै लाना* (समय का स्वरूप बदल रहा है और अब एक ही झटके की आवश्यकता है; अब तो कुछ ही पलों

*देखिये : नमियां मिजरां

को बात है, केवल एक मामूली से प्रयास की आवश्यकता है।)
जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मधुकर किसी कविता का आरंभ एक छोटे से प्रतीक से करते हैं परन्तु उसे एक नया मोड़ दे देते हैं। बदली हुई मानवता की नवीन दृष्टि के द्वारा उसका रूप संवारते हैं।

मधुकर को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं हैं, जो इनके पूर्वजों को प्राप्त थे तथा जो अब भी कुछ चुने हुए लोगों को उपलब्ध हैं। आपको ऐसे लोगों से ईर्ष्या नहीं है परन्तु आप एक सामान्य व्यक्ति हैं अतः सभी लोगों के सामूहिक हित की बात करते हैं और महसूस करते हैं कि वे सब भाइयों के समान हैं, जैसा कि आप अपनी रचना 'गरीबी' में कहते हैं—'मनें दी वेदना रस्ते दा प्राण।'

और आप यह भी नहीं भूलते हैं कि शोषकों और पूंजीपतियों ने एक ऐसे इतिहास का निर्माण किया है जो उनके हितों के अनुरूप है तथा जो समाज के वास्तविक निर्माताओं, देश की एकता के हित अपने प्राणों का बलिदान देने वाले मनुष्यों, अपने पतियों से वंचित स्त्रियों तथा अनाथ शिशुओं की अवहेलना करता है। यह उन थोड़े से लोगों का उल्लेख करता है जो प्रजापीडक और आक्रान्ता रह चुके होते हैं।

मधुकर को लगता है कि यह सारा सौरजगत—प्रकृति की शक्तियां—मानवता-विरोधी हैं। इस संसार में अनेकों अन्यायपूर्ण कार्य किये गये हैं तथा उन्हें यहां प्रश्रय मिला है, किन्तु ईश्वर इस सब को एक मूक-दर्शक की भांति देख रहा है: 'अम्बर खड़ोता चुपचाप दिखदा'* और दूसरी ओर प्रकृति (गास) सदैव मानव-जाति के उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं को अवरुद्ध करने में

*मधुकण : कलचरल अकादमी प्रकाशित।

यत्नशील रही हैं। 'मनुखता'—पृष्ठ २० 'मधुकण' लेखक दीनू भाई पन्त) मधुकर हमें 'हार्डी' का स्मरण दिलाते हैं परन्तु मधुकर 'हार्डी' की भांति निराशावादी नहीं हैं; संसार की विरोधी शक्तियों से आपकी दृष्टि तिमिराच्छन्न नहीं हुई है। अपितु आप मानवता को उनके द्वारा दी गई चुनौतियों को स्वीकार करते हैं, क्योंकि मानवता और उसकी शक्तियां कभी भी ध्वस्त नहीं हो सकतीं तथा इसकी सभी कहानियां अमर हैं (मधुकण-पृष्ठ २०)। अतएव अच्छे दिन आ रहे हैं, जब एक नवीन इतिहास लिखा जाएगा, जोकि कतिपय निरंकुश शासकों अथवा शोषकों का न हो कर समूची मानवता, कड़ा परिश्रम करने वाली जनता तथा पीडित मानव-जाति का इतिहास होगा, जो अपनी वेदना और कष्टों के ऊपर काबू पाकर खेतों, कानों तथा कल-कारखानों में अपने कठिन परिश्रम के फलस्वरूप विजयी हो रही है। और जब मानव विरोधी शक्तियों पर काबू पा लेगा तथा प्रकृति की प्रतिकूल शक्तियों को अधिकृत कर लेगा, तब एक नवीन विश्वव्यापी व्यवस्था की स्थापना होगी, जिसमें चन्द्र, नक्षत्र, धरती और आकाश एक सम-तालिक संगीत के रूप में दिखाई पडेंगे—'चन्न, तारे धरत समान इक गीत ऐ।'*

ऐसे हैं कवि मधुकर तथा उनकी कविता। कौन कह सकता है कि डोगरी के कवि नवीन चुनौती-पूर्ण विचारों को एक सशक्त शैली में अभिव्यक्त करने में दूसरे कवियों से पीछे हैं? मधुकर डोगरी कविता को अन्य भाषाओं की कविता के समकक्ष ले आए हैं। किंतु फिर भी मधुकर की भाषा को—जिसके मुहावरे तथा शैली हिन्दी तथा उर्दू के शिल्प से प्रभावित हैं—बृहत्तर सजीवता तथा स्थानीयता का रंग चढ़ाने की आवश्यकता है। कभी कभी इनके भाव इनकी भाषा को दबोच लेते हैं और इस तरह इनके

---

*मधुकण : कल्चरल अकादमी प्रकाशन।

अभिव्यक्ति के माध्यम को क्षति पहुंचाते हैं। मधुकर अब कलात्मक संयम अपनी समृद्ध भावनाओं को नियंत्रित रखने, तथा जिस बात को संक्षेप में कहा जा सकता है, उसे अधिक विस्तार से अभिव्यक्त करने की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं। मधुकर ने अपने कवि-जीवन के अल्पकाल में ही उल्लेखनीय प्रगति कर ली है। आपने कुछ स्वच्छन्द कविताएं तथा ऋतु सम्बन्धी विभिन्न गीतों पर आधारित एक संगीत - रूपक (अथवा जिसे लघु-संगीत-नाटक कहना अधिक उपयुक्त होगा) लिखे हैं। तथापि अपनी इन सफलताओं को प्राप्त करके इन्हें विश्राम नहीं करना है। काव्य-साधना के मार्ग न तो सीधे और न सरल ही हुआ करते हैं, पर मधुकर अवश्य हैं—

'तू शाहीं है परवाज़ है काम तेरा, तेरे सामने आसमां और भी हैं।')

श्यामदत्त 'पराग' (१९२९. . . .) : श्री श्यामदत्त 'पराग' रेडियो कश्मीर में काम कर रहे हैं। वस्तुतः हिन्दी के कवि होते हुए भी आप डोगरी कवियों के संक्रमण - शील उत्साह से प्रभावित हुए बिना न रह सके। आपके वर्ण्य-विषय देशभक्ति तथा शृंगार हैं और आप हिन्दी कविता के आलंकारिक प्रयोगों— कवित्त, छन्द और सवैया के छन्दों-को अपनी डोगरी कविताओं में प्रयुक्त करके अपनी कविता को विभूषित कर रहे हैं। कभी कभी आप उत्सवों पर काव्य-रूपक भी लिखते हैं तथा आपने हिन्दी छन्दों को डोगरी में लोकप्रिय बनाने का प्रयास भी किया है।

वेदपाल दीप (१९२९ . . . .) : दीप डोगरी के प्रज्ञावान कवियों में से हैं। आपका जन्म धर्मट्टों के प्रसिद्ध परिवार में हुआ है। आपने हिन्दी में एम. ए. किया है। आपने उर्दू तथा अंग्रेज़ी का विस्तृत अध्ययन किया है और इसी लिए

आप अपनी रचनाओं में ऐसे उल्लेख करते हैं जो हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी के पाठकों के जाने-पहिचाने होते हैं। दीप ने अपना कवि-जीवन हिन्दी के गीतों से आरंभ किया और आपकी एक लम्बी गीति-रचना को उतनी ही प्रशंसा मिली जितनी मात्रा में इसने समाजगत विरोधी पक्षों में शत्रुता की भावना पैदा की। दीप की लिखी सभी कविताओं में यह रचना सर्वाधिक विवादास्पद है परन्तु इसमें दीप की कविता में पाए जाने वाले सभी गुण विद्यमान हैं। इसमें लय, माधुर्य, सहज प्रवाह-शीलता तथा शारीरिक सौन्दर्य का निरूपण है परन्तु इसमें किसी प्रकार की अपरिपक्वता की नीच भावना नहीं आई है। दीप के प्रारंभिक रोमांस पर आधारित होने के कारण प्रस्तुत कविता में, उस समय इनके द्वारा अनुभव की गई सभी वेदनाओं. प्रसन्नता और रोमांस का चित्रण हुआ है। इस बात का ज्ञान कदाचित् किसी को भी नहीं है कि इस प्रेम में आदान-प्रदान की भावना किस अंश तक विद्यमान थी। किन्तु यह कविता दीप की काव्य-प्रतिभा को एक कवि के रूप में परिष्कृत बनाने में अवश्य ही सहायक हुई थी। कुछ समय बाद दीप ने इसी कविता को डोगरी में रूपान्तरित किया। यह आश्चर्य की बात है कि दीप इसमें मूल के आकर्षण और सौन्दर्य की स्थानपना कैसे कर पाये हैं। दीप ने हिन्दी में कई सुन्दर गीत, कहानियां तथा एकांकी लिखे थे, जिनसे आप को जम्मू में ख्यातिलाभ हुआ था। जुलाई १९४८ में दीप छात्र संघ के अन्य सदस्यों के साथ जम्मू प्रांत के भीतरी इलाकों में गये। इस समय तक दीप को इस बात का भान नहीं हुआ था कि आप को अपनी मातृभूमि डुग्गर तथा इसके निवासियों के साथ कितना प्यार है, जो अपनी सरलता स्पष्टवादिता तथा आतिथ्य सत्कार के स्वभाव के कारण प्रसिद्ध हैं। क्या उनके लिये कुछ करना, उनके लिये लिखना इनका कर्तव्य नहीं? आपने अपने मन से प्रश्न किया, और इस तरह आपने डोगरा धरती की प्रशंसा में कविताएं लिख कर अपने कर्तव्य

का पालन किया। 'डोगरों के विषय में क्या कहा जाना चाहिये, वे सब के साथ सौहार्द से रहते हैं। यदि कोई उनके पथ में कांटे बिखेरता है तो तब भी वे पुष्पमालाओं से उसका अभिनन्दन करते हैं* चमेली के फूलों के से साथ डुग्गर की उपमा अपनी सादगी के कारण आकर्षक बन पड़ी है। छन्द की दृष्टि से प्रस्तुत कविता रामधन की प्रसिद्ध कविता 'हसना खेडना' से स्पष्टत: प्रेरित है। इस कविता में कल्पनासृष्टि की वह दुरूहता नहीं है जिसका विकास दीप की बाद की कविताओं में हुआ है।

आपकी 'बापू दे संगी कपूत' (बापू के संघी कपूत) में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा तथा उसके कार्यकलापों की कड़ी निन्दा की गई है। यह रचना लयताल के गुण तथा शब्द-सौन्दर्य के गुणों से सम्पन्न नहीं है परन्तु इसमें चुभने की शक्ति है। पर इसे दीप की महान् कृति नहीं कहा जा सकता, यद्यपि, जबकि दीप राजनीतिक विषयों पर लिखते आ रहे हैं, दीप की प्रतिभा को एक विवादास्पद कवि के रूप में ढालने की दृष्टि से इस कविता का बड़ा महत्व है।

दीप राजनैतिक व्यक्ति हैं तथा आपका संबन्ध वामपक्षी राजनीति से है। आप महसूस करते हैं कि वास्तविक स्वाधीनता अभी प्राप्त नहीं हुई है। आपके विचार में पूंजीपतियों के बीच संघर्ष चल रहा है। यद्यपि आप अपनी पूर्वरचित कविता 'नमीं आज़ादी'* (नयी स्वाधीनता) में स्वतन्त्रता की देवी को निर्धनों और दलितों की झोंपडियों को आकर देखने के लिये उदबुद्ध करते हैं। बाद में चलकर 'कल्ल हा में कल्ला मेरे साथी निं गनोन अज्ज' (कल मैं अकेले था पर आज मेरे साथियों

---

*जागो डुग्गर।

की संख्या इतनी हो गई है कि मैं उन्हें गिन भी नहीं पा रहा हूं।) कविता एक सुन्दर आकार में गुंथी हुई है तथा इसकी शब्दावली और उपमाओं ने एक ऐसी कल्पना - सृष्टि का विकास किया है जो चिन्तन की प्रचुरता और काव्यगुणों की दृष्टि से समृद्ध है। समुद्र की असंख्य तरंगों, नक्षत्रों की अनन्त संख्या, अनगिनत पत्रों तथा बालु का कणों की भांति आपके साथी भी असंख्य हैं। यह क्रांतिकारी विचारों वाली कविता है तथा इसका विषयवस्तु तथा स्वर चुनौतीपूर्ण है। दीप ने बड़ी निपुणता से इस प्रदेश तथा पंजाब के भौगोलिक निर्देशों का समावेश किया है : जनसमुदाय की भीड़ चढ़ी हुई 'ऊझ' नदी के समान शक्तिशाली है, जिनके सन्मुख खड़ी घास की (अपने विपक्षियों की अनुचित नीतियां) दीवारों का टुकड़े टुकड़े होना निश्चित है।

परन्तु दीप में अकेली राजनीति ही नहीं हैं। प्रतिदिन सामने आने वाली समस्याएं, जीवन की द्रुतगति तथा हड़बड़ी, कभी कभी जीवन की दुःखद तथा वेदनामय अनुभूतियों के मिश्रण के साथ आपकी कविता में प्रतिविम्बित हुई हैं। 'बदली गेई दुनिया यां बदली गे असं' (या तो यह दुनिया बदल गई है या हम ही बदल गये हैं) में सूक्ष्म निरूपण है तथा यह ठोस चित्रों से परिपूर्ण है। यह उन छोटे छोटे साभिप्राय संकेतों से भरी पड़ी है जिसका एक संचित और सामूहिक प्रभाव पड़ता है। इसमें थोड़ा करुणा का पुट भी है। प्रस्तुत कविता में एक ऐसी लड़की का चित्रण है जो संदेहवश अतीत की क्षणिक परछाईयों को पकड़ लेती है। उसकी मानसिक अशांति—क्योंकि वह अपनी किशोरावस्था की अनुभूतियों का विश्लेषण नहीं कर पाती, और न तो वह किसी को प्यार करती है और न ही कोई उसे ही चाहता है, और दिक करने वाली किशोरावस्था तथा आनंदोल्लास से भरे हुए शैशव के बीच का अन्तर—भावुकता तथा सूझ-बूझ के साथ चित्रित हुआ है।

कहीं कहीं इनकी कविता में नैराश्य की भावना आ गई है। दीप थकने वाले नहीं हैं; इनमें अपार उत्साह और जोश है। और फिर भी परिस्थितियां—कटु यथार्थ--आपको आक्रान्त कर लेते हैं। और तब आप अपने और अपने लक्ष्य के प्रति निश्चित नहीं रहते। यह बात आपकी 'बदला ने सिज्जी दी सभ' (बादलों भीगी सांझ) शीर्षक रचना से स्पष्ट हो जाती है। ऐसी स्थिति में आपकी परिस्थितियों की पकड़ शिथिल हो जाती है परन्तु वर्ण्य-विषय और इसके निर्वहण में ऐसा कदाचित् हा होता है।

ऐसी मानसिक स्थिति में व्यक्ति किसी वस्तु अथवा किसो व्यक्ति से घनिष्ठता प्राप्त करना चाहता है। दीप को भी किसी के प्यार की आवश्यकता थी और प्रेम अति तेजस्वी होता है। एक कवयित्री पद्मा से आपकी भेंट हुई। इनके संबंधों में कई उतार चढ़ाव आए; कभी आशा और हर्ष का संचार होता तथा कभी निराशा होती और निरुत्साहित होने का आभास होता। परन्तु इस पर भी प्रेम प्रबल होता गया। ये भाव दीप की प्रसिद्ध ग़ज़ल—'मेरे मने च प्यार इयां गे जिय्यां क हा' (मेरे मन में वही पुराना प्रेम है, वही पुरानी भावनाएं पूर्ववत प्रबल हैं) में अभिव्यक्त हुए हैं।

दीप की विशिष्ट उपलब्धियों में से एक तथा दीप की महानता का कारण यह है कि आपने केवल अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिये नहीं अपितु मानव जाति की अनुभूतियों को विषयतत्परता पूर्वक मुखरित करने के लिये ग़ज़ल को अपना माध्यम बनाया है। डोगरी में ग़ज़ल का आगमन उर्दू से हुआ है; इसका प्रत्येक छन्द दूसरे छन्दों से स्वतन्त्र होता है, जबकि अपने निजी भावों को इन छन्दों में अभिव्यक्त करने के लिये बड़े कला-कौशल और शिल्प-पाटव की आवश्यकता होती है। ग़ज़ल

को आधुनिक समस्याओं का निरूपण करने के लिए, आधुनिक राजनैतिक परिस्थितियों और विचारों के अनुरूप बनाने के लिये माध्यम के रूप में बहुत थोड़े कवियों ने इसका प्रयोग किया है। ऐसा करने से लेखक की अभिवृद्ध कुशलता प्रमाणित होती है। फैज़ अहमद फ़ैज़ तथा कुछ अन्य कवियों के नाम प्रमाणरूप में उद्धृत किये जा सकते हैं। डोगरी में दीप ने ऐसा करने का ही प्रयास किया है और इसमें इन्हें बड़ी मात्रा में सफलता भी मिली है। आपकी ग़ज़ल* (मधुकण, पृष्ठ ४८) में इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है—

मंजिल कुतैं ऐ कुत पासै,
हल्ला नमां ऐ कुन पासै,
ए गल्ल नेई के कुन जित्तग,
दिक्खो के न्यां ऐ कुत पासै।

(इस बात का कोई महत्व नहीं कि विजयी कौन होगा। देखना तो यह है कि न्याय किसके पक्ष में है।)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है दीप राजनीति के दायें बाज़ू से संबध रखते हैं। और यद्यपि आप जानते हैं कि निकट-भविष्य में आपकी लक्ष्य-सिद्धि की कोई सम्भावना नहीं हैं, फिर भी आप यह महसूस करते हैं कि न्य य इन्हीं की ओर है, इस प्रकार सामने, आगे और पीछे देखना और प्रत्येक छन्द में विविध अर्थ भरना और फिर इन सब (छन्दों) में अभिन्नता बनाए रखना वस्तुतः एक उपलब्धि है।

गज़ल ५ (मधुकण पृष्ठ ५०) में दीप अपने आदर्शवाद तथा नवीन व्यवस्था-विषयक अपनी आशा का निर्देश करते हैं। यदि

---

*मधुकण : कल्चरल अकादमी प्रकाशन।

इस बात की कोई आशा रहेगी कि हम एक दिन अपनी मंजिल पर पहुंचेंगे, तो कल्पना कीजिए, इतनी लम्बी और दुषकर यात्राओं के बीच हमारी मनोदशा कैसी होगी ? सांसारिक पक्ष में लगने वाला अर्थ तो स्पष्ट ही है, परन्तु जो कुछ आप कहना चाहते हैं, वह अभिप्राय इसके बीच गहराई में छिपा हुआ है । आप भारी बाधाओं तथा असंख्य वर्षों तक चलने वाले संघर्ष से हतोत्साह नहीं होते । काल तरंगों का रुख बदलने के लिए एक व्यक्ति के जीवन की अवधि में क्या हो सकता है, घंटों, महीनों तथा वर्षों तक का समय इस दिशा में कोई महत्व नहीं रखता ।*
पांचवीं और छठी गजल में इन्हीं विचारों को अधिक विस्तार से चित्रित किया गया है । कितनी ही बार हमें उर्दू के महान् ग़ज़लकारों का स्मरण हो आता है । नई व्यवस्था तथा क्रांति का एक ही भाव इनमें प्रवाहित है और यह इसी के अनुरूप इनकी सारी ग़ज़लों की ढालता है, क्योंकि 'सॉनेट्' की भांति ग़ज़ल भी अपने भाव से पहचानी जाती है, अपनी पद्धति से नहीं । और फिर पद्धति भले ही एक सी रहे, विचार में विविधता रहती है ।

अपनी आत्मतत्वहीन तथा विषय परक ग़ज़लों तक में भी दीप अत्यधिक तत्परता दिखाते हैं । इसके द्वारा आपकी कविताओं में एक विशिष्ट आकर्षण का संचार होता है । गज़ल—५* में मित्रों के घनिष्ठ निर्देश किये गये हैं, क्योंकि आपकी दृष्टि में यदि उनके पास प्रेम और अनुराग की दौलत नहीं है तो उनके पास कुछ भी नहीं । अलबत कुछ ऐसे भी मित्र हैं जो आपको उस मार्ग पर चलने से हतोत्साह करते हैं, जिसे आप ठीक समझते हैं । इसकी पद्धति जटिल अवश्य है । मित्रों से हट कर आपका

---

*वही ।

*मधुकण : कल्जरल अकादमी प्रकाशन ।

विचारप्रवाह अपने देश की ओर उन्मुख होता है तथा वैयक्तिक और अवैयक्तिक विषय का विर्वहण बड़ी क्षमता से किया गया है। और अवैयक्तिक को सार्वजनीनता में विलीन करने में ही काव्य रचना की सफलता उपलब्ध होती है। मानसिक दासता की सभी शृंखलाओं को तोड़ कर (इस संदर्भ में मित्रों का प्रेम तथा सुन्दर स्वप्नों की अभिलाषा) हमने अपनी यात्रा आरंभ की थी। यद्यपि आशा से उत्पन्न मधुर स्वप्न हमें संकेतों से अपनी ओर बुलाते प्रतीत होते हैं।*

दूसरी तथा तीसरी ग़ज़लें भी घनिष्ठतापरक संकेतों से परिपूर्ण हैं—इनकी सरलता, प्रत्यक्षवादिता तथा विचारों की परिपक्वता उल्लेखनीय हैं।

दीप नागरिक वातावरण में रहते हैं और इस कारण से इनकी भाषा भी नागरिक भाषा है। आपके विचार संश्लिष्ट और परिपक्व इसी लिये आपकी भाषा भी आपके विचारों के अनुरूप बन पड़ी है। इसमें दीनू पंत तथा तारा समैलपुरी जैसी सामान्य चलती भाषा वाली अभिव्यक्त नहीं है तथा न ही इसमें शम्भू नाथ और मधुकर वाला शब्द माधुर्य ही है। कभी कभी दीप किसी दूसरे की अपेक्षा रामनाथ शास्त्री के अधिक निकट प्रतीत होते हैं। आपकी कविता को समझने तथा इसका रसा-स्वादन करने के लिए आपकी कविता का सावधानी से अध्ययन करने की आवश्यकता है। प्रायः मूलभाव दूसरी अनुभूतियों पर छाया रहता है और इनका अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का ढंग साहित्यिक है।

दीप ने राजनीति को अपनी कविता से विलग रखने का यत्न किया है परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि आपकी कविता

---

*वही।

राजनीति से परिपूर्ण रहती है। अभी हाल ही में आपने उर्दू काव्य की पद्धति पर कुछ अच्छी ग़ज़लें तथा 'क़िते' तथा हिन्दी काव्य-पद्धति पर 'सवैया' और 'घनाक्षरी' आदि भी लिखे हैं। आपकी घनाक्षरियों में लयात्मकता, अनुप्रास तथा स्वरसामंजस्य तथा शब्द और ध्वनि चित्रों का आकर्षण है जो कि दीप की कविता में एक बिल्कुल नई बात है। परन्तु दीप को डोगरी शब्दावली तथा मुहावरों के ज्ञान को बढ़ाने की आवश्यकता है, क्योंकि कभी कभी डोगरी पर इनकी अधूरी पकड़ के कारण विचारों में अस्पष्टता आ गई है। फिर भी 'लुमुम्बा' की मृत्यु पर लिखी गई कविता, डोगरी भाषा का प्रयोग करने में दीप की कुशलता की परिचायक है, और सशक्त विषय वस्तु, क्रांति पूर्ण उद्रेक तथा गहन कल्पना सृष्टि ने आपकी 'कांगो' पर लिखी गई कविता को सचमुच ही डोगरी कविता की श्रेष्टतम कृति बना दिया है।

श्री परमचन्द प्रेमी (१९२९......) :

श्री परमचन्द प्रेमी ज़िला उधमपुर के रहने वाले हैं। आज कल आप ऊधमपुर की कचहरी में अर्जीनवीसी का धंधा करते हैं। श्री प्रेमी ने डुग्गर के ग्रामीण क्षेत्रों की विभिन्न समस्याओं पर कुछ श्रेष्ठ कविताएं लिखी हैं। आपने देशभक्ति पर भी कुछ कविताएं लिखी हैं तथा नाटक कौर गद्यलेख में भी आपने अपने लेखन-कौशल का अभ्यास किया है।

श्री किश्नूपंत (१९३०......) श्री पंत जिला जम्मू की साम्बा तहसील के सूईयां नामक गांव में पैदा हुए थे और आजकल आप भारतीय सेना में धर्माध्यापक के रूप में काम कर रहे हैं।

आपने हिन्दु-पोराणिक आख्यानों पर आधारित और अपनी मातृभूमि की प्रशंसा में कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं। कभी

कभी आप जन-साधारण तथा उनकी समस्याओं पर भी कविताएं लिखते हैं।

कृष्णदत्त पाधा (१९३१......) कृष्णदत्त आजकल जम्मू रेडियो स्टेशन में काम करते हैं तथा ग्रामीणों के लिये प्रसारित किये जाने वाले तथा हास्य रस के कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेते हैं। आप एक अच्छे अभिनेता हैं, तथा आप डोगरी में कविता लिखते हैं, जिस में हस्यतत्व प्रचुर मात्रा में रहता है। परन्तु यह विशुद्ध हास्य नहीं होता; इसमें गंभीरता तथा करुणा अन्तर्तिहित रहती है। कहीं कहीं आप का हास्य उग्रता धारण कर लेता है तथा सनकीपन की सीमा तक जा पहुंचता है।

कृष्ण दत्त एक प्रगतिशील लेखख हैं। नई व्यवस्था के प्रति आपकी एक निश्चित धारणा है। और जब आप इस युग के विषय में सोचते हैं, जिसका आगमन अभी होना है, तो आप वग्मितापूर्ण स्वर से बोल उठते हैं। जब आप आज कल के संसार की ओर देखते हैं, जहां शासकों के बदल जाने पर भी निर्धन और दलित वर्ग की वास्तविक दशा में कोई परिवर्तन नहीं आता है, अब आप की लेखनी में कटुता आ आती है जो और भी अधिक प्रभावोत्पादक होती है क्यों कि ये अकस्मात् और अप्रत्याशित रूप में प्रकट होती है।

कृष्णदत्त एक मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखते हैं और इसी लिये आप मध्यवर्ग के लोगों की समस्याओं, उनकी आशाओं और उमंगों, उनकी असफलताओं और निराशाओं तथा उनकी स्वभावगत अस्थिरता को समझते हैं। और इन सब बातों का बड़ा आकर्षक और सुन्दर चित्रण करते हैं जिनमें आपकी विशिष्ट मौलिकता रहती है। आपको ऐसी उपमाएं और तुलनाएं प्रिय हैं जो विलकुल विलक्षण हों। आप की लय तथा छन्दोगत त्रुटियों की पूर्ति आपकी सशक्त शैली, व्यावहारिक अभिव्यक्ति तथा प्रौढ हास्य के द्वारा हो जाती है। कृष्णदत्त की कविता में कटाक्ष की

प्रवृत्ति है परन्तु अपने दयार्द्र और समवेदनापूर्ण स्वाभाव के कारण इस में चिड़चिड़ापन नहीं आया है। आपने उर्दू की गज़ल और 'रुबाई' की शैलियों पर भी प्रयोग किये हैं पर ये कला और शिल्प की दृष्टि से इतने सफल नहीं हो सके हैं। आपकी अधिकांश रचनाएं प्रासगिक रुचि की हैं। कृष्णदत्त ने डोगरी में कुछ कहानियां भी लिखी हैं।

मोहनलाल सपोलिया (१९३२ .....) मोहनलाल सपोलिया डोगरी के बड़े होनहार कवियों में से हैं। सपोलिया का जन्म जम्मू से चौबीस मील दूर साम्बा में हुआ था। आप शिक्षा प्राप्त करने में सफल न हो सके। आप साम्बा में विभिन्न अवसरों पर आयोजित कवि-सम्मेलनों को सुनने के लिये जाया करते थे। इसके साथ साथ प्रजा-परिषद के साथ भी आप की सहानुभूति हो गई। इस से आपको अपने विचारों को पद्यबद्ध करने की प्रेरणा मिली। आपने द्विपद और चौपदे लिखने का प्रयोग किया और तब बाद में आप संपूर्ण कविता भी लिखने लगे। साम्बा के निवासी होने के कारण, जहां पर डोगरी अपनी स्फूर्ति के साथ बोली जाती है, रामनाथ शस्त्री, किशन समैलपुरी, दीनू भाई पन्त तथा मधुकर जैसे कवियों के दृष्टान्तों ने आपको भी अपने लिये तथा अपने लोगों के लिए अपनी जन्मप्रांत भाषा में लिखने को उद्यत किया, जिसे वहां के निवासी, अधिक शिक्षा के अभाव में भी, समझ सकते थे। आपकी आरंभिक रचनाओं में कल्पना - तत्व का अभाव होते हुए भी प्रज्वलित भावना तथा आन्दोलनात्मक मनः स्थिति रहती थी।

सपोलिया की कविता दो धाराओं में प्रवाहित है: एक वह जिसमें आप के अति आभ्यन्तरिक, प्रिय विचार और भावनाएं रहती हैं तथा दूसरी वह जिसका जनसाधारण की समस्याओं के साथ सम्बन्ध रहता है। पहले प्रकार की रचनाओं में आप का कल्पना

शीलता का गुण तथा दूसरे प्रकार की रचनाओं में आपकी जन-साधारण के प्रति भक्ति की भावना दृष्टिगत होती है। किसी किसी कविता में ये दोनों धाराएं परस्पर विलीन हो कर एक हो जाती हैं। 'फ़ाका' (भूख) एक ऐसी ही कविता है। यह वही कविता है जिस से काव्यप्रेमियों को सपोलिया की कविता में काव्य-गुणों का भान हुआ था। इस में कल्पना तथा कठोर यथार्थ का सम्मिश्रण है। श्रम से चूर चेतना-तन्तुओं पर भूख किस प्रकार प्रभाव डालती है, तथा उस समय कैसे प्रत्येक वस्तु भोजन के रंग में रंगी हुई दिखाई देती है—इस सब का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। इस में पीड़ा है परन्तु साथ ही बुद्धि-वैचित्र्य भी है। दिन का चावलों से भरे हुए कटोरे के रूप में वर्णन अतिरंजित भले ही दृष्टिगत होता हो, परन्तु इसमें उस मनोदशा की गहरी पकड़ है जिस में उपवास जैसी स्थिति के परिणाम-स्वरूप वही वस्तुएं दिखाई देती हैं जिनकी पेट को आवश्यकता होती हैं और हास्यास्पद परिस्थितियां केवल एक क्षुधार्त व्यक्ति की निराशाको बढ़ाती हैं। वर्णन की अत्यधिक सरलता कला के अभाव को प्रकट नहीं करती वरन् यह सरलता कवि-निर्मित है। इसकी लडखड़ाती हुई लय एक ऐसे व्यक्ति का चित्र उपस्थित करती है जिस के पांव स्थिर नहीं हैं क्यों कि वह अपने आपको नशे में महसूस कर रहा है। भाषा सरल है और शैली व्यासात्मक होते हुए भी अवस्था-विशेष के अनुरूप है।

'मौत ते जवानी' (मृत्यु और यौवन) तथा आऊं बुड्ढा तूं मस्त जवानी' (मैं बूढा हूं और तू मस्त यौवन है) में सपोलिया की उस स्वाभाविक प्रवृत्ति का संकेत मिलता है जिसका सचेतन लक्ष्य उस प्रतिपक्षता का निरूपण करना होता है जो जीवन तथा इसकी विभिन्न परिस्थितियों में लक्षित होती है। कवि मन्त्रमुग्ध करने वाले विविध चित्रों की सृष्टि करता है जो मृत्यु और जीवन, यौवन और जरा के बीच की दो सीमाओं की विषमता को सिद्ध करते

हैं । प्रकाश, प्रमोद और हर्ष तथा रचनात्मक कुशलता का नाम जीवन है; मृत्यु अंधकार, कष्ट, दुर्भाग्य तथा समुच्छेदक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है । और इस प्रकार भी मृत्यु सर्वनाशक नहीं है; जीवन इस पर भी संहारक शक्तियों पर विजयी होता है, क्योंकि दुर्व्यवस्था में से ही सुव्यवस्था की स्थापना हो पाती है। सपोलिया 'मौत ते जवानी' में पौराणिक विवरणों, आख्यानों नो तथा ऐतिहासिक इतिवृत्तों के द्वारा अपने तर्क को पुष्ट करते हैं, यह प्रमाणित करने के लिये कि जीवन का सूर्य सदा काल - निशा को विदीर्ण करता रहा है, अतः जीवन को अपने प्रेम और रोमांस के आकर्षण और सौन्दर्य के साथ सतत गतिमान रहना चाहिये। अभिमन्यु, रानी झांसी तथा हीर रांझा, जिन्हों ने काल की शक्तियों का सामना किया, जीवन के अमरत्व को प्रमाणित करते हैं ।

प्रस्तुत कविता ने सपोलिया की धारणाओं को मुखरित किया है परन्तु इस में सम्बद्ध-सप्राणता की तीव्रता का अभाव है। सपोलिया अपने विचारों को एक सुव्यवस्थित ढांचे में एकाकार करने में पूर्णतया समर्थ न होते हुए भी उन्हें आलेख्यपट पर बिखेर देते हैं। यह कविता रंगों और बनतों का एक ऐसा खेल दिखाई देती है जिस में उन सब का समुचित संघटन नहीं किया जा सका है।

'आऊं बुड्डा तूं मस्त जवानी' में जरा और यौवन की पारस्परिक विषमता का विवेचन किया गया है। बुढापे में यौवन सर्वदा ग्रस लिया जाता है किन्तु वार्द्धक्य कदापि अपने आप पर संतुष्ट नहीं होता, यह सदा अपने उस अतीत, उन दिनों के प्रति मोह से परिपूर्ण रहता है जो अब बीत चुके हैं, पर जो यौवन के इन्द्रधनुषी वर्णों वाले दिनों के रूप में कभी विद्यमान थे । यौवन और वार्द्धक्य के बीच की यह प्रतिपक्षता यद्यपि प्रस्तुत परिस्थिति में प्रखरता और व्यंग्य का संचार करने में सहायक हुई है, इसमें

तीखापन ले आई है । जीवन को हर्ष और प्रमोद की कामना रहती है और ये केवल यौवन में ही उपलब्ध हो सकते हैं । बुढ़ापा एक मुरझाये हुए फूल, झड़े हुए पत्ते के समान है । यहां से उन सब वस्तुओं के अन्त का आरंभ होता है जो कभी यौवन का एक आकर्षक अंग हुआ करती थीं । आकर्षण और प्रमोद का दूसरा नाम यौवन है । यौवन के वर्णन में, फूलों, चहचहाते हुए पक्षियों की कल्पना पूर्णतः उपयुक्त और अनुरूप है । अस्तोन्मुख चन्द्रमा, धुएं की क्षीण सी रेखा जीवन की अधोमुखी प्रवृत्ति की परचायक हैं । तरंगमय लय-गति, हर्षोल्लास और खिन्नता, प्रसन्नता और दुःख की द्विविध मनोदशा को प्रकट करती हैं । स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह के देहावसान पर एक प्रशस्ति छाप कर सपोलिया ने एक सनसनी सी पैदा कर दी थी । इससे प्रगतिवादियों को उतना ही आघात पहुंचा था जितनी कि इसकी अनुभूतियों की प्रचण्डता तथा इसके छन्द की अजस्र प्रवाह शीलता आश्चर्यचकित करने वाली थी । परन्तु इसके द्वारा राष्ट्रीय नेताओं के विरुद्ध दुर्वचनमय स्वर तथा अभद्र आक्षेपों से सपोलिया की बुद्धिगत अपरिपक्वता प्रदर्शित हुई है जिनमें राजनैतिक घटनाओं को उनके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने की क्षमता नहीं है । और इसके अतिरिक्त एक ऐसे उद्देश्य के लिये स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह के नाम का प्रयोग स्वस्थ रुचियों के विरुद्ध था जिसमें किंचित् मात्र भी शिक्षाप्रद होने की संभावना नहीं थी । इसमें अपने लिए सस्ती प्रशंसा प्राप्ति के लिए सपोलिया के भीतर का प्रचारक प्रकट हो गया है । क्योंकि स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह न तो साम्प्रदायिकता और वर्गवाद का प्रतिनिधित्व करते थे और न ही उनका शासन ही निर्दोष था । नेहरू तथा अन्य नेताओं पर सपोलिया के आक्षेप भी उतने ही अवांछ्य हैं ।

और सपोलिया को शीघ्र ही इसका आभास हो गया । अब इन्होंने एक और लम्बी कविता प्रकाशित की । अब कि इसमें उन प्रजापीडकों का चित्रण किया गया था जिन्होंने निर्धनों तथा

दलितों के तथाकथित हितैषी बनने का स्वांग रचा हुआ है। यह कविता लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व दीनू द्वारा लिखी कविता 'उठ मजूरा जाग किसाना, तेरा वेला आया ई' से प्रेरणा पा कर लिखी गई प्रतीत होती है। पर केवल दीनू ही अपने लेखन में अधिक निश्चित और सुस्थित रह सके हैं तथा राजनैतिक आन्दोलन का मूल्यांकन करने में अधिक परिपक्व सिद्ध हुए हैं। सपोलिया ने केवल आजकल के नेताओं के विरुद्ध चल रहे एक विरोधी - वर्ग के संघर्ष का प्रतिनिधित्व किया है जो वास्तविक और अपेक्षाकृत कम वास्तविक दोनों है।

परन्तु सपोलिया में बड़ी तेजी से विकास हो रहा है। अनियंत्रित स्वभाव अब कदाचित् ही प्रकट होता है, यद्यपि छन्द तथा अन्य शिल्पगत विशेषताओं का अभी तक पूर्णतया विकास नहीं हो पाया है। प्रेम - गीत कभी कभी अपरिष्कृत रुचि को प्रकट करते हैं तथा आपकी कुछ अन्य कविताओं में खलनायकत्व की छाप दृष्टिगत होती है। हां सपोलिया एक परिश्रमी लेखक अवश्य हैं। आप त्रुटियों से घबराते नहीं और सदैव कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं। आपकी शैली विकसित हुई है तथा आपके वाक्य-विन्यास में आपकी जन्म-भूमि की प्रखरता है। अलबत सपोलिया को अपनी भावनाओं के प्रवाह में बह जाने की प्रवृत्ति को दबाना चाहिये तथा अपने विचारों को संगठित तथा सामग्री को योजनाबद्ध करना चाहिये, जिसके भीतर श्रेष्ठतर काव्यगुणों के तत्व विद्यमान हों; और तब आपकी कविता कतिपय सुन्दर किन्तु टूटे फूटे टुकड़ों जैसी दिखाई न देकर उन सब के संयोग से निर्मित एक सप्राण समग्रता लेकर प्रकट होगी।

श्री द्वारकानाथ मंगी (१९३३ ....) :

श्री द्वारकानाथ मंगी इन दिनों श्री रणवीर गवर्नमेंट प्रेस जम्मू में

काम कर रहे हैं। आपने कुछ अच्छी कविताएं लिखी हैं, यद्यपि उन में से अभी तक कोई भी प्रकाशित नहीं हो सकी है।

रणधीरसिंह (१६३६ . . .) : रणधीरसिंह किसी समय डोगरी के साहित्य क्षेत्र में उभरते हुए श्रेष्ठतम कवियों में से एक समझे जाते थे। चिन्तनशील स्वभाव तथा शैलीगत परिपक्वता इन्हें छोटी आयु में ही प्राप्त हो गई थी। रणधीरसिंह ने मन की मौज में आकर बी. ए. की उपाधि प्राप्त किये बिना ही कालिज की पढ़ाई छोड़ दी। आपकी प्रवृत्ति, जो रोमांस की भूमियों में और अमूर्त भावनाओं के क्षेत्रों में भ्रमण करने की ओर अधिक थी, आपको प्रयोगशालाओं में परमाणु सिद्धान्तों तथा गति और प्रकाश के प्रयोगों में दत्त-चित नहीं होने देती थी। जैसो कैसी भी रही हो, इनकी यह कल्पना सृष्टि उन ऊंचाईयों में उड़ान भरती है जिस के लिये गत समय के लोग शायद लालायित तो रहे होंगे किन्तु इस दिशा में प्रयास करने का साहस नहीं कर सके। रणधीर की कल्पना की यही साहसिकता रणधीर की कविता और उसकी अभिव्यक्ति को विलक्षणता प्रदान करती है। आपने डोगरी कवियों का पूरा अध्ययन किया है। अपनी चिंतन - प्रधान कविता लिखने में आप मधुकर से प्रभावित हुए हैं तथा जहां तक शैली का सम्बन्ध है, आपको उर्दू साहित्य तथा कुछ मात्रा में अंग्रेज़ी साहित्य का अच्छा ज्ञान है। इस लिये इनमें भावों की कमी नहीं है, वास्तव में इनकी भरमार है। परन्तु आपकी दृष्टि में अभी तक परिपक्वता नहीं आई है तथा अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम, भाषा और छन्द योजना पर आपकी पकड़ स्थिर नहीं हो पाई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आपके भावों की उत्कृष्टता, कल्पना की उड़ान हमें चकित कर देती है। यद्यपि निरतर इस बात का आभास भी होता रहता है कि रणधीर उन सब में समुचित सम्प्रेषणीयता लाने में समर्थ नहीं हो पाए हैं। उपमाओं तथा रूपकों, ध्वनिचित्रों—वस्तुतः समूची कल्पना - सृष्टि में—

कल्पनागत पकड़ दृष्टिगत होती है, परन्तु इनमें शिल्पविषयक कौशल अपेक्षित मात्रा में विद्यमान नहीं है। इसे देखकर ऐसा लगता है जैसे रणधीर के पास मधुर रंगों तथा अभिनव विचारों की एक डिबिया तो हो परन्तु उसके रंग और भाव सुगठित न हो पाए हों, जिसमें समुचित संगति और साहचर्य न हो, रंग योजना का अभाव हो। आपकी शैली की यही बात पाठक को विचार करने पर विवश कर देती है। इस कथन में रणधीर की शैली की उतनी ही प्रशंसा हैं जितनी कि इसकी आलोचना है। 'पंडारे दा घर' से यह दृढोक्ति स्पष्टतः प्रमाणित हो जाती है। रणधीर की कल्पना की उड़ानें उल्लेखनीय हैं, परन्तु आप अपने भावों को समुचित बनत में बुन नहीं पाए है। जीवन तथा 'पंडारों' (एक प्रकार का कीट-विशेष) के जीवन तथा उनके कार्यकलाप की साधारण बातों के विषय में इनके भाव इनकी स्वाभाविक बौद्धिक सम्पनता को प्रकट करते हैं, परन्तु इसके साथ ही विवरणों पर आपके संयम के अभाव का भी आभास होता है। कल्पना - सृष्टि बहुत गहराई तक जा पहुंची है और कहीं कहीं तो इसके कलागत गुण को देखकर आश्चर्य होने लगता है। और यह सब होते हुए भी पाठक का मन (रणधीर की कविता के बीच) अपर्याप्तता की अस्फुट भावना से भर जाता है।

रणधीर को भावों की प्रचुरता तथा उन्हें समुचित ढंग से अभिव्यक्त करने के उपयुक्त साधन के अभाव के विषय में बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। आपका नवीनतम प्रयास, यद्यपि अभी अधूरा है, केवल उपयुक्त माध्यम को अपनाने तथा डोगरी की महत्तर संग्राहकता प्राप्त करने के महत्व को प्रकट करता है। खलील जिब्रान् एक दुरूह कवि हैं। इनका अनुवाद करना एक कठिन काम है तथा जहां तक आपके 'प्रॉफेट' का सम्बन्ध है, यह काम और भी कठिनतर हो जाता है। डोगरी में अभी खलील या इस कोटि के दूसरे कवियों की चिन्तनपूर्ण मनःस्थितियों तथा

गूढ भावों को अभिव्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्दावली नहीं है। यह तथ्य, कि रणधीर ने ऐसे विकट काम में हाथ डाल दिया है, आपके दृढ़ संकल्प और साहस का परिचायक है। स्वभाव की दृष्टि से भी रणधीर इस काम के लिये उपयुक्त हैं, परन्तु यह तो केवल समय ही बताएगा कि इस अपरिपक्व आयु में तथा डोगरी कविता में ऐसी परंपरा के अभाव में आप इस कठिन कार्य को कहां तक पूरा कर पाते हैं। हम तो केवल इस आशा के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं और निगाह रख सकते हैं कि रणधीर अस्पष्टता के नाम पर गूढ होने की प्रवृत्ति को दबाने के लिये कड़ाई बरतेंगे और उन विचारों के बोझिल बन जाने की दिशा में पूरे नियंत्रण से काम लेंगे जिन्हें छिन्नभिन्न होने की सोमा तक बोझ डाले बिना अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

पिछले कुछ समय से रणधीर भारतीय वायुसेना में फ्लाइट लेफ्टिनेंट के रूप में कार्य कर रहे हैं, परन्तु हमें आशा है कि यदि आपने मशीनी पंखों पर उड़ानें आरंभ करदी हैं तो आपने कविता के अमूर्त पंखों' पर उड़ना पूर्णतया बंद नहीं कर दिया होगा।

पद्मा शर्मा (१९४०..,.) : पद्मा दीप अथवा पद्मा शर्मा, जिस नाम से आज कल आपको लोग जानते हैं, डोगरी की एक मात्र कवयित्री हैं। आप केवल इसी लिये प्रसिद्ध नहीं हैं कि आप डोगरी की एकमात्र कवयित्री हैं—यद्यपि आंशिक रूप में यह भी इसका कारण है—वरन् इस लिये कि इनकी कविता में हमें किशोरावस्था की भावनाओं, पीड़ाओं तथा वेदनामय आनंद, इन्द्रधनुषी रंगों के प्यार, जीवन की मायूसियों तथा भग्नाशाओं की झलक मिलती है, जिन्हें आप प्रचुर मात्रा में झेल चुकी हैं। इस सबसे बढ़कर इनकी कविताओं में ऐसी सरलता मिलती है, जो बहुशः इनकी बचपने जैसी विशेषता, कौतूहल और प्रत्यक्षवादिता के कारण मनोहारी लगती हैं। कोमलता और

नारी-लावण्य इसके पाठ को हृदय को गरमा देने वाली अनुभूति बना देता है। आपकी मन को गरमा देने वाली सामग्री की इस विशेषता पर ही अधिक बल देने की आवश्यकता है, क्योंकि जहां आपकी कविता में विचारतत्व अथवा एक परिष्कृत चित्र का निर्माण करने की क्षमता का अभाव दृष्टिगत होता है, या फिर जब कभी आपकी कविता में लय तथा छन्दविषयक त्रुटियां दिखाई देती हैं, तब आपकी अनुभूतियों की यह गरिमा ही एक ऐसा तत्व रह जाता है जिसे श्रोता दूसरे गुणों के अस्फुट होने के बहुत देर बाद तक अपने मन में अनुभव करते हैं।

पद्मा का जन्म एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ है। आप पंडित जयदेव शर्मा, एम. ए. की पुत्री हैं जो संस्कृत के बड़े विद्वान थे। शिक्षा आपको अपने पिता से प्राप्त हुई और प्रारंभिक दुर्भाग्य भी उन्हीं से प्राप्त हुआ। आपके पिता, जोकि मीरपुर में संस्कृत के प्राध्यापक थे, १९४७ में पाकिस्तानी आक्रमण के बीच मारे गये। आप भावुक हैं तथा, चूंकि आपको अपने पिता से प्रेम था, उनकी मृत्यु ने आपको अपने 'स्व' की ओर प्रवृत्त किया। आप और अधिक अन्तर्मुखी, एक कोने में दुबका रहने वाला जीवन व्यतीत करने लगीं। दुर्बल स्वास्थ्य ने और भी कठिनाइयां खड़ी कर दीं। लगभग निर्धनों जैसी परिस्थितियों में तथा घरेलू दुःखों की हालत में व्यक्ति पलयान के लिये किसी वस्तु की ओर उन्मुख होता है। पद्मा अभी बीस वर्ष की नहीं हुई थीं जब आप को 'प्रेम' से प्रेम हो गया। कवि-हृदय वरदान में मिला था, सूक्ष्म निरूपणशील स्वभाव और चिंतन-शील मानसिक प्रवृत्ति थी और इन्हीं परिस्थितियों में आपकी काव्य-प्रतिभा पल्लवित हुई। और 'प्रेम' के साथ प्रेम करने की इस प्रवृत्ति के कारण ही अपने ही जैसे एक 'पक्षी' के साथ आपको प्यार हो गया और जुलाई १९५७ में आप विवाह-सूत्र में बंध गए।

परन्तु इस बात से, आपकी प्रथम रचना कैसे लिखी गई

थी, इस बात पर प्रकाश नहीं पड़ता। एक बार जब आप अपने घर में बैठी हुई थीं, एक भिखारिन ने, जो कुछ विक्षिप्त थी, आपसे पूछा "बुआ, क्या ये ऊचे राजभवनों जैसे भवन तुम्हारे हैं?" प्रश्न उलझाने वाला था परन्तु इस से पद्मा के मन में विचारों का तान्ता सा लग गया और आपने 'राजे दियां मण्डियां' कविता लिखी, जो कई दृष्टियों से अब भी आपकी श्रेष्ठतम रचना है। प्रस्तुत कविता मार्मिक शैली तथा सजीव भाषा तथा सूक्ष्मदर्शिता के कारण महत्वपूर्ण है। इस कविता में पद्मा के विद्रोही मन की झलक मिलती है। आप इसमें उस पतनोन्मुख सामंतशाही संस्थाओं को चुनौती देती हैं, जो मासूम लोगों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचारों तथा प्रपीडन के लिये उत्तरदायी थीं। इस की लय, जो कहीं कहीं तीव्र तथा रुक रुक कर चलती है, बोलचाल की शैली, वे प्रश्न जिनमें करुण उत्तर निहित हैं, इन सब से एक विक्षिप्त व्यक्ति की मनोदशा स्पष्टता पूर्वक चित्रित हुई है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि पद्मा को छोटी उमर में ही संक्षेप में कहने की कला कैसे आ गई है तथा जो, इसके साथ ही, इतनी तीव्रता और अर्थगौरव से परिपुष्ट है। इसमें करुणा है, घनी वेदना और प्रामाणिकता है परन्तु इसमें भावुकता तनिक भी नहीं है। और यही बातें इस कविता की सफलता का मूल कारण हैं। कविता आगे बढ़ती है और पीछे की ओर मुड़ती है, तथा साहचर्य की प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए इसमें भिखारिन के जीवन का धुंधला सा प्रकाश आ जाता है। यदि इसे बाह्य दृष्टि से देखा जाए तो इसमें समुचित सम्बद्धता का अभाव दृष्टिगत होता है, परन्तु यह कहने का ढंग है, क्योंकि इससे मानसिक गति का, विशेषतः एक विक्षिप्त व्यक्ति की मानसिक दशा का, पता चलता है। मन के बीच बातें एक दूसरे के बाद, क्रमबद्ध रूप में, प्रकट नहीं होती हैं और इस प्रकार भिखारिन के मन में क्रूरतापूर्ण कार्यों तथा अपने पति के प्रति उत्कण्ठा और प्रेम की भर्त्सना है, जो जेल में है (अथवा था?)।

वैभव के खोखलेपन तथा राजाओं के तुङ्ग भवनों को चुनौती देने का जहां तक संबंध है प्रस्तुत कविता एक क्रांतिकारी भावना से समृद्ध रचना है; इनकी लाल रंग को ईंटें मज़दूरों के रक्त की प्रतीक हैं और इनके भीतर दीपकों में तेल के रूप में मज़दूरों का खून जलता हुआ प्रतीत होता है। प्रस्तुत कविता में (पद्मा की) पारिवारिक मनोवृत्ति बड़ी तीव्रता से प्रकट हुई है : अपने पति के लिये उत्कण्ठा तथा अपने बच्चों के लिये दया और रोष, जोकि स्वाभाविक है—क्योंकि यह ऐश्वर्य और ठाठबाट ग़रीब मज़दूरों के दुःखों पर आधारित हैं। इसके भीतर की उदासोनता—प्रस्तुत कविता में उस भिखारिन का वर्णन है जो विक्षिप्त है। वह पूरी गंभरिता से प्रश्न पूछ रही है, क्योंकि वह अपने कथन के सत्य होने में तनिक भी संदेह करती प्रतीत नहीं होती—बड़ी प्रभावोत्पादक है। यह हमें प्रभावित करती है, क्योंकि यह उदासोनता वर्ण्य-विषय और उसके निर्वहण में भावुकता का समावेश नहीं होने देती।

यह अकेली कविता ही पद्मा के लिये डोगरी साहित्य में स्थान पा सकती थी परन्तु आपने और भी बहुत सी कविताएं लिखी हैं। आपकी 'इच्छेया' (इच्छा) में किशोरावस्था की भावना प्रबल है, परन्तु पद्मा में शक्ति और दुर्बलता, समझौते तथा प्रतिरोध की भावनाओं का सम्मिश्रण है; क्योंकि जहां यह अपनी उड़ान में नभ को छूकर तारों को, जो इन्हें अपने को सताते हुए प्रतीत होते हैं, तोड़ने के लिये उद्यत हैं, वहीं इसमें निराशाग्रस्त मन का भी चित्रण है, एक ऐसे मन का, जिस में प्रेम के लिये प्रेम भरा हुआ है। आप अपने प्रेम के लक्ष्य-भूत व्यक्ति को भली भांति नहीं जानती हैं पर आप को मालूम है कि आप उससे प्रेम करती हैं। प्रस्तुत कविता प्रतिरोध और निराशा, आश्चर्य और प्रेम की अनेकों तरुवीथियों से गुज़रती हैं। आपके काल्पनिक-प्रेम विषयक निर्देश अति मार्मिक हैं। दूसरे छन्द में

विषय की पकड़ दुर्बल हो गई प्रतीत होती है परन्तु अगले चरण में इनमें पुनः दृढ़ता आ जाती हैं। यदि हम अधिक ध्यानपूर्वक देखें तो इसमें उस उत्तेजित मनोदशा का चित्रण मिलता है जिस में लगता है कि फटी हुई ओढ़नी को उनके काल्पनिक प्रेमी ने फाड़ डाला है।*

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पद्मा को दुःख और पीडा अपने हिस्से से अधिक मात्रा में मिली है। आपने प्रेम के दुःखों और यंत्रणाओं को झेला है जो अन्य शारीरिक अथवा मानसिक यातनाओं से अधिक पीड़ा-जनक होती हैं। प्रेम के विषय में पद्मा पहले ही से एक सचेत कवयित्री हैं। आप की 'बिजोग' (विरह) और 'चम्बे दी डालिया' शीर्षक रचनाओं में हमें विरह-वेदना दृष्टिगत होती है। ये पक्तियां, कि जब मैं अपने प्रिय का स्मरण कर रही होती हूं, यदि कोई तब इन विचारों में बाधा डालता है, तो उससे घृणा करती हुई प्रतीत होती हूं, हमें प्रसिद्ध अंग्रेजी कविता 'सिम्प्टम्स् ऑव लव्' का स्मरण दिलाती हैं। पद्मा ईश्वर का निर्देश करती हैं, जिसका स्मरण करने से सारे दुःख भूल जाते हैं, परन्तु इन्हें इससे प्रसन्नता नहीं मिलेगी, क्योंकि आप केवल अपने प्रेम ही को स्मरण करना चाहती हैं। 'ओ मेरे प्रियतम, उस ईश्वर-प्रेम से क्या लाभ, जिससे मैं तुम्हें ही भूल जाऊं ?'' इनके लिये स्वर्ग इसी के स्मरण में निहित है और दूसरा स्वर्ग काल्पनिक है। अनुभूतियों की तीव्रता चौंका देने वाली है; कविता का छन्द रामनाथ शास्त्री की शैली से प्रभावित दिखाई देता है।

'दो पक्खरू' (दो पक्षी) दो युवक प्रेमियों की एक रूपकात्मक कहानी है जो समाज के क्रूर हाथों द्वारा एक दूसरे से

---

*देखिये मधुकण : सम्पादक दीनू पंत, कल्चरल अकादमी प्रकाशन।

अलग रहने को विवश कर दिये गये हैं । इनका मिलन केवल मृत्यु द्वारा ही होता है अथवा क्या वे परस्पर मिल पाते हैं ? इसमें भी रामनाथ शास्त्री का प्रभाव देखा जा सकता है परन्तु इसमें वैसी वास्तविक प्रभावशीलता नहीं है जो पद्मा की विशेषता है ।

'माऊ दी पछान' एक शिशु की अपनी माता के प्रति तथा एक मां की अपने शिशु के प्रति अनुभूतियों का सजीव चित्र है । यह बाल-बच्चों वाले किसी भी घर का सुपरिचित चित्र है। इस कविता में पद्मा के अपने घर का दृश्य है, जिसमें इनका छोटा भाई और मां है। शैली तथा वर्णन की घनिष्ठता इस कविता का अतिरिक्त गुण है, दृश्य प्रामाणिकता लिये हुए हैं।

आपके गीत 'निक्कड़े फंगडू उच्ची उड़ान' में वास्तविक गीति - तत्व की विशेषता है। इस में तीव्रता, प्रत्यक्षवादिता तथा पारिवारिक दृश्यों के निर्देश हैं जो कहीं कहीं बड़े मार्मिक बन पड़े हैं। इसमें विवाह की पूर्वावस्था की प्रसन्नताओं का तथा सास-बहू की कटूक्तियों का याथातथ्य चित्रण है । (इनके विषय में लिखी गई कवि दत्तू की पंक्तियां प्रसिद्ध हैं।) काश वे भी समझ पाते कि लड़कियों ने अपने माता - पिता के उस घर को छोड़ते समय क्या महसूस किया था जहां उन्हें किसी की चिन्ता नहीं होती है।

कभी कभी पद्मा भावुकता का सवावेश कर देती हैं । 'चम्बे दी डालिया' एक उत्कृष्ट गीत है "मेरी प्रिय सखी, मैं इस लिये नाराज़ हूं कि मेरा प्रिय अपने प्रस्थान के विषय में मुझे बताए बिना ही दूसरी जगह चला गया है।" परन्तु अधिक बल भावुकता पर दिया गया है। कहीं कहीं अपने प्रति करुणा प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति है। इसके कारण का पता लगाना कठिन नहीं है।

पद्मा का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ था। आप श्रीनगर के हस्पताल में दो वर्ष तक जीवन के लिए विकट संघर्ष करती रहीं। आपके प्रेम के आधारभूत दीप कभी कभी निठुर दिखाई देते थे। ऐसी दशा में निराशा का होना स्वाभाविक था। और आपकी कविता के दो प्रमुख वर्ण्य-विषय हैं। (i) गहरी निराशा की अभिव्यक्ति, जो हिन्दी की कवयित्री तारा पाण्डे की निराशा के साथ बहुत साम्य रखती है। और (ii) दीप के लिये इनका घना प्यार, जो जीवन में आपके लिये एक मात्र सांत्वना का आधार है यद्यपि आपने प्रेम में बहत कष्ट झेला है। कई बार आपकी कविताओं को पढ़ते समय 'क्रिस्टाइना रोसेट्टि' और 'एज़िज़बेद ब्राऊनिङ्' की कविताओं का स्मरण हा आता है।

पद्मा साहसमयी हैं; आपने क्षय-रोग का धैर्य के साथ सामना किया और स्वस्थ हो गईं। डोगरी भाग्यशील है, परन्तु इस रोग ने पद्मा को इतना उदास बना दिया है कि इस से पूर्व आप कभी भी इतनी उदास नहीं रही हैं। यह चिन्ताग्रस्त उदासी जीवन के स्वास्थ्य की तथा आपकी कविता की सब से बड़ी शत्रु है। इस उदासी का उपचार करने की आवश्यकता है। इनकी शैली तथा भाषागत त्रुटियों तथा भावुकता का समावेश करने के प्रलोभन को दूर करने की आवश्यकता है। परन्तु इस नैराश्य तथा अपने प्रति करुणा की भावना का उपचार इससे भी पहले करने की आवश्यकता है। पद्मा ने जीवन में बहुत कुछ इसके अन्धकारमय पक्ष-को देखा है, परन्तु अभी इन्हें इसका बहुत कुछ, इसके शुभ और श्रेष्ठ पक्ष का भी बहुत कुछ देखना शेष है। इन्हें जीवन की इस चुनौती को स्वीकार करना है तथा इन्हें निर्भीकता तथा आत्म-विश्वास के साथ इसका सामना करना है। हम एक बार फिर आशा करते हैं कि आप ऐसा करने का साहस कर सकेंगी। इस से पहले भी उल्लेखनीय परिवर्तन देखने में आया है। अपने वर्ण्य - विषय तथा ब्योरों पर आपकी पकड़ अधिक प्रौढ और दृढ़ हो गई है, आप छन्दोगत त्रुटियों का निवराण कर रहीं हैं और, यद्यपि आपकी पद्धति अभी तक

भावुकतापूर्ण है, आपके अधिकतर संयमशील होने की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों में भी निश्चय ही विकास हुआ है। खादी के प्रयोग के विषय में लिखी गई कविता तथा 'कश्मीर दा रस्ता' शीर्षक कविताओं में एक नई पद्मा प्रकट हुई हैं। जो पहले की अपेक्षा अधिक चिन्तनशील तथा कम भावुक हैं। अलबत कहीं कहीं इनके भाव अस्फुट और अस्पष्ट हैं और इनकी अभिव्यक्ति इनके आशय को पाठकों तथा श्रोताओं के लिये सुबोध बनाने में सफल नहीं हो सकी है। परन्तु आशा की जाती है कि ज्यों ज्यों पद्मा की आयु में परिपक्वता आती जाएगी ये त्रुटियां भी दूर होती जाएंगी।

चरणसिंह (१९४१......) कवि - सम्मेलन, डोगरी के संग्रहों के प्रकाशन तथा कालेज की पत्रिकाएं युवा परन्तु प्रतिभाशाली लेखकों की पौद को जन्म देने में सहायक हुई हैं। महादेव सिंह ने गद्य में कुछ श्रेष्ठ रचनाएं दी हैं, तथा रणधीरसिंह, चरणसिंह, प्रेम शर्मा तथा सत्या शर्मा ने कविताएं लिखी हैं। इन सभों ने कालिज के दिनों में ही लिखना आरंम्भ किया था।

चरणसिंह के दृष्टिकोण, शैली तथा अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत विशिष्टता है। आपने प्रेम-गीत और ग़ज़लें लिखी हैं, जिनमें लेखक के व्यक्तित्व की छाप है। आधुनिक डोगरी साहित्य में प्रेम-गीतों की संख्या अधिक नहीं है और अपने लिखे गीतों में चरणसिंह ने नवलता तथा स्वतः-प्रवाहशीलता का संचार किया है। यह बात नहीं कि ये शिल्प की दृष्टि से प्रथम-कोटि की रचनाएं है। दूसरी ओर छन्द तथा लय सम्बन्धी त्रुटियां उत्कृष्ट शैली तथा वैयक्तिक तथा धनिष्ठतापरक संकेतों के लिये हानि-कारक सिद्ध हुई हैं। स्वच्छन्द प्रवाह युक्त भावना से अभिव्यक्त घनिष्ठतापरक विवरणों से कविताओं में सरलता का समावेश हुआ है। इस का कारण यह है कि चरणसिंह अभी किशोरावस्था में हैं, और कभी कभी इनकी माध्यम की पकड़ दुर्बल हो जाती है। परन्तु आप के वर्ण्य

विषय तथा दृष्टिकोण की सजीवता के द्वारा इन त्रुटियों की क्षतिपूर्ति हो जाती है। ऐसे अवसर भी आए हैं जब चरणसिंह अत्यधिक आत्म-सचतेन हो गए हैं, पर जहां ऐसा नहीं हुआ है वहां चरणसिंह अपने विषय का निर्वहण बड़ी कुशलता और सूझ-बूझ से कर पाए हैं।

'मेरे गीतें दे बोल नां उन्दे गित्तें' (मेरे गीतों के बोल उनके लिये नहीं हैं), 'मेला' और ग़ज़ल 'मते हिरखे दी शोल बी कित लेखे' से चरणसिंह की कविताओं की विकासोन्मुख प्रवृत्ति का पता चलता है। इनके भीतर आपने अपनी अनुभूतियों की कोमलता, मन की मृदुलता तथा अपनी वर्णन-विषयक कुशलता (मेला में) का प्रदर्शन किया है जो आपकी पूर्वरचित कविताओं में दृष्टिगत नहीं होती। आप की कविता 'मेला' से हमें यश रचित 'मेला' का स्मरण हो आता है—यश की कविता अपूर्ण है परन्तु चरणसिंह की कविता भाव और उसके निर्वहण की दृष्टि से पूर्ण है। कल्पना सरलता लिये हुए है तथा वर्णन प्रत्यक्ष और स्पष्ट हैं यद्यपि इनकी कृति में यश की 'मेला' के उत्कृष्ट गुणों का अभाव है।

चरणसिंह ने कुछ ऐसी कविताएं लिखी हैं जिन में इन्होंने अपने प्रति निर्देश किया है। इनमें सरलता है, जो मनोरंजक है किन्तु कभी यह अपने प्रति दया की भावना लिये हुए प्रतीत होती हैं। चरणसिंह ने अभी कुछ समय पूर्व ही अपना कवि-जीवन आरंभ किया है और आपने अन्य डोगरी कवियों तथा पाठकों का ध्यान आकर्षित कर लिया है, पर आपके आत्म-विषयक निर्देश, जो कभी कभी व्यंग्यात्मक और मनोरंजक होते हैं, अपने प्रति दया की भावना से परिपूर्ण दिखाई देते हैं।

फिर भी चरणसिंह बड़ी तेजी से प्रगति कर रहे हैं। इनमें परिपक्वता आ रही है और अभिव्यक्ति में विकास हो रहा है। 'भुक्खा रूह' में कलाकारों के समक्ष उपस्थित परस्परविरोधी बातों

का विवेचन है। क्या कला को कला के लिये होना चाहिये या इसे जीवन के लिये होना चाहिये ? कवि की कल्पना फूलों की सुषमा के बीच विचरना चाहती है परंतु कवि का मन उसे पीडित मादकता की भूख और कष्टों को महसूस करने के लिये प्रेरित करता है । वह फूलों और भौंरों के विषय में कैसे लिख सकता है जब उसके पास जीविकोपार्जन के लिये कोई साधन नहीं है ? और तब आप सहसा एक भिन्न स्वर मुखर कर देते हैं : कुछ भी हो, किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि कवि की आत्मा भूखी है ।

'भुक्खा रूह' में विचार का विकास चरणसिंह की किसी भी अन्य रचना से अधिक संगत और सशक्त रूप में हुआ है। परन्तु विचार में यह परिवर्तन—किसी को यह महसूस नहीं करना चाहिये कि कवि भूखा है—आकस्मिक है। और फिर कल्पना-सृष्टि, यद्यपि कहीं कहीं यह कवि के विचारों को अभिव्यक्त करती है—पूर्ण तथा पर्याप्त नहीं है और तर्क भी जटिल हो गया है । आश्चर्य की बात तो यह है कि किस प्रकार इतनी छोटी आयु में ही चरणसिंह चिंतनशील कविता लिखने में भाषा के साधनों को प्रभावशाली ढंग से उपयोग में ला सके हैं, यद्यपि व्यावहारिक अभि-व्यक्ति एक चिन्तनपूर्ण विषय-वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिये सदैव उपयुक्त नहीं होती ।

———

तृतीय भाग

गद्य

साहित्य की दृष्टि से महाराजा रणवीरसिंह का शासन-काल बड़ा महत्वपूर्ण है। आप स्वयं भी एक विद्वान व्यक्ति थे तथा विद्वानों का आदर करते थे। आपके शासन-काल में उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया। और इससे भी अधिक डोगरी की ओर विशेष ध्यान दिया गया। लगभग सारा सरकारी काम-काज डोगरी में किया जाता और हर एक सरकारी कर्मचारी को डोगरी सीखना होती, या फिर, ऐसा न कर सकने की दशा में, उन्हें अपने वेतन में दस प्रतिशत के हिसाब से कटौती करानी पड़ती। महाराजा रणवीर-सिंह ने देवनागरी लिपि की सहायता से डोगरी लिपि को आधुनिक रूप दिया। डोगरी में बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं और अनूदित की गईं। दण्ड-विधि (दण्ड-संहिता) का अनुवाद किया गया, कवायद के विषय पर एक पुस्तक लिखी गई। प्रार्थनापत्र तथा राजाज्ञाएं डोगरी में जारी की जातीं।

परन्तु महाराजा प्रतापसिंह के शासनकाल में कुछ स्वार्थपरायण राज्याधिकारी डोगरी को हीनावस्था में पहुंचा कर उसका बहिष्कार

करने में सफल हुए। और इस तरह डोगरी की लिखित सामग्री बड़ी मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकी। पंडित हरदत्त शास्त्री से एक नये युग का आरम्भ हुआ। पं० हरदत्त केवल कवि थे। पर शीघ्र ही डोगरी को श्री भगवतप्रसाद साठे मिल गये और आपने गद्य में लिखना आरंभ किया। 'पहला फुल्ल' १९४७ में प्रकाशित हुआ। यह एक कहानी संग्रह था। इस से डोगरी की सम्पन्नता और सप्राणता तथा इसकी महान सम्भावनाएं तथा सीमाएं प्रकट हुईं। श्री विश्वनाथ खजूरिया ने भी कहानियां तथा गद्य-निबन्ध लिखे। प्रशान्त ने भी डोगरी में कहानियां लिखीं। 'खीरली बल' उनकी प्रसिद्ध कहानियों में से एक है। तेजराम खजूरिया तथा श्यामलाल शर्मा ने डोगरी के भाषा-पक्ष पर काम किया। जब भारत के दूसरे भागों में क्षेत्रीय भाषाओं के लिये आन्दोलन चलने लगा तो डोगरी के हितों का प्रचार करने के लिये डोगरी-संस्था और डोगरा-मण्डल की स्थापना हुई। १९४७ में पाकिस्तानी कबाईलियों ने रियासत पर आक्रमण कर दिया और इस आक्रमण का सामना करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। जिससे जनता में देशभक्ति की भावना जागृत की जा सके। इसके लिये सर्वश्रेष्ठ माध्यम कविता थी, क्योंकि लोग इसे सुन सकते थे, इससे देशभक्ति की कविता को प्रोत्साहन मिला। अधिकांश लोग अनपढ़ थे। वे डोगरी नहीं पढ़ सकते थे और इस लिये वे डोगरी गद्य से रसान्वित भी नहीं हो सकते थे।

जब परिस्थितियों में कुछ स्थिरता आई तो यह महसूस किया गया कि जहां डोगरी कविता का कलेवर बहुत बड़ा हो गया है वहां इसमें गद्य-साहित्य का बड़ा अभाव है। डोगरी गद्य का निर्माण करने के लिये अनुरोध तथा सचेतन प्रयास किये गये, क्योंकि गद्य-साहित्य के अभाव में कोई भी भाषा समृद्ध और सम्पूर्ण नहीं कहला सकती। रामनाथ शास्त्री ने कहानियां, एकाङ्की और नाटक लिखे; आपका 'बावा जित्तो' डोगरी का

प्रथम नाटक था । प्रशान्त ने 'देवका' और 'जित्तो' संबन्धी नाटक लिखे । विश्वनाथ खजूरिया ने निबन्ध और एकांकी नाटक लिखे; गंगादत्त विनोद ने कहानियां, निबंध और एकांकी नाटक लिखे; राजेन्द्रसिंह ने 'जित्तो' लिखा, बंसीलाल गुप्ता ने 'डोगरी लोक कत्थां' का सम्पादन किया; श्यामलाल शर्मा, लक्ष्मीनारायण शर्मा और नीलाम्बर देव ने गद्य-निबन्ध और साहित्यिक आलोचना के विषय पर लिखा; शक्तिशर्मा, गंगानाथ शर्मा, रघुनाथ शास्त्री, मदनमोहन शास्त्री तथा अनंतराम शास्त्री ने धर्म, दर्शन, ज्योतिष तथा खगोलमिति पर निबन्ध लिखे (इनमें से अधिकांश जम्मू रेडियो के डोगरी विभाग में सुरक्षित हैं ।)

युवा लेखकों की एक पौद का आविर्भाव हुआ, जिन्हों ने कहानियां लिखीं । ललिता मेहता की कहानी 'सूई धागा' १९५७ में प्रकाशित हुई । इसके बाद रामकुमार अबरोल, वेदराही, मदनमोहन शर्मा, नरेन्द्र खजूरिया आदि ने कहानियां लिखीं । और इनमें से पहले चारों लेखकों की तथा कविरतन की कहानियां विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित हुईं । डोगरी साहित्य तथा विशेष रूप से डोगरी गद्य के प्रचारार्थ 'नमीं चेतना' त्रैमासिक का प्रकाशन आरंभ हुआ । इससे पूर्व कालेज-पत्रिका 'तवी' डोगरी के लिये दूसरी ऐसी पत्रिकाओं का नेतृत्व कर चुकी थी । डोगरा-मण्डल ने भी डोगरी की कुछ पुस्तकें प्रकाशित कीं ।

कहानी के बाद नाटक का आविर्भाव हुआ । अब तक एक दो श्रेष्ठ नाटक लिखे गये हैं तथा मंच पर खेले जा चुके हैं । 'बावा-जित्तो' और 'देवका' के अतिरिक्त 'नमां ग्रां', 'धारें दे अथ्रू', 'सरपंच' 'संभाली,' 'सार' तथा 'देहरी' भी प्रकाशित हो चुके हैं । नरेन्द्र खजूरिया ने 'अस भाग जगाने आले आं', नाम से बच्चों के लिये उपयोगी नाटक लिखे हैं ।

ठीक उसी प्रकार, जैसे उपन्यास नाटक का वंशज है, डोगरी

उपन्यास भी कुछ हद तक डोगरी नाटक का ऋणी है । नाटकीय अभिनय, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण और लोगों की समस्याएं, डोगरी उपन्यास में इन सब तत्वों का समावेश नाटक के द्वारा ही हुआ है। अब तक डोगरी में चार उपन्यास लिखे गये हैं: नरेन्द्र खजूरिया (शानो), मदनमोहन शर्मा (धारां ते धूड़ां), वेद राही (मल्लाह बेड़ी ते पत्तन) और प्रशान्त का उपन्यास ।

ये डोगरी के लिये शुभ शकुन हैं । यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जो आर्थिक कठिनाइयों और पाठकों के अभाव के बावजूद भी लेखकों के उत्साहपूर्ण प्रयासों द्वारा सम्भव हो सकी है। जम्मू रेडियो के योगदान को भी स्वीकार करना होगा, जो डोगरी को आगे बढ़ाने में बड़ा सहायक हुआ है। और कुछ समय बाद राजकीय सांस्कृतिक अकादमी ने विभिन्न भाषाओं के लेखकों को उनकी रचनाएं प्रकाशित करने के लिये आर्थिक सहायता देकर एक अच्छा काम किया है।

कठिन समय बीत गया है। अब पीछे की ओर देखने की कोई आवश्यकता नहीं, ज़रूरत केवल नये विषयों तथा नई भूमियों के अन्वेषण के लिये आगे की ओर देखने की है।

विश्वनाथ खजूरिया (१६०६ . . , ...) :

विश्वनाथ खजूरिया प्रो० रामनाथ शास्त्री के बड़े भाई हैं । आप राज्य के शिक्षा विभाग के अध्यापक के रूप में जम्मू के ग्रामीण और पहाड़ी क्षेत्रों में काम करते रहे हैं। वहां रहने से आप को वहां के निवासियों के जीवन और कला का अध्ययन करने के पर्याप्त अवसर मिले । आपको जम्मू प्रान्त के लोक-साहित्य तथा लोक-नृत्यों में गहरी रुचि और इनका घनिष्ठ परिचय है और आपने जम्मू के स्कूलों में लोक-नृत्यों को लोकप्रिय बनाने के लिये बहुत काम किया है।

विश्वनाथ खजूरिया उन इने-गिने लोगों में से हैं जो स्वाधीनता से पूर्व ही डोगरी में लिखते थे। आपने कहानियां, एकांकी नाटक तथा साहित्य और लोकनृत्य विषयक गद्यलेख लिखना जारी रखा। जम्मू रेडियो के लिये लोक-गीतों तथा लोक-नृत्यों के सम्बन्ध में लिखी गई 'फुम्मनियां,' 'कुड' और 'भांगड़ा' आदि कृतियां बड़ी ज्ञानप्रद हैं, यद्यपि आपकी रचनाओं में अपने कथ्य को परिपुष्ट करने की एक अध्यापक की प्रवृत्ति विद्यमान है।

विश्वनाथ खजूरिया सरकारी नौकरी से निवृत्त हो चुके हैं परन्तु अब भी आप अपनी पुरानी वृत्ति में निरत हैं। आप जम्मू की एक प्राईवेट संस्था में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आप राज्य की अकादमी की पत्रिका में अक्सर आलोचनात्मक लेखों के रूप में योगदान देते रहते हैं।

सम्प्रति आप जम्मू के लोक-साहित्य तथा लोक-नृत्यों सम्बन्धी पाण्डुलिपि को पूरा करने में व्यस्त हैं। आपने बहुत सी डोगरी लोक-कथाएं भी एकत्र की हैं। विश्वनाथ खजूरिया रंगमंच-अभिनेता तथा निर्माता भी रह चुके हैं तथा आपकी पाण्डुलिपि में जम्मू-रंगमंच सम्बन्धी कुछ लेखों का भी समावेश किया गया है।

अनन्तराम शास्त्री (१९१० ....):

श्री अनन्तराम शास्त्री डोगरी के सुप्रसिद्ध गद्य-लेखकों में से हैं। आपने आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों पर लिखा है। अध्यापक होने के कारण—आप श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक हैं—आपके लेखों में उपदेश-तत्व प्रमुख है, परन्तु इसका समावेश सदैव बलात् नहीं हुआ है।

अनन्तराम शास्त्री के पूर्वज पुंछ के रहने वाले थे अतः आपके लेखों में पुंछ की बोली का प्रभाव देखा जा सकता है।

कहीं कहीं यह इस तरह समाविष्ट हो गया है कि इसका आभास तक भी नहीं होता, परन्तु जब कभी इसका भान होता है तो इससे एक विलक्षण प्रभाव पड़ता है।

शुरू में अनन्तराम शास्त्री डोगरी संस्था के बहुत निकट थे, किन्तु १९५५ के बाद इनके मार्ग बदल गये और आपने डोगरा-मण्डल की स्थापना की। डोगरा-मण्डल ने कुछ फ़ोटो-प्रदर्शनियां करके जम्मू के कुछ स्मृति-चिन्हों को प्रकाश में लाया है। शास्त्री जी ने कुछ पुस्तकों की रचना तथा अनुवाद ही नहीं किया है अपितु आपने इनमें कुछ का सम्पादन भी किया है। आपने विष्णु शर्मा की प्रसिद्ध कृति पंचतंत्र का अनुवाद किया है तथा कृषक-सन्त बावा जित्तो के जीवन-चरित पर भी लिखा है। इस राज्य के संस्थापक महाराजा गुलाबसिंह की उपलब्धियों पर 'गुलाब चरित्र' नामक आपकी एक पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हुई है।

अनन्तराम शास्त्री ने स्कूलों के बच्चों के लिये हिन्दी की पद्धति पर एक डोगरी व्याकरण भी लिखा है जो अभी पाण्डुलिपि के रूप में ही है। आपने जम्मू के साहित्य तथा संस्कृति के सम्बन्ध में हिन्दी तथा संस्कृत में लेख भी लिखे हैं।

श्री श्यामलाल शर्मा तथा श्रीमति शक्ति शर्मा : 'त्रिवेणी' नामक पुस्तक में श्री श्यामलाल शर्मा तथा श्रीमति शक्ति शर्मा दोनों के परस्पर सहयोग से लिखे गये गद्य-निबन्ध संग्रहीत हैं। आप दोनों अपने वास्तविक जीवन में पति-पत्नी हैं। एक अन्य युगल वेदपाल दीप तथा पद्मा दीप की भांति श्री श्यामलाल शर्मा तथा श्रीमति शक्ति शर्मा भी अनेकों शिक्षा संबन्धी तथा सांस्कृतिक रुचियों की समानता के कारण विवाह-सूत्र में बन्ध गये थे। दोनों ही में अध्यापक होने के गुण हैं तथा ये गुण इन निबन्धों में भली-भांति देखे जा सकते हैं। इनकी रचना लोगों को शिक्षा देने तथा

उन में जीवन के विषय में एक स्वस्थ नैतिक दृष्टिकोण को विकसित करने के उद्देश्य से की गई है।

'त्रिवेणी' डोगरी के गद्य-निबंधों का पहला वड़ा संग्रह है। इससे पहले के डोगरी निबंध रेडियो - कश्मीर जम्मू के लिये लिखे जाते थे तथा वहीं से प्रसारित किये जाते थे और ये विविध विषयों पर लिखे जाते थे। कुछ निबन्ध श्री प्रशान्त द्वारा भी प्रशाशित किये गये हैं किन्तु इनका प्रकाशन त्रिवेणी से पहले नहीं हुआ। डोगरी गद्य के क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण काम था। इसका केवल ऐतिहासिक महत्व ही नहीं है, इसमें भाषा और साहित्य के विभिन्न पक्षों का विवेचन हुआ है और डोगरो गद्य के लिये यह एक सुस्पष्ट स्थिति के आगमन का सूचक है।

'त्रिवेणी' में श्यामलाल और शक्ति शर्मा की डोगरी के भाषा-वैज्ञानिक पक्ष के प्रति रुचि का पता चलता है। डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, विजयेन्द्र स्नातक तथा प्रो० गौरीशंकर तक ने इस साहसपूर्ण कार्य की प्रशंसा की है। डॉ वर्मा लिखते हैं : "यह एक ऐसा साहसपूर्ण प्रयास है जो मेरी आशा से परे है। इसके भीतर भाषा-विज्ञान संवन्धी साहितियक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को डोगरी-भाषी जनसमुदाय के सन्मुख थोड़े किन्तु अर्थपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किया गया है डोगरी भाषा में यह अपनी तरह की पहली कृति है। यह ऐसी पुस्तक है जो जन-समुदाय के बौद्धिक-स्तर को ऊपर उठाने के अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति करेगी।"*

'त्रिवेणी' भाषा, संस्कृति तथा साहित्य इन तीन भागों में विभाजित है। पहले भाग का सम्बन्ध डोगरी भाषा तथा भद्रवाही

*त्रिवेणी पर कुछ सम्मतियां।

के साथ डोगरी के सम्बन्ध, डोगरी भाषा की संक्षिप्त रूपरेखा, डोगरी भाषा का शब्द-साम्य तथा इसकी विशिष्टता आदि विषयों से है। दूसरे भाग में सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का निरूपण है। संस्कृति क्या है? राष्ट्रीयता क्या है तथा इसका हिन्दी के साथ क्या सम्बन्ध है? इसमें गांधीवाद से लेकर शाकाहारिता तक पर कुछ अन्य निबन्ध हैं। तीसरे भाग में डोगरी लोक-गीतों में नारी-चरित्र का वर्णन तथा वैताल-पचीसी के अनुवाद का समावेश है।

श्री श्यामलाल शर्मा तथा श्रीमति शक्ति शर्मा की शैली सुबोध है, वाक्य-रचना सरल तथा जटिलता से रहित है। लेखकों का उद्देश्य पाठकों के लिये सहज-गम्य होना रहा है और जहां तक अभिव्यक्ति की स्पष्टता तथा भाषा के प्रयोग का सम्बन्ध है, प्रस्तुत प्रयास सफल रहा है। निबन्धों में एक और विशिष्टता है: ये संक्षिप्त हैं तथा प्रायः देखा गया है कि इसके लेखकों ने प्रायः अपने अभिप्राय का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया है। यह इन दोनों लेखकों का एक बड़ा गुण है।

तो भी 'छिन्ना ते अन्ध-विश्वास' तथा 'वैष्णों भोजन' आदि कुछ निबन्धों में अभिव्यक्त लिये गये विचारों के साथ सरलता से एकमत होना कठिन है। इनमें अभिव्यक्त किये गये विचार कट्टरता-पूर्ण हैं तथा लेखकों के विषयपरक स्वभाव का परिचय देते हैं। कहीं कहीं लेखकों ने उन डोगरी-भाषी पाठकों के लिये सुबोध बनाने के लिये कुछ निश्चित वाक्य-शैलियों का प्रयोग किया है। इससे प्रकट होता है कि डोगरी तथा हिन्दी को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया गया है। डोगरी लोक-गीतों के नारी-चरित्र सम्बन्धी निबंध रस-विभोर करने वाला है तथा लेखकों के मन के चेतनाशील होने का परिचायक है। 'वैताल पचीसी के' अंशों

के रूपान्तरण भी पूर्णतया समुचित रूप से किये गये हैं तथा पाठक की रुचि को बनाये रखने में सहायक हुए हैं।

लेखकों के मतों के दृढ किन्तु कट्टरतापूर्ण तथा शैली में उपदेशात्मकता होते हुए भी 'त्रिवेणी' डोगरी के बढ़ते हुए कलेवर में श्लाध्य अभिवृद्धि है। इस लिये इसे गद्य-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है तथा यह कृति डोगरी व्याकरण के विकास के लिये किये जाने वाले प्रयासों को सुदृढ़ बनाने के लिये एक उपकरण सिद्ध होगी।

कहानी

भगवतप्रसाद साठे (१९१०........) : साठे डोगरी गद्य के सबसे पहले लेखक हैं। आप ज्योतिष तथा सामुद्रिकी का धन्धा करते हैं। आप हिन्दी साहित्य से सम्बंधित थे तथा हिन्दी में कहानियां लिखा करते थे। परन्तु डोगरा होने के कारण तथा बहुमुखी भाषा तथा जनसाधारण का अध्ययन करने की क्षमता से सम्पन्न होने के कारण आपने शीघ्र ही डोगरी में कहानियां लिखना आरंभ किया। आपकी कुछ कहानियों में आधुनिक कहानी का शिल्प नहीं है परन्तु आपकी भाषा सशक्त और सजीव है। इसमें संवादात्मक सुगमता, तरंगशील लय तथा सादगी है जिसके कारण डोगरी गद्य का अन्य कोई भी लेखक इनसे आगे नहीं निकल सका है। आपका डोगरी कहानी संग्रह—'पहला फुल्ल' (पहला फूल) डोगरी गद्य की सबसे पहली प्रकाशित होने वाली रचना है। 'पहला फुल्ल' एक कहानी का नाम होते हुए भी एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया गया है क्योंकि यह (पहला फुल्ल) आगे चल कर गद्य की दिशा में किये जाने वाले अन्य प्रयासों के लिये प्रेरक सिद्ध हुआ और बंसीलाल गुप्ता की 'डोगरी लोक-कत्थां' (डोगरी लोक-कथाएं) तथा डोगरी संस्था

द्वारा प्रकाशित 'इक हा राजा' भगवतप्रसाद साठे के दृष्टान्त से स्पष्टत: प्रभावित थीं। साठे के गद्य में उन लोगों की सम्पूर्ण सरलता, प्रखरता और सजीवता विद्यमान है, जिनकी भाषा आप लिखते हैं; यह बोलचाल की भाषा है तथा स्थानीयता के रंग में रंगी हुई है। अपने प्रकाशन के पंद्रह वर्ष बाद भी आपकी कहानियों में भले ही कथावस्तु तथा उसका विन्यास दुर्बल हैं, तथा कहीं कहीं इन्हें आधुनिक कहानी की दृष्टि से कहानी कहना भी कठिन हो जाता है, पर फिर भी इनमें ऐसी देशीय गरिमा तथा भाषा की सबलता विद्यमान है तथा ये अब भी अपनी संवादात्मक शैली के कारण दुर्जेय हैं।

साठे की कहानियां वस्तुत: लोक-साहित्य की परम्परा से अनुबंधित है तथा अपेक्षतया अधिक आत्मचेतनाशील हैं तथा इनमें बनावट की मात्रा अधिक है। 'कुड़में दा लामां', 'षड्यतर' और 'पहला फुल्ल' में इतिहास और पौराणिकता का यथार्थ तथा लोक-विश्वासों का अद्भुत सम्मिश्रण है और यह सब इस लिये सम्भव हो सका है कि आपने अपनी कहानियों में लोगों की इन मन:स्थितियों तथा विश्वासों को इस प्रकार अधिकृत कर लिया है कि ये कला की दृष्टि से सफल प्रयास सिद्ध हुई हैं। किंतु साठे न तो अपनी कहानियों के ऐतिहासिक पक्ष से और न ही लोक कथाओं से सन्तुष्ट हुए। आप 'दोहरी' (डुग्गर में प्रचलित एक प्रकार की विवाह-प्रथा जिसमें दो परिवारों में परस्पर दो लड़कियों के आदान-प्रदान की शर्त पर विवाह किया जाता है।) के अभिशाप से, बाल-विधवाओं की 'सहाड़ा' की समस्या से तथा 'मंगते दा घराट' में स्वार्थी लोगों द्वारा उत्पन्न किये गये हिन्दु-मुस्लिम विवाद से भी आंखें मूंदे न रह सके। साठे की कला कहीं कहीं स्पष्ट और चित्रमय है, परन्तु आप अपने वस्तु-निर्वाह में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण लाने का प्रयास करते हैं। डोगरी के प्रथम कहानीकार होने के कारण आपकी कला में अनेकों त्रुटियां

हैं परन्तु इनमें ऐसी नवलता श्रौर मनोहारिता है जो पहली साहित्यिक रचना में प्राय: हुआ करती है।

'कुड़में दा लामां' लोक - विश्वासों श्रौर मिथ्यावाद पर श्राधारित हैं। कुछ लोगों में ऐसा विश्वास है कि कुछ 'जोगियों' में वृष्टि बरसाने की श्रथवा बरसने से पहले उसे दूसरी श्रोर मोड़ देने की क्षमता होती है। परन्तु श्रपनी भाषा के जादू के द्वारा साठे ने इस लोक-विश्वास को कला का एक दुर्लभ नमूना बना दिया है। कहानी सीधी-सादी है : मोहरू एक जोगी है तथा पांच गांव उसके श्रधिकार क्षेत्र में हैं। उसके घर में एक जवान बेटी केसरो को छोड़ श्रपना कहने के लिये दूसरा कोई नहीं है। मोहरू श्रपने श्रधिकार-क्षेत्र के गांवों के दु:ख-सुख में भाग लेना श्रपना धार्मिक कर्तव्य समझता है। उसने श्रपनी बेटी केसरो का विवाह अपने श्रधिकार क्षेत्र से बाहिर के एक मंगू नामक जोगी के बेटे के साथ करने का निश्चय किया है। मंगू वृष्टि को उत्पन्न करने श्रौर उसे मोड़ देने की कला में श्रपने आपको मोहरू से हीन समझता था, परन्तु इस बार मोहरू की बेटी से श्रपने पुत्र की सगाई होने के कारण वह श्रपने सिर को ऊपर उठा सकता है।

ये फसल की कटाई के दिन हैं श्रौर मोहरू के श्रधिकार-क्षेत्र वाले गांवों के ऊपर घने बादल घिर श्राए हैं। हर कोई डर रहा है, कुछ न कुछ उपाय अवश्य ही करना चाहिये। मोहरू को बुखार हैं श्रौर वह चारपाई पर पड़ा है और केसरो इन बड़े बड़े बादलों को खदेड़ने का जादू नहीं जानती है। कुछ भी हो वह श्रवश्य यत्न करेगी। श्रभाग्यवश मेघ बंट जाते हैं श्रौर उनका एक टुकड़ा गंगू के गांव की श्रोर बढ़ जाता है। वह घबरा जाती है तथा उसका बाप श्रपने श्रापको परास्त हुश्रा महसूस करता है। अब वह भविष्य में किस तरह मंगू को मुंह दिखाएगा ? फिर क्या

हुआ, यदि वह मंगू को अपना ससुर नहीं बनने देगी ? उसे तिरस्कृत तो नहीं होना पड़ेगा। वह अपने घर से चली जाती है। किसी को पता नहीं चलता कि वह कहां जाती है। वह इसके बाद मोहरू को फिर कभी भी नहीं मिलती और न ही उसे अपने समधी मंगू का उलाहना ही सुनना पड़ता है।

इस साधारण से विवरण में साठे ने अपनी कला के सभी उपकरणों का समावेश कर दिया है। भाषा दृढ़ और शैली संवादात्मक है। इसमें एक भी शब्द भरती का नहीं है और प्रत्येक वाक्य वातावरण के निर्माण में सहायक हुआ है। वर्ण्य-विषय में तीव्रता है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि साठे अपने वस्तु निर्वाह में अमूर्तता की छाप नहीं आने देते हैं अपितु अपने कथ्य में दृढ़ विश्वास रखते हैं। यही इसकी श्रेष्ठना का कारण है। इस विचार से वस्तुतः सहमत होना पड़ता है कि साठे की 'कुड़में दा लामां' शीर्षक कहानी विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की कोटि में बड़ी आसानी से रखी जा सकती है। साठे मोहरू और केसरो का ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं जो सहज और सप्राण है। इसमें साठे की वर्णन-चातुरी अपने उत्कर्ष पर है : इसमें मानो इनका अपना स्वर मुखरित हो गया है।

आपकी 'मंगते दा घराट' (मंगते की पन - चक्की) शीर्षक कहानी परोक्ष रूप में कुछ स्वार्थपरायण लोगों द्वारा उत्पन्न हिन्दु-मुस्लिम विवाद को लेकर लिखी गई है, यद्यपि बाहर से देखने में यह एक चरित्र का अध्ययन प्रतीत होती है, मंगता, मुहम्मदा तथा उसके पिता के चरित्रों का निरूपण उनकी विशिष्ट-ताओं के सहित बड़ी क्षमता से किया गया है। यह कहानी भी शैली की संक्षेपात्मकता तथा व्यावहारिक अभिव्यक्ति के लिये उल्लेखनीय है। मंगता का वर्णन, जो मुहम्मदा से प्रेम करता है, बावजूद इसके कि लोगों का उनके विषय में क्या मत है, बड़ा मार्मिक बन

पड़ा है। इसमें गद्य का प्रवाह मंगता के क्रोध, खेद और पश्चात्ताप की मनोवृत्ति के साथ साथ तीव्र अथवा मंद होता जाता है। लोगों के सरल स्वभाव का चित्रण कुछ साधारण विवरण देकर किया गया है और इस पर भी ये विवरण निःसन्देह विश्वसनीय बन पड़े हैं।

'सहारा' एक बाल-विधवा की समस्याओं का अध्ययन है जो अपने अध्यापक रामू के प्रति यौवन की भावनाओं तथा प्राचीन रूढ़िगत निश्चित धारणाओं के बीच पिस रही है। इसके विवरण स्पष्ट हैं तथा चरित्र चित्रण उत्कृष्ट है। साठे पाठकों के सन्मुख उस विचलित कर देने वाले पक्ष का निरूपण करते हैं जहां पर विधवा को दुर्भाग्य एव विधि-विडम्बना का सामना करना पड़ता है। यदि ऐसा न होता तो वह विधवा क्यों बनती ? साठे ने विषय-वस्तु के निर्वहण में सहानुभूति से काम लिया है तथा इसमें ऐसी बातों के प्रति करुणा और रोष को भावना का प्रच्छन्न प्रवाह है। बाल-विधवा के गुप्त अभिलाषाओं भरे हृदय का विवेचन बड़ी कुशलता से किया गया है।

'अम्मां' (माता) में इतिहास और पुराण का सम्मिश्रण है तथा इसका स्वरूप प्रासंगिक है। और इस पर भी अम्मां और राजा सुचेतसिंह जीते-जागते चरित्र हैं।

'दोहरी' (डुग्गर में प्रचलित एक प्रकार के विवाह की कुप्रथा) का विषय-वस्तु मार्मिक है और इसकी भाषा प्रखर है। साठे को डुग्गर-वासियों की घरेलू समस्याओं के साथ घनिष्ठ परिचय है और 'दोहरी' डोगरों के नाम और उनकी संस्कृति पर एक धब्बा है। विशेषतः ऐसी दशा में जब कि दोहरी प्रथा के अनुसार यह विवाह आयु एवं स्तर की दृष्टि से असमान युगलों के बीच सम्पन्न होता है। स्नेहावेश में आकर लोग किस प्रकार गलती कर जाते हैं तथा इसका परिणाम किस

प्रकार अभीष्ट से प्रतिकूल होता है—इस सबका वर्णन साठे महोदय ने बड़ी सूझ-बूझ से किया है। ज्ञानो की दशा के चित्रण में रोष, कटाक्ष और खेद का स्वर है जोकि एक व्यक्ति न होकर ऐसी उन सभी लड़कियों की प्रतीक है जो अदला-बदलो के इन विवाहों द्वारा असमान वरों को सौंप दी जाती हैं। इसका गद्य, जो कहीं तो मन्थर गति से चलता है और कहीं तीव्रगति से, ज्ञानो की मनोदशा को व्यक्त करता हैं। और यदि कहीं हम ऐसी कुरीतियों के प्रति रोष का अनुभव करते हैं तो उसमें दया की भावना भी रहती है। ज्ञानो की मनोवृत्ति का उस समय का चित्रण, जब वह अपने विषय में कहे गये एक लड़के के वचनों (ज्ञानो! तुम वास्तव में सुन्दर हो।) के विषय में सोचने लगती है, असाधारण कौशल और सूझ-बूझ के साथ किया गया है। इसका अन्त भले ही आकस्मिक लगे, किन्तु यह सब ज्ञानों की मृत्यु के संकेत के रूप में इतना नहीं किया गया है (यद्यपि वह कहानी में वस्तुत: मर जाती है) जितना कि हमें काम-विषयक कठोरता और उस सामाजिक व्यवस्था के प्रति चेतावनी देता है जिसका अन्त, यदि डुग्गर को ज्ञानो सरीखी असंख्य लड़कियों को जीना है, परमावश्यक है।

'पहला फुल्ल' इतिहास और पौराणिकता का सम्मिश्रण है। कहानी अलौकिक जैसी लगती है, परन्तु इसका निर्वाह प्राकृतिक ढंग से किया गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साठे महोदय अपने विषय-वस्तु का निर्वाह इस प्रकार करते हैं मानो वे इसमें विश्वास रखते हों। इससे आपकी कहानियां स्वाभाविक और यथार्थपूर्ण दिखाई देती हैं, यद्यपि आप उनका निर्माण अलौकिक एवं कपोल-कल्पित विषयों को लेकर करते हैं। आप लोक-विश्वासों में यकीन रखते हैं तथा उनका वर्णन विश्वास के साथ करते हैं। यह बात आपकी 'कुड़में दा लामां' तथा 'पहला फुल्ल' शीर्षक कहानियों से स्पष्ट हो जाती है। हमें इसमें वह सब कुछ दिखाई देता है जैसा कि अंग्रेज़ा कवि कॉलरिज कहा

करते थे : 'जान बूझ कर अविश्वास का स्थगन ।' आपकी भाषा सदैव आपकी इच्छा का अनुसरण करती है ।

'बूवां दी नुआर' एक रेखाचित्र मात्र है; आधुनिक दृष्टि से इसे कदापि कहानी नहीं कहा जा सकता । 'हीखी' 'जिनें नारें दे कैन्त मरी गे मुश्कल होन गुजारे चन्ना जी ।' (उन स्त्रियों का निर्वाह बड़ी मुश्किल से होता है जिनके पति युद्ध-स्थल में मारे जाते हैं।) इस लोक-गीत पर आधारित प्रतीत होती है । इसमें कहानी के सभी तत्व विद्यमान हैं परन्तु फिर भी इसे कहानी की संज्ञा नहीं दी जा सकती । इसका अन्त बड़ा आकस्मिक है और स्वाभाविक होने की अपेक्षा अधिक कृत्रिम लगता है । 'षड्यन्तर' जो कि डोगरा इतिहास के पन्नों पर आधारित है, केवल प्रासंगिक महत्व की कहानी है । इसमें न तो कोई कथा-वस्तु है और न ही विकास-शीलता है । साठे की नवीनतम कृति 'जैल्लो' है जो कि समाज की उस वाल विधवा की समस्या को लेकर लिखी गई है जो कभी कभी काम-विषयक प्रलोभनों के सन्मुख आत्मसमर्पण कर देती है । इसका विषय निर्वहण समवेदनापूर्वक किया गया है । जैल्लो का चरित्र-चित्रण यथार्थपूर्ण है परन्तु इस कहानी में साठे की अपनी भाषागत पकड़ शिथिल हो गई है । साठे आज कल बम्बई में रह रहे हैं और कभी कभी ऐसा लगता है कि, यद्यपि आप डोगरी में लिखते हैं, पर आप इसमें सोचते बिल्कुल नहीं हैं । फिर भी आप की कहानी में एक चतुर कलाकार की छाप अवश्य दृष्टिगत होती है, पर ऐसा किसी किसी स्थल पर ही दृष्टिगत होता है ।

साठे की कहानी की शैली वस्तुतः पुरानी है; आप वस्तु-निर्माण में बहुत कुशल नहीं हैं । परन्तु फिर भी आप को डोगरी के गद्य-साहित्य में गौरवमय स्थान प्राप्त है, क्योंकि आपने डोगरा जन-जीवन के लगभग सभी पहलुओं का निरूपण किया है और आपकी भाषा अब भी उतनी ही सशक्त और सजीव है जितनी कि वह आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व थी । आपका वर्णन-पाटव

निश्चय ही उत्कृष्ट है और कला की दृष्टि में, जो 'अवाञ्छित का परिहार' करने में निहित हुआ करती है, आप अब भी अजेय हैं। डोगरी के अभिनव लेखकों—वेद राही, रामकुमार अबरोल, मदनमोहन शर्मा, नरेन्द्र खजूरिया और नीलाम्बर में अधिक समुन्नत शिल्प है परन्तु इन सब में, सम्भवत: एक नरेन्द्र खजूरिया को छोड़, अन्य कोई भी लेखक डोगरी गद्य के साधनों का पूर्णतया उपयोग करने तथा उन्हें अलंकृत करने में इनके साथ होड़ नहीं ले सकता।

साठे डोगरी के प्रथम कहानीकार थे और नरेन्द्र खजूरिया के साथ आप अब भी प्रथम कोटि में आते हैं। आपकी गद्य शैली अब भी कई नये लेखकों के लिये आदर्श हो सकती है।

रामकुमार अबरोल (१९३०........):

रामकुमार उर्दू के मार्ग से डोगरी में आये हैं। मदनमोहन शर्मा और वेद राही की भांति अबरोल भी पहले उर्दू में लिखा करते थे और अब भी लिखते हैं, परन्तु अपनी मातृभाषा डोगरी के प्रति अपने दायित्व का आभास होने तथा डोगरी को लोकप्रिय बनाने के लिये कार्य करने वालों की संगति में रहने के कारण आप इस भाषा में अपने विचारों को अभिव्यक्त किये बिना न रह सके। इसके लिये आपको सर्वोत्तम विषय, डुग्गर निवासियों, उनके दु:ख-सुख, उनके विवादों तथा उनकी आशाओं और भीतियों में दिखाई दिये।

रामकुमार एक समय जम्मू के आकाशवाणी केन्द्र में काम करते थे तथा आप वहां कई कार्यक्रमों का सफलता पूर्वक आयोजन करते थे। आप एक अच्छे अभिनेता हैं और आप नाटक के शिल्प को ठीक ठीक समझते हैं। रेडियो के कार्यक्रमों के साथ आपके संपर्क का आपकी लेखन-शैली को प्रभावित करना स्वाभाविक ही था। इनके भीतर हमें सजीव और सशक्त व्यक्तित्वों की

प्रमुखता दृष्टिगत होती है, जिनका चित्रण आप अपनी अभिव्यक्तियों में ओजपूर्ण ढंग से करते हैं। और वस्तु-विन्यास की दृष्टि से आपकी कहानियों में सम्पन्न शिल्प-कौशल उपलब्ध होता है।

परन्तु इनकी वर्ण्य-सामग्री पर रेडियो का यह प्रभाव अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ है; इसके कारण कहीं कहीं कृत्रिमता और अस्वाभाविकता आ गई है। १९५९ में प्रकाशित अपने संग्रह 'पैर दे नशान' (पद-चिह्न) में रामकुमार ने अपने अन्य समसामयिक लेखकों की भांति ग्रामीण वातावरण का चयन किया है। आप के इस संग्रह की प्रस्तावना में ठाकुर पुंछी लिखते हैं— 'रामकुमार की कहानियां ग्रामीण वातावरण तथा सामाजिक रंगस्थली का चित्रण करने में पर्याप्त मात्रा में सफल रही हैं, यद्यपि यह एक दुष्कर काम होता है। इस में सुधार की गुंजायश है पर इसमें बहुविध कारुण्य की विविधता है। कहानियों में अपना निजी वातावरण, समस्याए त । शैली है तथा इनसे लेखक की सूझ-बूझ तथा जीवन को अभिव्यक्त करने की क्षमता प्रकट होती है। समय पाकर आप कलागत परिपक्वता प्राप्त कर लेंगे......एक लेखक के रूप में आपको अभी अपने शिल्प को विकसित करना है।"

रामकुमार की कहानियों की यह आलोचना कुल मिला कर ठीक है। परन्तु ठाकुर पुंछी ने पाठकों का ध्यान इनकी भाषा तथा कलागत त्रुटियों की ओर आकर्षित नहीं किया है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, रामकुमार ने डोगरी में उर्दू के मार्ग से प्रवेश किया है और कई बार हमें ऐसा लगता है कि आप सोचते तो उर्दू में हैं किन्तु लिखते डोगरी में रहे हैं। आपकी 'दो अथ्रू' (दो आंसू) तथा 'गैरतू दा मुल्ल' (स्वाभिमान का मूल्य) कहानियों पर अहमद नदीम कासिमी तथा बलवंतसिंह का प्रभाव

है। वस्तुतः आपकी 'दो अथ्रू' अहमद नदीम क़ासिमी की 'गंडासा' शीर्षक कहानी से स्पष्टतः प्रेरित है। यह कहना, कि प्रस्तुत कहानी अहमद नदीम क़ासिमी की 'गंडासा' का हिन्दी रूपान्तर है, अत्युक्ति नहीं होगी। वह भाषा, जो उर्दू में बोली और लिखी जाती है ठीक वैसी ही नहीं है जैसी कि हम डोगरी में इस्तेमाल करते हैं, तथा आकार और संदर्भ, उनके मुहावरे तथा विन्यास में परिवर्तन किये बिना, केवल कुछ उर्दू शब्दों को डोगरी में रूपान्तरित करने मात्र से हम यह नहीं कह सकते कि यह भाषा डोगरी है। यह कहानी रामकुमार की कहानियों का रसास्वादन करने तथा उनकी समुचित प्रशंसा करने में हमारे आड़े आती है, क्योंकि यदि भाषा भावों की सहायता न कर के उन में हस्ताक्षेप करती है तो यह एक गम्भीर दोष हो जाता है। इस से पाठक की रसास्वादन करने की भावना को तथा लेखक की अपने अभिप्राय को सुस्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करने की क्षमता को ठेस पहुंचती है। रामकुमार की यह त्रुटि वेद राही में तथा, अपेक्षतः कम मात्रा में, मदनमोहन शर्मा में भी विद्यमान है, परन्तु अबरोल की शैली अत्यधिक अकादमिक है। कहानियों में जहां संवादात्मक शैली, सरलता और प्रवाहशीलता तथा वक्ता और लेखक की बदलती हुई मनःस्थिति को प्रकट करती है वहां भाषा का पंडिताऊपन बनावटी लगता है; यह भरती का तथा बोझिल प्रतीत होता है। इस दृष्टि से रामकुमार का गद्य अत्यंत आत्म-चेतनाशील है।

'खेत्रें दी बण्ड' (खेतों का विभाजन) एक बौद्धिक विचार पर आधारित कहानी है। भूमि के अधिकार के प्रश्न को लेकर तीन भाईयों के परिवार में फूट पड़ जाती है। इनकी मां तथा दादी ने इन खेतों में अपना समय व्यतीत किया है और यह मतभेद तथा इसके फल-स्वरूप होने वाला यह बटवारा इन्हें बहुत अखरता है। दादी एक चट्टान पर से छलांग लगा कर आत्महत्या कर लेती है। कहानी यहां से शुरू होती है और सारी बात का वर्णन

उनकी मां करती है और उन्हें उसकी मृत्यु हो जाने के लिये डांट-डपट सुनाती है। बेटे पश्चात्ताप करते हैं तथा भूमि की चीर-फाड़ किये बिना इकट्ठे रहने का निश्चय करते हैं। मां का चरित्र कहानी में प्रमुख है। बेटों के व्यक्तित्व धुंधले हैं; वे केवल इस लिये प्रकाश में आते हैं कि उनके कारण उनकी मां को महत्व प्राप्त हुआ है। वे स्वतंत्रता पूर्वक कुछ नहीं कर पाते वरन उनके सब कार्य उनसे लेखक द्वारा कराये गये प्रतीत होते हैं। दोषपूर्ण भाषा, अनुपयोगी शब्दों, गलत नामों तथा बोझिल शैली से कहानी के सौन्दर्य को क्षति पहुंची है। वक्ता की शैली लेखक की शैली में इतनी घुल-मिल गई है कि इसका हृदय को स्पर्श करने का गुण नष्ट हो गया है।

'दो अश्रू' कासिमी की उर्दू कहानी की अत्यधिक ऋणी है। इसकी मुख्य समस्या यह दिखाना है कि किस प्रकार एक शक्तिशाली और नृशंसाकृति वाला मनुष्य, जोकि दूसरों के लिये अति भयावह है—क्योंकि जो कोई भी उसका विरोध करता है उसे कब्र में जाना पड़ता है—एक स्त्री के प्रेम के द्वारा नरम पड़ जाता है—जो इसके परमशत्रु की मंगेतर है। और किसी प्रकार, जबकि वह उसे मारने हो लगता है, तुरन्त लड़की की छवि उसकी आंखों के सामने नाच उठती है और वह तत्काल अपनी दुर्बलता ? का आभास तथा उसके प्रति अपने प्रेम के कारण उसे छोड़ देता है। क्योंकि उसे मालूम है कि यदि वह उसके मगेतर को मारता है तो उसे उसका प्रेम कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। एक ही साथ, किस प्रकार किसी को भयावह और मृदु-हृदय दिखाया जाय, ताकि रोषावेश में आते ही तत्काल पसीज कर उसकी आंखों में आंसू आ जाएं, जिससे दो परस्पर-विरोधी भावों की एक ही समय में सृष्टि की जा सके ? इस स्थिति का निर्माण तथा इसका समाधान अबरोल ने बड़े प्रशंसनीय ढग से किया है। यदि यह एक उर्दू कहानी की प्रतिलिपि है तो कोई हर्ज नहीं। अपनी क्रूरता

की चरम सीमा पर पहुंच कर आंखों में अश्रुप्रवाह का अनुभव करने वाले व्यक्ति के मनोभावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करना अबरोल की परम कुशलता का सूचक है। बांका और मस्सां के मंगेतर के चरित्रों का वर्णन सशक्त है। लड़की सुन्दर है परन्तु किंचित्मात्र भी आत्मचेतनाशील नहीं है। आत्मचेतना का यह अभाव उसे साहसी तथा अवज्ञापूर्ण बना देता है, और उसकी यह प्रवृत्ति उस की सुन्दरता से भी कहीं अधिक मात्रा में बांका के हृदय को जीत लेती है। चूंकि वह उसे कोई महत्व नहीं देती है इसी कारण से वह उसकी ओर आकर्षित होता है। यहां एक शक्तिशाली व्यक्ति की इस विवशता का सुस्पष्ट चित्रण किया गया है। यह कहानी इनकी कृतियों में पाए जाने वाले भाषा विषयक तथा उर्दू के वाक्य-विन्यास और अत्यधिक कृत्रिम तथा आलंकारिक शैली आदि दोषों से मुक्त नहीं है। परन्तु कुश्ती के खेल, लड़की से बांकू की प्रथम भेंट तथा अन्तिम दृश्य आदि कुछ दृश्यों का चित्रण बड़ा प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।

'गैरतू दा मुल्ल' (स्वाभिमान का मूल्य) में सशक्त कथावस्तु के बीज विद्यमान हैं परन्तु इसका अन्त निराशाजनक है। रामकुमार की शैली में शक्तिशाली व्यक्तित्वों के चित्रण से स्वाभाविक सजीवता आ गई है किन्तु आप उत्कृष्ट भावों को सफलता पूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर पाये हैं। संवाद अत्यन्त प्रभावजनक हैं परन्तु कुछ अशुद्ध प्रयोग (उसकी आंखें हरिण की आंखों की भांति नीली थीं) तथा अतिरंजित वर्णन इसके सामूहिक प्रभाव को नष्ट कर देते हैं। ग्रामीण जीवन का वातावरण, जहां कपटी साहूकार है, सरल स्वभाव के सीधे-सादे लोग हैं, कुछ लोग अपने आत्म-सम्मान तथा परिवार की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक का बलिदान दे सकते हैं, स्वाभाविक तो हैं परन्तु इसका अन्त कृत्रिम लगता है। आग का दृश्य ठीक वैसा ही है जैसा कि हम प्रायः कुछ भारतीय चलचित्रों में देखते हैं।

कहीं कहीं दो विभिन्न भाषाओं के दो-दो विशेषणों का एक साथ प्रयोग प्रभावजनक होने की बजाय उसे कर्कश बना देता है; जैसे 'हस्सदे ते मुस्करान्दे' (मुस्कराते), 'लिस्से ते कमजोर' (कृशकाय)।

आपकी 'ममता दा रिन' (वात्सल्य का ऋण) में वर्णन आलंकारिक हो गया है। ऐसी शैली आजकल पुरानी पड़ गई है। विचार बड़ा चातुर्यपूर्ण है—पत्नी अपने नन्हे शिशु में अपने मृत पति की छवि देखती है, और उसके माता-पिता अपने पोते की छवि में उसकी छवि देखते हैं—परन्तु इसका निर्वहण कहीं कहीं अरोचकता उत्पन्न करता है।

'पैरें दे नशान' (पद-चिह्न) एकाधिक दृष्टियों से निराशाजनक है। इसमें भी भाषागत त्रुटियां, दो विशेषणों के प्रयोग, अनुपयुक्त शब्द तथा अभिव्यक्तियां, पुनरुक्ति और व्यास-शैली के दोष हैं। एक कहानी की सफलता इसकी प्रत्यक्षवादिता, इसकी सादगी और वातावरण की एकता में हुआ करती है। परन्तु यह कहानी अनपेक्षित अभिव्यक्तियों से भरी पड़ी है जो वातावरण को विकृत करतीं है तथा कथावस्तु को कमजोर बनाती हैं। कुछ विवरण ऐसे दिखाई देते हैं मानों किसी निबन्ध से लिये गए हों। भय तथा अनिश्चयपूर्ण वातावरण का निर्माण करने के लिये लेखक असत्यपूर्ण आलंकारिक शैली पर अत्यधिक आश्रित रहा है। इसकी शैली कृत्रिम तथा कष्ट-साध्य है।

लेखक के सन्मुख समसामयिक दृश्य है और यह एक ऐसा दृश्य है जिससे हम सब सुपरिचित हैं। यह सामुदायिक प्रायोजना, श्रमदान अथवा स्वेच्छाकृत श्रम का दृश्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कहानी को लिखते समय लेखक ने

अपने सामने इस पक्ष को रखा है । 'नमां ग्रां' का सहयोगी लेखक होने के कारण, जो इसी विषय को लेकर लिखा गया है, आप वर्णन द्वारा वही कुछ अभिव्यक्त करना चाहते थे जिसे आप इससे पूर्व अभिनय तथा संवादों द्वारा कह चुके थे । स्वेच्छाकृत श्रम, सामुदायिक प्रायोजनाओं की उपयोगिता और सामूहिक प्रयासों द्वारा कितना महनीय कार्य किया जा सकता है— यह विचार एक राजनयिक भाषण, एक साहित्यिक निबन्ध अथवा प्रबन्ध के लिये एक अच्छा विषय हो सकता है । परन्तु यदि इसी विचार को एक कहानी में अभिव्यक्त करना हो तो लेखक को बड़ा सावधान रहने की आवश्यकता होती है कि कहीं वह एक प्रचारक मात्र बनकर न रह जाए । ऐसा लगता है कि दुर्भाग्यवश रामकुमार इस गहन गर्त के प्रति सचेत नहीं रहे हैं और इसके फलस्वरूप प्रस्तुत कहानी अपेक्षतः एक घटना अधिक लगती है, जिसका उद्देश्य उन सामूहिक प्रयासों के महत्व का उपदेश देना है, जिसके परिणामस्वरूप बड़े बड़े महान् कार्य सम्पन्न होते हैं और जिनके अभाव में लोगों को मृत्यु और सर्वनाश तक का सामना करना पड़ता है । और कीचड़ पर अंकित पदचिह्न रामू की मृत्यु के लिये गांव वालों को धिक्कारते हैं और वे एक बांध बनाने का निश्चय करते हैं, केवल बाढ़ में चढ़ी हुई नदी के आक्रमणों से अपने बचाव के लिये नहीं अपितु एक श्रद्धाञ्जलि के रूप में, अपनी उस लापरवाही के लिये प्रायश्चित्त के रूप में, जिसके कारण रामू को वहुमूल्य प्राणों की आहुति देनी पड़ी है । भूतकाल से वर्तमानकाल का परिवर्तन नितान्त आकस्मिक और अखरने वाला है ।

डोगरी कहानी के क्षेत्र में 'पैरें दे नशान' रामकुमार का प्रथम प्रयास है । डोगरी गद्य-साहित्य और विशेषतः डोगरी कहानी की उत्पत्ति अभी कुछ समय पूर्व ही हुई है । किसी भाषा का

विकास उसके गद्य-साहित्य पर निर्भर होता है । डोगरी गद्य का स्वरूप अभी धुंधला है और कहानीकार को सहज और स्पष्ट शैली में अपने को अभिव्यक्त करने के लिये असंख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। रामकुमार अबरोल नगर के रहने वाले हैं और आप उर्दू में भी लिखते हैं। परन्तु रामकुमार की प्रमुख विशेषता चरित्र - चित्रण और सशक्त संवाद - योजना में है । आशा की जाती है कि अबरोल की भविष्य में लिखी गई कहानियां भाषा सम्बन्धी तथा बोझिल शैली के दोषों से मुक्त होंगो ।

नीलाम्बरदेव शर्मा (१९३१ . . . . :

नीलाम्बरदेव वस्तुत: अंग्रेजी तथा हिन्दी के कहानीकार हैं । आप अंग्रेजी के प्राध्यापक रह चुके हैं अत: आपके चिन्तन भावों तथा लेखन पर अग्रेजो की छाप होना स्वाभाविक हो है और आपकी हिन्दी तथा डोगरी कहानियों पर यह प्रभाव निश्चित रूप में विद्यमान है। नीलाम्बर महोदय का डोगरी की उन्नति और विकास के लिये चल रहे आन्दोलन के साथ घनिष्ठ सम्पक रहा है। आप जम्मू प्रान्त के पहाड़ी इलाकों में दूर दूर तक घूमे हैं । पार्वत्य क्षेत्रों के दृश्य-सौन्दर्य तथा वहां के लोगों के रीति-रिवाजों, उनके रहन-सहन के ढंग ने इन पर गहरी छाप छोड़ी है । और आप के लिये इन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम कहानो था ।

नीलाम्बर ने डोगरी में अधिक कहानियां नहीं लिखी हैं । आपकी भाषा नागरिक है जिसमें पंजाबी तथा हिन्दुस्तानो के शब्द घुलमिल कर एकाकार हो गये हैं। साठे, दीनू भाई, नरेन्द्र खजूरिया ललिता मेहता तथा विश्वनाथ खजूरिया द्वारा प्रयुक्त भाषा वह है जो ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है । कई दूसरे लोगों की भांति नीलाम्बर की भाषा नगरों में पले हुए तथा हिन्दुस्तानी से प्रभावित लोगों की भाषा है तथा आपकी शैली अन्तर्मुखी है ।

इनके शिल्प, वस्तु - विन्यास तथा शैली में अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्टत: देखा जा सकता है।

आपकी 'पहाड़े दी कहानी' पहाड़ी क्षेत्रों के सम्बन्ध में लिखी गई है तथा इसमें 'दोहरी' नामक विवाह का वर्णन है, जिसका जम्मू कांगड़ा तथा कुल्लू आदि क्षेत्रों में बहुत प्रचलन है। यह कहानी असमान विवाहों के दुष्प्रभावों को परोक्ष रूप में प्रकट करती है। एक लेखक एक गांव में जाता है तथा इसकी प्राकृतिक सुषमा का आनन्द उठाता है और जो विचार उसके मन में उभरते हैं उन्हें अभिव्यक्त करता है। उसे किसी बात की सुध नहीं रहती. यहां तक कि उस लड़की की ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता जो उसके इस व्यवहार से आतंकित है। शुरू में वह भय के कारण उससे दूर रहने का यत्न करती है पर फिर एक बार वह आती है और उसके बहुत पास बैठ जाती है वह जानना चाहती है कि वह क्या लिख रहा है ? वह उसे अपनी अपूर्ण कहानी सुनाता है: 'दोहरी अनुसार किये गये एक विवाह में एक लड़की एक बूढ़े के साथ ब्याह दी जाती है। उस समय केवल नौ वर्ष की होने के कारण वह अभी नहीं जानती थी कि विवाह क्या होता है? अब वह बड़ी और जवान हो गई है, उसका पति चालीस को पार कर रहा है और क्षय रोग से पीड़ित है। उसने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि उसे यह सब झेलना पड़ रहा है ? वहां दूसरे लोगों के विवाह बड़ी प्रसन्नता से सम्पन्न हुए हैं और वे अपना जीवन उन कष्टों के बिना व्यतीत कर रहे हैं जिन्हें उसे झेलना पड़ रहा है। यह सब क्यों हो रहा है? तब तक उसे इस अन्याय का आभास नहीं होता है जब तक कि उसकी भेंट एक युवक के साथ नहीं हो जाती, जिसके प्रति उसके मन में तुरन्त लगाव पैदा हो जाता है। वह क्या करे ? एक ओर समाज है और दूसरी ओर प्रेम, वह घबरा जाती है। कहानी कहने वाला रुक जाता है। 'इसके

आगे क्या होता है ?' वह अधीर होकर पूछती है । वह उसकी ओर देखता है, उसके गाल आंसुओं से भीग गये हैं । 'उसने अभी तक कहानी को पूरा नहीं किया है'—वह उत्तर देता है। 'क्या तुम ज्योतिषी हो ?' वह पूछती है । वह मुस्कराता है—'ऐसा क्यों ?' 'क्योंकि यह मुझे मेरी अपनी ही कहानी प्रतीत होती है।' लेखक घबरा जाता है । वह तुरन्त उसके आंसुओं का कारण समझ जाता है......वह जहां पर बैठी है वहां से तुरन्त उठ खड़ी होती है और ऊंचे स्वर में कहती है—'यह मेरी कहानी है, ओ अजनबी, यह मेरी कहानी हैं !' उसकी आवाज गूंजती है और उसे ऐसा लगता है मानो सारी पर्वत-शृंखला पुकार-पुकार कर कह रही हो—'यह मेरी कहानी है, ओ अजनबी, यह मेरी कहानी है !'

कहानी का अन्त एक समाधानात्मक मन:स्थिति में होता है, परन्तु इसके भीतर इस कुप्रथा की, सारे समाज की निंदा है जो इसे केवल सहन ही नहीं करता रहा है अपितु इसे प्रोत्साहन भी देता रहा है। लेखक की मन:स्थिति अनासक्ति-पूर्ण है; युवती बाला और उसके मानसिक द्वन्द्व का वर्णन आत्मचेतनापरक न होकर विषय-परकता से किया गया है । इस अनासक्ति से वर्ण्य-विषय में तीखापन आ गया है तथा इसने इसे एक मार्मिक अनुभूति बना दिया है । परन्तु इसमें भावुकता का समावेश नहीं है और न ही इसमें आलंकारिक चमत्कार है । कहानी अधूरी ही रहती है, क्योंकि ऐसी कुप्रथाएं अब भी विद्यमान हैं, इस प्रकार की नृशंसता का अभी अन्त नहीं हुआ है।

आपकी 'जेब कतरा' (पाकेटमार) में एक ऐसे व्यक्ति के मन का विश्लेषण किया गया है जो जेब काटने को विवश हुआ है, परन्तु अपने अन्तिम समय तक वह अपने भीतर मानवता के किसी

एक अणु को सुरक्षित रखता है। इसका अन्त, जोकि दुःखान्त है—विवादास्पद है। कुछ लोग उसे उसी क्षण मार डालने का विरोध करते हैं (बल्कि उसके ट्राम के नीचे जाकर मरने का भी) जब कि वह अपनी खोई हुई श्रेष्ठता को पुनः प्राप्त कर लेता है, इससे निरर्थकता की भावना आ गई है। दूसरे लोगों का विचार है कि इसका अन्त स्वाभाविक है, क्योंकि जीवन में सभी कुछ उसी प्रकार नहीं होता जैसा कि हम चाहते हैं। जो यह चाहते हैं कि उसे जीवित रहना चाहिये था, वे आदर्शवाद से आप्यायित हैं, परन्तु यथार्थ कभी कभी बड़ा कर्कश हुआ करता है। जब वह 'जेबकतरा' बनता है तब वह वस्तुतः मर चुका होता है; उन लोगों की धारणा है कि वह मरकर भी जी रहा है। इसकी पद्धति मनोवैज्ञानिक है, चरित्र-चित्रण—इसमें एक ही चरित्र है—स्वाभाविक है तथा भाषा सहज और सरल है।

आपकी 'भटकें दा मानूं' (भटका हुआ मनुष्य) भी पहाड़ों को लेकर लिखी गई है। यह कहानी अधिक नाटकीय हो गई है; इसमें अंग्रेज़ी तथा यूरोपीय साहित्य का प्रभाव पूर्णतः मुखरित हो गया है। यह पूछना औचित्यपूर्ण है कि क्या यह एक दोष नहीं है; क्योंकि इसके बीच के साहित्यिक संकेत एक साधारण पाठक के रसास्वादन में बाधक होते हैं; और कहीं कहीं वातावरण अत्यधिक रोमेंटिक होने के कारण सत्य प्रतीत नहीं होता।

आपकी 'त्रै भैनां' (तीन बहनें) तीन चरित्रों की तीन अवस्थाओं—किशोरावस्था, युवावस्था और अनुभव—का अध्ययन है। कहानी मनोवैज्ञानिक है क्योंकि यह तीन बहनों के एक ही उद्देश्य—प्रेम—को लेकर लिखी गई है, किन्तु इसके प्रति उनकी धारणा तथा प्रेम और जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण उनकी आयु और उनके अनुभव के अनुकूलित हैं।

आपकी कहानियां शिक्षित-वर्ग के लिए हैं; आपकी शैली साहित्यिक है और आपकी भाषा नागरिक है। अलबत यह एक ही साथ इनकी प्रशंसा और आलोचना दोनों है।

नरेन्द्र खजूरिया (१९३३ ....) :

नरेन्द्र खजूरिया प्रो० रामनाथ शास्त्री तथा श्री विश्वनाथ खजूरिया के अनुज हैं। इन दोनों ने डोगरी में डोगरी साहित्य के लिये बड़ा काम किया है। नरेन्द्र ने जीवन के कई उतार चढ़ाव देखे हैं और इस लिये आप दूसरों की वेदनाओं और कष्टों के प्रति समवेदनाशील हैं।

नरेन्द्र छोटे-छोटे गांवों के छोटे-छोटे स्कूलों में अध्यापक रह चुके हैं और इसलिये आपने अपना अधिकाश समय जनसाधारण से मिलने-जुलने, उनकी समस्याओं को समझने तथा उन्हें उनके प्रतिकार सुझाने में व्यतीत किया है। आपकी कहानियों में उन लोगों, उनकी ध्वनि, उनके स्वर की दृढता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक ही है। नरेन्द्र खजूरिया न तो वेद राही और मदनमोहन शर्मा की भांति, जो शहरों में बोली जाने वाली भाषा ही लिखते हैं, और न ही रामकुमार अबरोल को तरह ही लिखते हैं, जिनकी शैली कहीं कहीं बोझिल और कृत्रिम होती है। नरेन्द्र खजूरिया डोगरी भाषी जनसाधारण की बोलचाल की भाषा में लिखते हैं। आपकी शैली स्वाभाविक और संवादात्मक है, आपकी भाषा में ओज है, जिससे भगवतप्रसाद साठे की "पहला फुल्ल" वाली भाषा का स्मरण हो आता है।

नरेन्द्र उन लोगों के विषय में लिखते हैं, जिन्हें आप देख चुके हैं, तथा जिनसे आप मिल चुके हैं। आप उन्हीं बातों का विवेचन करते हैं जिन्हें आप भली भांति समझते हैं, और उसी वातावरण का चित्रण करते हैं जिससे आपका घनिष्ठ परिचय है।

अपनी कई कहानियों में आप ने बच्चों के विषय में लिखा है। ऐसा लगता है कि ये वही बच्चे हैं जो इनसे पढ़ चुके हैं, श्रेणी के कमरों में और उनसे बाहिर इनके साथ बातें कर चुके हैं। इसका परिणाम यह हुआ ह 'क इनके पात्र वास्तविक प्रतीत होते हैं आप के वर्णनों में प्रामाणिकता की छाप है और इनकी कला पर कला का मुलम्मा नहीं है। कला का मुलम्मा दिखाई न देना नरेन्द्र की कलागत परिपक्वता का परिणाम है।

१९५९ में प्रकाशित 'कोले दियां लकीरां' आपका प्रथम कहानी संग्रह है। इस संग्रह की पहली कहानी 'कोले दियां लकीरां' (कोयले की लकीरें) उस एक विचार का विकसित रूप हैं, जो आपको सूझा है और इसमें इस विचार के विस्तार के गुण-दोष विद्यमान हैं। नरेन्द्र को उपमाएं और रूपक प्रिय हैं। इनमें कुछ अति उत्कृष्ट और कुछ अनुपयुक्त हैं। इससे इनकी भाषा परिपुष्ट और परिपक्व बन पाई है, परन्तु कहीं कहीं यह अस्फुट हो जाती है तथा इसमें उतनी संक्षेपात्मकता नहीं रहती है। यह कहानी छुट्टी पर आये हुए एक सैनिक की है, जिसे वर्षा के कारण एक ऐसी जगह रुकना पड़ता है जहां पर एक जवान और सुन्दर लड़की है, जो उसी की कम्पनी के एक हवालदार के पास तीन सौ रुपये में बेची जाने वाली है। उसे यह सुनकर चोट पहुंचती है और वह अपने उस हवालदार मित्र से घृणा करने लगता है, जिसके लिये उसके मन में इससे पहले कुछ सम्मान की भावना थी। वह ऐसा जाहिर करता है कि उसे हवालदार ने उस लड़की को लेने के लिये भेजा है। मार्ग में, जब वह लड़की के साथ जा रहा होता है, वह लड़की के प्रति अपनी आसक्ति और उस हवालदार के प्रति, जिसे वह कभी अपना मित्र समझता था, बढ़ती हुई घृणा की भावनाओं के बीच बुरी तरह फंस जाता है। परन्तु जब उसे विदित होता है कि उस हवालदार ने अपने लिये उस लड़की को मोल देकर लेने का प्रबंध इस लिये किया

था कि उसके पास भी रहने को कोई स्थान—घर—हो, तो उसके प्रति उसकी घृणा की भावना आदर के रूप में परिणत हो जाती है। यह मोड़ कहानी में आश्चर्य का संचार करता है, परन्तु इसमें कई घटनाए साथ साथ घटती हैं। ये सबकी सब चौबीस घंटे के थोड़े से समय में घट जाती हैं, जिससे कहानी अस्वाभाविक प्रतीत होती है। शंकर का उस लड़की के घर में ठहरना, जिसे हवालदार द्वारा तीन सौ रुपये देने का वचन दिया गया है; हवालदार का शंकर ही की कंपनी का होना, बूढ़े और बुढ़िया के बीच उसी रात को बात चीत होना, जब शंकर वहां ठहरा हुआ है; शंकर का तीन सौ रुपये देना और शंकर तथा हवालदार की भेंट, ये सब की सब घटनाएं यत्न-निर्मित हैं। लेखक एक योजना-बद्ध अन्त के लिये सभी सूत्रों को हिला रहा है। अलबत वृद्ध के चातुर्यपूर्ण और पूर्वनिर्धारित, वृद्ध स्त्री के, जो कि दुनियादार है, शंकर के एकांतप्रिय और रोमेंटिक तथा लड़की के चरित्रों का निर्वहण सुचारु रूप में किया गया है।

'धरती दी बेटी' डोगरी के लेखक के रूप में नरेन्द्र खजूरिया की बहुमुखी प्रतिभा की परिचायक है। परन्तु इस कहानी में बहुत सी त्रुटियां हैं। इसमें आपने दो प्रकार का वातावरण प्रस्तुत किया है, एक ग्रामीण और दूसरा नागरिक। नरेन्द्र के ग्रामीण वातावरण के चित्र सुस्पष्ट और आकर्षक हैं परन्तु जब आप ऐसी बातों को चित्रित करने का प्रयास करते हैं, जिन्हें आप ने नहीं देखा है तथा जिनके साथ आपका नाम मात्र का परिचय है तो इससे खेदपूर्ण निराशा होती है। नरेन्द्र में दूसरी त्रुटि यह है; कि आप घटना-स्थल की ओर ध्यान नहीं देते हैं। प्रश्न उठा है कि इसका घटना-स्थल कौन सा है ? इसे हर एक गांव की कहानी बनाने के प्रयास में कहीं कहीं किसी भी गांव का वातावरण प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। यह अस्पष्टता एक त्रुटि है। कहावतों और उपमाओं के प्रयोग की बहुलता है,

जिनमें से कुछ अनुपयुक्त हैं। कहानी के रूप में 'धरती दी बेटी' एक सामान्य रचना है।

'परमेसरा दी करनी' (ईश्वर की इच्छा) भी किसी निश्चित घटना-स्थल के बिना ही है, यद्यपि नगर से रामनगर का भान होता है। जब श्रमिक-बालक कहता है कि वह नगर को जा रहा है, तो फिर वह आ कहां से रहा है? कहीं कहीं नरेन्द्र कालान्विति की ओर समुचित ध्यान नहीं देते हैं। और उपमाएं, जिनमें कुछ उत्कृष्ट भी हैं, कहानी के सामूहिक वातावरण के उपयुक्त प्रतीत नहीं होती हैं। 'परमेसरा दी करनी' में ग्राम्य वातवरण में रहने वाले एक ऐसे पिता का करुण चित्रण है, जिसका पुत्र जाता रहा है और जिसे वह अत्यधिक प्रेम करता था। वह एक स्कूल में अध्यापक था और सम्भवतः उसकी मृत्यु का कारण यह था कि उसे अपने जीवन से अधिक अपने काम की चिन्ता रहती थी। नरेन्द्र स्वयं भी एक अध्यापक थे और इस तथ्य के कारण विवरण में तीव्रता आ गई है, क्यों कि वक्ता—मृत पुत्र का पिता—उन्हें कहानी सुनाता है, क्यों कि वह जानता है कि उसके श्रोता की भांति उसका पुत्र भी एक स्कूल का अध्यापक था। ग्राम का दृश्य—वाचाल ग्रामवासी, जो दूसरों को अपमानित करने या उन्हें गालियां देने में अधिक प्रसन्न रहते हैं और बच्चे, जो उनके प्रति उसके प्रेम और लगन के कारण उसके (अध्यापक के) पक्ष में हो गए हैं—आदि का प्रतिपादन प्रभावजनक रूप में हुआ है।

दिनवार' जम्मू प्रान्त के पहाड़ी क्षेत्रों की एक प्रभावजनक कहानी है। नरेन्द्र खजूरिया ने उन लोगों—भूमिपतियों और साहूकारों—के जीवन का अध्ययन किया है, जो ऊपर से देखने में बड़े उदार और मृदुभाषी हैं परन्तु जो सदैव बेबसों का रक्तपान करने में तत्पर रहते हैं। नरेन्द्र मिथ्यादम्भो तथा गांवों के उन नृशंस और क्रूर लोगों की कड़ी भर्त्सना करते हैं, जिन्हें

समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है तथा जिन्हों ने भोले भाले ग्राम - वासियों के कष्टों के बल पर उन्नति की है। बज्जिया (भूमिपति) की क्रूरता का प्रभाव, उसका शिकार होने वालों की निपट सरलता के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है, जो सदैव उसके 'उपकार' के लिये उसके अत्यंत कृतज्ञ रहते हैं और जो सदा उनके सरल तथा ईमानदार स्वभाव और उनकी विवशता से अपनी स्वार्थ-साधना करने में तत्पर रहता है। पहाड़ी प्रदेशों में हमारे जीवन के इस पक्ष की दृष्टि से 'दिनवार' प्रथम कोटि की रचना है। पाठक इस कहानी को पढ़ता नहीं है अपितु उन क्षणों को जीता है। लेखक का रोष, यद्यपि संयम से प्रकट हुआ है, पाठक पर गहरा प्रभाव डालता है और मन में यह प्रश्न उठता है कि 'बज्जया' जैसे लोगों - भूमिपतियों-के दिन कब समाप्त होंगे जो 'भागाओं' और 'मुकरुओं' (बज्जया का शिकार होने वाले) को यातनाएं पहुंचाते हैं तथा पद-दलित करते हैं। यह उस समाज पर एक तीखा व्यंग्य भी है, जो न केवल इस सब को सहन ही करता है अपितु इस प्रपीड़न और अत्याचार का उपकरण भी बन जाता है। यह उन राजनयिक दलों के नाम पर एक कलंक है जो समानता और सामाजिक न्याय का दावा तो करते हैं परन्तु स्वयं इस विषमता और अन्याय का मूल कारण बने हुए हैं। नरेन्द्र इन छलनाओं का अनावरण करते हैं। प्रश्न केवल यह उठता है कि इसके आगे क्या हो ?

इसमें कुछ उत्कृष्ट वर्णन हैं, कुछ रोमेंटिक क्षण हैं। भागां और सुनीतू विषयक दृश्य, भागां और पटवारी के बीच वार्तालाप, मगर के समान बज्जया—सजीव चरित्र हैं, क्यों कि भाषा—लेखक का दृढ़तम माध्यम—सप्राण और सशक्त है। नरेन्द्र की सफलता का कारण यह है कि आप वर्ण्य-विषयों को खण्ड-खण्ड नहीं करते अपितु सब के सन्मुख समाज के वास्तविक पक्ष को अनावृत करते हैं, जो कुरूप और कलुषित है, यद्यपि इस पर कृत्रिमता और

प्रवंचनाओं का आवरण चढ़ा हुआ है। मां और शिशु विषयक दृश्य वस्तुतः मार्मिक हैं और करुणा की इस भावना से पाठक को सामाजिक व्यवस्था के प्रति गहरी निराशा हो जाती है : ऐसी बातें हों ही क्यों ?

परन्तु कहानी में भागां की मूर्च्छा के समय उसकी अनुभूतियों के विस्तृत विवरण से पाठक कुछ निश्चय नहीं कर पाता। क्या यह सांकेतिक है, स्वप्नवत् है अथवा भ्रान्तिपूर्ण है ?

'एह हस्सदे बस्सदे लोक' पारिवारिक दुःख- सुख - विषयक एक सुपरिचित समस्या को लेकर लिखी गई है। वेद राही ने अपनी कहानी 'भैनू दा घर' में नागरिक तथा ग्राम्य जीवन की विषमता प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। मदनमोहन ने 'सकोलड़े' लिखी है जिसमें उन्होंने दो युगलों, उनके जीवन, ग्रामीण तथा शहर के वातावरण के जीवन की विषमता दिखाई है। नरेन्द्र ने दो प्रकार के जीवन को प्रदर्शित किया है; दरिद्र लोग अपनी निर्धनता के बावजूद प्रसन्न रह सकते हैं; जबकि धनी लोग विपुल धीन-वैभव होते हुए भी दुःखी रहते हैं। प्रसन्नता उतनी मात्रा में जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है जिननी मात्रा में यह एक बौद्धिक अवस्थिति है। यह दृष्टिकोण इनकी 'धरती दी बेटी' तक में भी स्पष्ट हुआ है। यहां निर्धन पत्नी प्रसन्न है, क्योंकि उसका पति उससे प्यार करता है और वह उसे प्रसन्न देखकर उसे प्रसन्न रखने में खुश है। उनके संबंधी दुःखी हैं, क्यों कि वे सब तरह से सम्पन्न हैं, पर उनके मन असंतुष्ट हैं। यह एक अत्यन्त साधारण कोटि का विषय है और नरेन्द्र की विषमता प्रदर्शित करने का सचेतन अथवा असचेतन प्रवृत्ति का कोई श्रेष्ठ परिणाम नहीं निकला है।

'फुल्ल बनी गे ङ्गारे' में नरेन्द्र अपने वर्णन-कौशल तथा

अनुभूतियों और भावनाओं को प्रभावशाली ढंग से निरूपित करने के लिये भाषा को माध्यम के रूप में प्रयुक्त करने की अपनी अधिकार पूर्ण क्षमता को प्रदर्शित करते हैं। कहानी का नन्हा नायक फ़क़ीरचन्द नरेन्द्र जी के अनेकों शिष्यों में से एक है, जो आपकी लेखनी द्वारा पुनः जी गया है। श्रेणी के कमरे के वातावरण को विश्वसनीय रूप में चित्रित किया गया है। इसमें बच्चे अपनी तुरन्त उत्तर देने की क्षमता, अपनी इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के साथ हमारे सामने आते हैं। आपकी रचनाओं में कहीं कहीं स्कूल का अध्यापक प्रमुख हो गया है, पर अन्यथा नरेन्द्र अपेक्षतः अधिक नियन्त्रित और और अलग-थलग रहे हैं। संवादों में हल्का व्यंग्य है: अध्यापक अपने छात्रों को शिक्षा देते हैं, परन्तु जहां वे बड़े बड़े नेता, अधिकारी अथवा मन्त्री बन जाते हैं वहां बेचारा अध्यापक बस अध्यापक ही रहता है। और विडम्बना यह है कि छात्र अध्यापक को छोड़ और सब कुछ बनना चाहते हैं। छात्र भले ही ऐसा न चाहते हों परन्तु स्कूल अध्यापक नरेन्द्र का यही अभिप्राय है। फ़कीर चन्द की कहानी ऐसे अनेकों बच्चों की कहानी है जिनके माता-पिता ऋण में ही जीते हैं और ऋण में ही मर जाते हैं और जो इस व्यवस्था का अन्त करने के लिये कड़ा संघर्ष करते हैं किन्तु अन्त में स्वयं इसके शिकार हो जाते हैं। अन्त में वे कंगाल हो जाते हैं, उनकी आशाएं चूर चूर हो जाती हैं और उनकी अभिलाषाएं कुचली जाती हैं। कहानी का वर्ण्य-विषय जाना-पहचाना है जिसे पाठक नरेन्द्र की 'दिनवार' शीषक कहानी में पहले ही देख चुके हैं। ऋण का ब्याज चुकाने के लिये मां अपने छोटे बालक को भूमिपति के हवाले कर देती है, और यही पिता, जिसकी पत्नी बीमार है अपनी इच्छा के प्रतिकूल, अपने बेटे को दुकानदार की नौकरी करने लिये विवश करता है, क्योंकि वह उसका कर्जदार है। नरेन्द्र इस बात की पुनरावृत्ति करते हैं। निस्संदेह इस क्रूरता को जिसके द्वारा ये अबोध कुचले जाते हैं, जिससे ये छोटी आयु में ही बूढों से दिखाई

देने लगते हैं, नरेन्द्र ने बड़े उत्कृष्ट ढंग से चित्रित किया है। नरेन्द्र स्वयं उन पीडितों जैसे ही बन जाते हैं, उनके साथ साथ यह सब कुछ झेलते हैं, और यद्यपि आप अपने सम-दुःखियों के लिये कोई ठोस कार्य नहीं कर पाते हैं, पर इस अभाव की पूर्ति आप अपनी रचनाओं द्वारा कर देते हैं। आपके मन को चोट पहुंचती है, और आप इस क्रूरता के लिये उत्तरदायी लोगों पर सीधा प्रहार करते हैं। दुकानदार का चरित्र, जो ठंडा और उपेक्षापूर्ण है, किन्तु जो अपना स्वार्थ सामने देखकर बड़ा स्नेह जताता है; फ़क़ीर चन्द जो कि सुन्दर सुडौल छात्र है, जिसे जीवन में उन्नति करने की उत्कट इच्छा है परन्तु जो अपनी दशा को बदलने में असमर्थ रहता है और जो अन्याय की चक्की का एक और शिकार बन जाता है—बड़े सजीव चत्रिर हैं। ये सब व्यक्ति-विशेष नहीं रह जाते, ये विभिन मूल्यों के विभिन्न दृष्टिकोणों और परिस्थितियों के प्रतीक बन जाते हैं। इस पर भी पुराने प्रतिबन्ध शक्तिशाली साबित होते हैं; निश्छलता पर क्रूरता की विजय होती है और सूदखोरी कई घरों का विनाश कर देती है।

'खीलां छोले' नरेन्द्र की एक और कहानी है, यद्यपि इसे प्रस्तुत संग्रह में शामिल नहीं किया गया है। यह भी कौटुम्बिक समस्याओं, दारिद्रय और जवान बेटी का योग्य वर से विवाह करने में असमर्थ रहने आदि समस्याओं को लेकर लिखी गई है।

नरेन्द्र खजूरिया सामाजिक विषयों के लेखक हैं और आपकी अधिकांश कहानियों में घरेलू जीवन का दृश्य अन्य सभी दृश्यों पर छाया रहता है। आपका आलेख्यपट वस्तुतः सीमित है, इसमें वेद राही अथवा मदनमोहन जैसी विविधता और विस्तार नहीं है, परन्तु इन सब में कोई भी इनकी शैली तथा इनके भाषागत अधिकार से होड़ नहीं ले सकता। कुछ हिन्दी शब्द बीच में आगये हैं जो उपयुक्त

नहीं लगते पर फिर भी ग्रापकी ग्रभिव्यक्ति में वह प्रसाद-गुण है जो डोगरी गद्य के बहुत से लेखकों में उपलब्ध होता है। नरेन्द्र प्राय: ग्रामीण वातावरण के संबध में लिखते हैं, यह वह वातावरण है जहां ग्राप रहते हैं तथा जिसे ग्राप भली भांति समझते हैं। लोगों की बात-चीत को ग्राप ध्यान से सुनते हैं तथा उनके स्वर ग्रौर उनकी ध्वनि को स्मरण रखते हैं तथा उसे सजीव रूप में ग्रभिव्यक्त करते हैं। यह एक विशिष्टता है। आपकी शैली वस्तुत: नाटकीय है; ग्रापके पात्र ग्रपने आपको कथोपकथन द्वारा प्रकट करते हैं। पर कहीं कहीं लेखक हमारे लिये उनका वर्णन करता हैं। दूसरी स्थिति में थोड़े से विस्तृत प्रयास उन्हें सजीव रूप में दर्शाने के लिये पर्याप्त हीं होते हैं।

नरेन्द्र ग्रपनी बात की पुनरावृत्ति करते हैं परन्तु इनकी शैली ग्रौर ग्रभिव्यक्ति विविधता लिये हुए है। कुछ कहानियों में इनका शिल्प—वस्तु - विन्यास—ग्रधिक विकसित नहीं हो पाया है ग्रोर न ही ग्रापकी कहानियों में ग्रधिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही हो पाया है। ग्रापकी कला मूलत: एक कहानो सुनाने वाले की कला है ग्रौर इसमें ग्राप ने ग्रपनी विशिष्टता को प्रमाणित किया है।

नरेन्द्र की तीन कहानियां वेद राही ग्रौर मदनमोहन शर्मा की तीन-तीन कहानियों के साथ प्रकाशित हो रही हैं। ग्रापने डोगरी में एक लघु-उपन्यास 'शानो' भो लिखा है, जो अभी कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हुआ है। ग्रपनी केवल इन कृतियों द्वारा ही नरेन्द्र जी ने डोगरी के गद्य-लेखकों में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

वेद राही (१९३३ ....) : वेद राही वस्तुत: गद्य लेखक हैं; यद्यपि आपने उर्दू तथा डोगरी

में कविताएं और ग़ज़लें भी पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं। यह कहना सरल नहीं है कि वेद राही मूलत: उर्दू के लेखक हैं, क्योंकि गत चार पांच वर्षों में आप डोगरी में कविताएं, कहानियां एक नाटक 'धारें दे अथ्रू', एक उपन्यास तथा आधुनिक डोगरी - काव्य और इसके कवियों पर एक आलोचनात्मक पुक आदि इतना कुछ लिख चुके हैं कि इसके द्वारा आपने डोगरी साहित्य में अपने लिये एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है। डोगरी में आने से पूव वेद राही उर्दू के लेखक थे। राही महोदय को उर्दू तथा हिन्दी का बहुत अच्छा ज्ञान है और आपने इनके साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियों का अध्ययन किया है। राही बड़े परिश्रमी हैं। इनकी शैली सम्पन्न है तथा इनमें सूक्ष्म-निरूपण की क्षमता है। इनकी शैली एक मनोवैज्ञानिक की है। इनके पात्र अपने आपको उतना कथोपकथन द्वारा प्रकट नहीं करते हैं जितना कि इनके ब्योरों और विवरण देने की पद्धति द्वारा। वेद राही एक विचार को लेकर लिखना आरंभ करते हैं तथा आपकी प्रत्येक कहानी में उसी एक विचार का विस्तार रहता है। शैली, संवाद और भाषा आदि सभी तत्व उसी विचार को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि राही एक प्रचारक हैं। आप इससे बहुत दूर हैं। परन्तु आप एक चेतनाशील लेखक हैं। आपको पता रहता है कि आप क्या करने जा रहे हैं। यही चेतनाशीलता इनकी त्रुटियों और इनकी सफलताओं का मूल स्रोत है। क्योंकि जहां आपका माध्यम असफल रहता है वहां आपके विचार को भी क्षति पहुंचती है और इस प्रकार वहां पर आपकी कला में भी दौर्बल्य आ जाता है।

आपका डोगरी कहानी संग्रह डोगरी के गद्य-साहित्य में एक अभिनन्दनीय अभिवृद्धि थी, जो उस समय अत्यन्त न्यून मात्रा में था और मदनमोहन शर्मा तथा दूसरे लोगों के साथ विश्वनाथ खजूरिया जैसे डोगरी के गद्य लेखकों ने आप का अभिनन्दन किया

था। वेद राही की कहानियों में हमें डुग्गर के जनजीवन, उन के हास्य तथा उनके ग्रांसुग्रों की, उनकी आशाग्रों ग्रौर निराशाग्रों की झलक देखने को मिलती है, उनके दारिद्रच का मार्मिक वर्णन मिलता है, यद्यपि उनके ग्रास ग्रास प्राकृतिक सौन्दर्य का अक्षय भण्डार होता है ।

वेद राही की कहानियों को चरित्रप्रधान कहानियों की कोटि में रखना उपयुक्त होगा, यद्यपि ग्रापके चरित्रों का जन्म एक विचार - विशेष से होता है। 'मुन्नुग्रां दा कुर्ता' में (मुन्ने का कुर्ता) एक खासी ग्रधेड ग्रवस्था की स्त्री का चित्र प्रस्तुत किया है, जोकि बच्चों से प्यार करती है, पर उनसे इस लियें दूर रहती है कि वह विधवा हो चुकी है ग्रौर वैधव्य दुर्भाग्य का प्रतीक है । इस लिये वह नहीं चाहती है कि दुर्भाग्य की छाया जो उसके सिर पर मंडरा रही है, कहीं उन पर पर ग्रपना दुष्प्रभाव न डाल दे । उसका विचित्र व्यवहार, जो वैसे देखने में हमें शिशुग्रों के प्रति उसकी घृणा के रूप में दृष्टिगत होता है, वेद राही द्वारा समुचित रूप में चत्रित किया गया है तथा उसका समाधान भी किया गया है । तवी का वर्णन हमारे सन्मुख एक धर्मिष्ठा स्त्रो का चित्र उपस्थित करता है जो भोर ही में उपरोक्त नदी पर जाती है । इस प्रकार का स्थानीयता का रंग राही की पैसा ते मजदूर' जैसी कई दूसरी कहानियों में भी दृष्टिगत होता है । परन्तु इसमें ग्रसंगतिपूर्ण ग्रौर खटकने वाली बात है एक ऐसे व्यक्ति द्वारा बुग्रा की सुन्दरता का वर्णण जो ग्रपने को उस का भतीजा कहता है । प्रस्तुत वर्णन एक प्रेमी द्वारा किया गया प्रतीत होता है : उसकी दंत-पंक्ति, जो उसके ग्रखरोट की दातुन करने से लाल लाल होंटों में से झलकती है, बहुत सफेद है ग्रौर चमचमा रही है। उसके नेत्र ग्रर्ध-निमीलित हैं ग्रौर उसके कपोलों पर गुलाबी रंग की छाप है ।*

---

*मुन्नुग्रां दा कुर्ता

आप की भाषा डोगरी पंजाबी और उर्दू का सम्मिश्रण है। मुहावरा उर्दू का है, और यह इस लिये हुआ है कि राही उर्दू के निकट हैं और इनके भावों में इस के प्रभाव का समावेश अनायास ही हो जाता है।

'तातो होर' भी एक ही विचार के आसपास घूमती है; किस प्रकार वे लोग, जो तातो के संबंधी अथवा उसके पड़ोसी हैं, उससे आतंकित रहते हैं और तातो किस तरह उन्हें चतुराई और मनोवैज्ञानिक ढंग से छलता है, क्योंकि वह धनाढ्य समझा जाता है, जैसा कि इस कहानी में दिखाना राही को अभीष्ट है। यह एक अच्छा विचार है, यह मानव मन की भीतरी इच्छाओं को अभिव्यक्त करता है। परन्तु राही इस विचार विशेष में इतने लीन हो गये प्रतीत होते हैं कि आप इस विचार को अभिव्यक्त करने के माध्यम—भाषा—को भूल गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पढ़ने में 'तातो होर' अरोचक लगती है। थोड़े से पृष्ठ पढ़कर ही पाठक को संदेह होने लगता है कि तातो के धनाढ्य होने की कल्पना एक मजाक है जिसकी सृष्टि तातो ने दूसरे लोगों को आतंकित करने के लिये स्वयं की है। और जब हम इसी वास्तविकता से अवगत होते हैं तो इसके प्रकट होने पर हमें कोई अचम्भा नहीं होता, यह बात सम्भावित रूप में हमारे सम्मुख आ जाती है। पहली बात, जिससे पाठक प्रतीति और यथार्थ के बीच की विषमता के प्रति सचेत हो जाता है, इस कहानी के प्रारंभिक वाक्य हैं : 'तातो एक बार पहले भी मर चुके हैं, आप पूछेंगे पहली मौत तथा दूसरी मौत से क्या अभिप्राय है ?''* जब तातो की सम्भावित धनाढ्यता, जैसा कि लोग उसे समझते थे, पर लेखक द्वारा इतना अधिक बल दिया जाता है, तो इससे हमें लेखक के आशयपूर्ण होने का संदेह होने

*'तातो होर'—देखिये 'काले हत्थ'

लगता है और हम अपने को इस भुलावे में आने के लिए तय्यार कर लेते हैं और इस तरह हम वस्तुतः इस भुलावे में नहीं आते हैं। तातो के व्यक्तित्व के आस-पास इस अनिश्चय पूर्ण वातावरण का निर्माण करने और उसके धन की मिथ्या कल्पना की सृष्टि करने की दिशा में स्वयं राही का यह प्रयास ही इस संदेह के निवारण का कारण बन जाता है। और इस तरह कहानी की समाप्ति पर कोई आश्चर्य नहीं होता। हां, तो भी तातो का चरित्र-चित्रण बहुत अच्छा हो पाया है, क्योंकि जहां लेखक अपने पाठकों को भुलावे में डालने में समर्थ नहीं हो पाया है वहां तातो अपने सम्बन्धियों, मित्रों तथा जान-पहिचान वालों को छलने में सफल रहा है, और इसी में कहानी को आंशिक सफलता प्राप्त हुई है।

आप की 'छिट' पर्याप्त मनोरंजक है। इस में चार व्यक्तियों का अध्ययन है: दो स्त्रियां और दो पुरुष, एक जोड़ा विवाहित है और दूसरा अविवाहित। अविवाहित लड़की कान्ता बहुत शरारती और कपटी प्रसिद्ध है और बड़बड़ाती रहती है। वह एक अध्यापक की शिष्या है, जिसकी पत्नी डरती है कि कहीं कान्ता उसके सरल-स्वभाव पति को कहीं फुसला न ले क्योंकि वह एक 'छिट' (शरारती) है। वह अपने पति को अपनी दुश्चिन्ता के प्रति सावधान कर देती है। वह उसे हंस कर टाल देता है। अगले दिन मास्टर जी कान्ता को पढ़ाने जाते हैं। वह एक चौंका देने वाली बात सुनाती है: मास्टर जी का साला मदन उसके आया और बातों ही बातों में झगड़ा होने पर कहने लगा कि वह उसे अपनी पत्नी बना लेगा। तब उसने उसे उत्तर दिया कि वह उसकी तनिक भी परवाह नहीं करती है, वह मास्टर जी के साथ विवाह करना पसंद करेगी। मास्टर जी भौंचक रह जाते हैं और अपने स्थान से उठते हैं और अपने घर चले जाते हैं। उनकी पत्नी वस्तुतः ठीक ही कहती थी। पर उसने ऐसा सोचने का साहस कैसे किया? उनकी पत्नी को उन्हें

देख कर आश्चर्य होता है और वह उन्हें वह समाचार सुनाती है जिसे वह पहले बताना भूल गई थी। कान्ता ने उसके भाई मदन को लिखा है कि वह उससे प्यार करती है और उसके साथ विवाह करना चाहती है। मास्टर जी का सारा क्रोध और भय दूर हो जाता है और वह बाहिर जाने लगते हैं। 'कहां ?' पत्नी पूछती है। कान्ता को पढ़ाने' वह उत्तर देते हैं।

कान्ता और मास्टर जी के चरित्र वास्तविक और सजीव हैं, इनमें विषमता दृष्टिगत होती है। इनमें से एक उतना ही चालाक है जितना कि दूसरा सरल-स्वभाव का है; परन्तु वस्तुतः दोनों ही अच्छे स्वभाव के हैं। कान्ता के शब्दों पर. कि वह उनके साथ विवाह करना चाहती है. प्रसन्न न हो कर तथा अपनी पत्नी द्वारा इस बात की सूचना मिलने पर कि कान्ता मदन से प्यार करती है, चोट खाने अथवा आहत होने की बजाय वह एक प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा कर्तव्यनिष्ठ पति की भांति व्यवहार करता है। उसे इस बात का खेद नहीं है कि एक शरारती लड़की ने उसे मज़ाक में बुद्धू बनाया है। इस तथ्य के बावजूद कि वह एक बुद्धू सा दिखाई देता है, इससे वह हमारी दृष्टि में ऊंचा स्थान पा जाता है। कान्ता भी वस्तुतः सीधी सादो है, और इस शरारतीपन का कारण उसकी चंचल और मनमौजी प्रकृति है। कहानी हास्य की स्थिति का निर्माण करने तथा उसका सफलतापूर्वक समाधान करने में कामयाब हुई है।

आपकी 'भैनूं दा घर' यद्यपि ग्राम्य तथा नागरिक जोवन की विषमता प्रदर्शित करने के उद्देश्य से लिखी गई है, एक कृत्रिम और भरती की कहानी प्रतीत होती है। प्रो० रामनाथ शास्त्री ने भी एक ऐसे ही विषय को लेकर 'बरोबरी' (समानता) नामक कहानी लिखी है। गांव और शहर की दुनिया को अलग करने वाली एक बहुत बड़ी खाई है। पर क्या यह ऐसा करती

है ? आखिर यह कोई इतनी बड़ी खाई नहीं है कि जिसे पाटा नहीं जा सकता। प्रस्तुत संदभ में लेखक के मन में एक ऐसी खाई है जिसे वह पाटना नहीं चाहता, क्योंकि इसके अभाव में इसकी कहानी सफल नहीं हो सकती है। एक छोटे बालक का अपनी बहन के लिये प्रेम, जिसका विवाह हो चुका है और जो शहर में रहती है, इन दो जीवनों की विषमता दिखाए बिना भी अपने आप में स्वयं एक विषय हो सकता था। विवाह जो उसके वहन के वियोग का कारण बनता है, इसे अपने आप में एक कहानी के रूप में ढाला जा सकता था, क्योंकि अब, इस नये वातावरण में, अपने पति तथा अपने देवर के प्रति प्रेम में वह उसे भुला बैठी हैं और इस अभाव पर उसका शोकाकुल होना न्यायसंगत है। परन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका हैं, राही की कहानी एक विचार से विकसित होती हैं, और जहां पर आप अपने विचार को एक परिष्कृत विषय वस्तु में परिवर्तित नहीं कर पाते हैं, वहां आपकी कहानी प्रभावजनक नहीं बन पाती।

इनकी 'लहरां' एक अत्यन्त साधारण कोटि की कहानी है, यद्यपि दो स्त्रियों, उनके पतियों तथा उनके बच्चों की चित्र-रचना बड़ी सप्राण है। कहानी में किंचित् भी मौलिकता नहीं है; और इस प्रकार की अनेकों कहानियां हिन्दुस्तानी में रेडियो के लिये लिखी जा चुकी हैं। 'पैसा ते मज़दूर' (पैसा और मज़दूर) समाज के विभिन्न वर्गों की दो स्त्रियों तथा एक पिता की कहानी हैं जो स्वयं तो एक मज़दूर है परन्तु अपने बेटे को शिक्षित बनाना चाहता है। परन्तु आश्चर्य इस बात से होता है कि संक्षेप में इस कहानी को लिखने का उद्देश्य क्या था ? मज़दूर अपने पुत्र को धनलाभ के लिये काम करने को मना करता है, वह उसे पढ़ने के लिये प्रेरित करता है। परन्तु एक बार जब वह अपने पुत्र को बिना किसी मज़दूरी के एक टोकरा उठाए हुए देखता है तो उसे पीटता है। किस लिये ? क्योंकि वह शोषण का शिकार हो रहा था।

ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है कि राही को अपने आशय को अभिव्यक्त करने के लिये भाषा पर वैसा अधिकार नहीं है और इस प्रकार जहां पाठक को इनके इस आशय का धुंधला सा आभास होता है, वहां लेखक द्वारा इसे समुचित रूप में प्रकट नहीं किया गया है । आपकी 'काले हत्थ' (काले हाथ) नामक कहानी, जोकि पुस्तक का नाम भी है, राही की इस त्रुटि को पाठकों के सन्मुख स्पष्टतः प्रकट करती है । पाठक 'काले हत्थ' के महत्व को समझने में असमर्थ रहता है । वे क्यों काले हैं ? क्या वे रोग ग्रस्त हैं ? उन पर घाव के निशान हैं अथवा वे जले हुए हैं ? अथवा क्या वह स्वयं काली है ? सभी विवरणों से कहानी का सर्वप्रमुख चरित्र डाक्टर निशा, सुन्दर प्रतीत होती हैं । केवल वही अपने हाथों के काला होने का संकेत देती हैं । क्या उनका कोई सांकेतिक अर्थ है, जिसे कहानी बताती है परन्तु जो पाठकों के अनुमान से बाहिर है ? राही का उद्देश्य यह दिखाना है कि वह अपनी कुरूपता के कारण उस व्यक्ति के साथ विवाह करने में असफल रहती है जिसके साथ उसकी सगाई हो चुकी है और जो उसे छोड़ उसकी बहन के साथ विवाह कर लेता है। यह एक ऐसी कहानी है जिसे पढ़ कर बड़ी निराशा होती है क्योंकि इसमें लेखक की धारणा तथा उसके निर्वहण के बीच एक बहुत बड़ी खाई है। सब से बड़ी त्रुटि डा० निशा तथा डा० गुप्ता के संवादों में प्रकट हुई हैं :

निशा : 'ये हाथ कैसे हैं ?'
डा० गुप्ता : "बड़े सुन्दर हैं ।"
निशा : तुम झूठ करते हो, 'ये हाथ काले हैं ।'
डा० गुप्ता : 'परन्तु इन हाथों में किसी के प्राण बचाने की क्षमता है ।'
निशा : 'और किसी के प्राण लेने की सामर्थ्य भी है ।'

डा० निशा बात काटते हुए कहती है ।
'मैं नहीं समझता' डा० गुप्ता कहते हैं ।

और न पाठक की ही समझ में आता है । पाठक के मन में सर्वप्रथम यह विचार उभरता है कि उसने किसी की हत्या की है और इस लिये वह यह समझता है कि एक 'काला काम' करने के कारण उसके हाथ काले हो गए हैं । क्या 'मेकबेथ' भी ऐसी ही बातें नहीं सोचता ? उसके हाथ डङ्कन के रक्त से लाल हैं । ऐसा तो सांकेतिक अर्थ लगाने से ही हो सकता है अथवा पहले कभी आपरेशन करते समय उसके हाथों किसी के प्राण चले गये हों, उसी प्रकार जैसे उसने अभी किसी के प्राण बचाए हैं । और पाठक के मन पर पड़ने वाले आघात का अनुमान लगाइये कि जब उसे पता चलता है कि उसके हाथ कहने भर ही को काले थे । परन्तु हाथों पर इतना बल किस लिये दिया है ? उस दशा में तो उसकी सारी देह, उसका मुख तक काला होता ।

कुछ भी कहें, प्रस्तुत कहानी संग्रह डोगरी के गद्य-साहित्य के समृद्ध करने की दिशा में राही का एक साहसपूर्ण कदम है। राही का शिल्प विकसित है, और जहां तक वस्तु विन्यास और शैली का संवन्ध है, इन्होंने उर्दू 'अफसाना' से बहुत कुछ सीखा है। आपका अलेख्यपट डोगरी के अन्य लेखकों से अपेक्षतः कहीं अधिक सुविस्तृत है। अलबत डोगरी में आपको अधिक कड़ा परिश्रम करना है, क्योंकि कहीं कहीं आपकी भाषा त्रुटिपूर्ण हो जाती है और कहीं कहीं आपका वाक्य-विन्यास अशुद्ध होता है । यह दोष आपकी सबसे बड़ी दुर्वलता सिद्ध हुई है, क्योंकि एक असंतुलित वाक्य न केवल अभिप्राय को ही क्षति पहुंचाता है अपितु इसके अर्थ के प्रकटीकरण में भी बाधक होता है।

अपनी कहानियों में राही एक नाटकीय लेखक नहीं हैं क्योंकि इनमें चरित्र बहुधा न तो व्यापारों द्वारा और न ही कथोपकथन द्वारा प्रकट होते हैं अपितु वस्तुतः वर्णन और विवेचन

द्वारा उनका अनावरण होता है । परन्तु उनके वर्णन को राही मनोवैज्ञानिकता से अनुप्राणित कर देते हैं। यद्यपि पाठक आपकी कहानियों में आपकी मनोवैज्ञानिक धारणा के प्रति सर्वदा निश्चित नहीं होते, क्योंकि जब लेखक शायद' 'कदाचित्' 'मैं नहीं जानता' 'किन्तु......' आदि का बार बार प्रयोग करता है तो ज़रूरी नहीं कि वह इनके द्वारा मानव मन के उद्देश्यों अथवा विचारातीती बातों को अनावृत करता है। इसमें लेखक की अपने मनको संक्षेप में जानने की भावना अपने अभीष्ट को प्रकट करने में उनकी असामर्थ्य हो सकती है । इस अक्षमता से राही बहुत थोड़े स्थलों पर बच सके हैं। इससे अस्पष्ट रहने की इच्छा और जानबूझ कर एक ऐसे वातावरण का सृजन करने के प्रयास का भी सकेत मिलता है जो अन्त में जाकर प्रभावित करने में असफल रहता है ।

परन्तु यह सब कहने का उद्देश्य राही के महत्व को किसी तरह भी घटा कर दिखानी नहीं है, क्योंकि ये कहानियां डोगरी में आपकी अन्तिम कृतियां नहीं हैं । और राही एक अच्छे छात्र भी हैं जो अपनी त्रुटियों को बहुत जल्दी सुधार लेते हैं । आपके डोगरी में एक उपन्यास लिखने से इस बात का संकेत मिलता है कि आपको विदित है कि आपके सन्मुख एक सुविस्तृत क्षेत्र है और प्रस्तुत संग्रह आपकी कला को प्रौढतर बनाने की दिशा में एक प्रयास है। अपनी कहानियों में इन त्रुटियों के रहते भी राही ने 'मल्लाह बेड़ी ते पत्तन' (मांझी, नाव और घाट) नामक एक उपन्यास लिख कर, जो शैली तथा भाषा की दृष्टि से अपेक्षितः अधिक विकसित है, अपने पाठकों को आश्चर्य में डाल दिया है।

मदनमोहन शर्मा (१९३४..,.......) : वेद राही तथा रामकुमार अबरोल की भांति मदनमोहन शर्मा भी उर्दू के मार्ग से डोगरी में प्रविष्ट हुए हैं । मदनमोहन ने उर्दू में

कहानियां लिखना तभी आरंभ कर दिया था जब आप अभी कालिज के छात्र थे । परन्तु आपने महसूस किया कि आपके लिये अपने भावों को अपनी मातृभाषा डोगरी में अभिव्यक्त करना अपेक्षतः सरल तथा श्रेयस्कर है। परन्तु अपने ऊपर पड़े हुए उर्दू के प्रभाव को पूर्णतया समाप्त करना इनके लिये असंभव था। इच प्रभाव के चिन्ह आपकी अधिकांश कहानियों में देखे जा सकते हैं।

मदनमोहन के गद्य का सबसे अधिक उल्लेखनीय गुण इसकी अजस्र प्रवाहशीलता है। आपका पुनरावृत्ति का स्वभाव हमें 'देफ़ो' का स्मरण दिलाता है। आपके गद्य की अबाध गति आश्चर्य में डाल देती है, यद्यपि आपका डोगरी शब्दावली का ज्ञान सीमित है तथा आपकी रचनाओं में हिन्दुस्तानी शब्दों तथा मुहावरों का समावेश हो गया है। और मदन जी के दुर्बल और सबल पक्ष 'देफो' के समान हैं। उन्हीं की भांति आप भी, उस बात को, जिसे थोड़े से शब्दों में कहा जा सकता है, विस्तारपूर्वक कहने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते । तथा छोटी छोटी बातों का बड़ा ठीक ठीक और विस्तृत विवरण देते हैं, जबकि इसके संचयित प्रभाव से पाठक भौंचक रह जाता है । कहीं कहीं यह प्रभाव चिढ़ाने और उकताने वाला हो गया है, क्योंकि आपकी कहानियों से अनावश्यक तत्व तथा उक्ति की वक्रता की बहुलता है। और यह देख कर आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रहा जा सकता कि आप सक्षिप्त और उद्देश्यनिष्ठ क्यों नहीं रह पाते हैं।

परन्तु आवश्यकता से अधिक कहने की आपकी यह प्रवृत्ति आपका सबसे बड़ा गुण भी है क्योंकि इसी में हास्य का तत्व विद्यमान है, जो एक साथ ही मदन शर्मा की कहानियों में दृष्टिगत होता है।

मदन मोहन की प्रतिभा एक वाचक की प्रतिभा है। अपने जादूभरे वर्णनों द्वारा आप किन्हीं सुन्दर दृश्यों का सृजन नहीं कर पाते हैं। मानव मन के रहस्यों की गवेषणा आप बहुत कम अवसरों पर कर पाये हैं, और न आपने अति उत्कृष्ट तान छेड़ने का प्रयास ही किया है। आप तो केवल साधारण पुरुषों और स्त्रियों की कौटुम्बिक समस्याओं जैसे सर्वसाधारण के यथार्थपूर्ण विषयों ही को उठाते हैं। जिनसे लोगों को प्रसन्नता मिलती है तथा कभी कभी क्लेश भी पहुंचता है। और वे (साधारण स्त्री पुरुष) अपने दैनिक कार्यकलापों, अपनी अति साधारण बातों और अपने दुःख-सुख के क्षणों को छोड़ किसी अन्य बात में अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन नहीं करते। और चूंकि मदनमोहन इन बातों का वर्णन बड़ी घनिष्ठता से करते हैं, मानो ऐसा करने में इन सब बातों का प्रत्यक्ष ज्ञान इनका सहायक हो. आपको डोगरी कहानी में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। आपके विषय लगभग वही होते हैं, जिनका विवेचन ललिता मेहता अपनी कहानियों में करती हैं, और आपका आलेख्यपट भी उतना ही सीमित है, परन्तु आप अपने वस्तुनिर्वहण में इसके प्रति ऐसी घनिष्ठता, ऐसा अन्तरङ्ग ज्ञान प्रदर्शित करते हैं, जो अत्यन्त स्फूर्तिप्रद होता है और जो आपको डोगरी के कई अन्य लेखकों से बहुत ऊपर ले जाता है।

'खीरला मानू' शीर्षक से आपकी डोगरी कहानियों के प्रथम संग्रह का प्रकाशन डोगरी संस्था द्वारा सन् १९५९ में हुआ था। इनकी कहानियों के विषय में लिखते हुए प्रो० रामनाथ शास्त्री कहते हैं: 'आपकी कहानियों में हमें मानवता के अस्तित्व विषयक कुछ मार्मिक दृश्य मिलते हैं। इनमें केवल विषय-सामग्री ही नहीं अपितु अनुभूति की सूक्ष्मता भी है।......हर एक कहानी में जीवन की झलक है। मदनमोहन नगर के वातावरण में पले हैं। आपकी भाषा भले ही शुद्ध डोगरी न हो, पर आपकी भाषा में असंदिग्धरूप में एक प्रवाहशीलता है। आपके गद्य की गति में

भावों के आरोहावरोह साथ साथ द्रुतता अथवा मन्थरता आती है। इन कहानियों ने वास्तव में डोगरी साहित्य के गौरव को बढ़ाया है।'*

'एह मर्द भी' (ये पुरुष) हास्य की एक अवस्थिति को लेकर लिखी गई है। दो स्त्रियों, दो भाईयों की पत्नियों में झगड़ा शुरू होता है क्योंकि इनमें से एक की लापरवाही से बिल्ली आकर दूध चट कर गई है। तुरन्त वाग्बाण छूटने लगते हैं और झगड़ती हुई दोनों स्त्रिया एक दूसरी के पूर्वजों को बुरा-भला कहने लगती हैं। इसका परिणाम वही होता है जैसा कि प्रायः संयुक्त परिवारों में देखने को मिलता है। दोनों ही काम-काज ठप कर देती हैं और भोजन आदि नहीं वनातीं। जब घर के आदमी थके-मांदे घर लौटते हैं और देखते हैं कि वहां खाने को कुछ भी नहीं पकाया गया है, तो वे एक दूसरे की सहायता करने का निश्चय करते हैं। वे अपने लिये स्वयं भोजन बनाते और अपनी स्त्रियों के लिए कुछ भी बचा कर नहीं छोड़ते और खा-पीकर बड़े आराम से सो जाते हैं। दोनों स्त्रियां भूखी हैं परन्तु इसे वह एक दूसरी पर प्रकट नहीं करतीं। इनमें से एक धीरे से उठती है और आहिस्ता से रसोई घर में जा कर टटोलती है कि क्या खाने से कुछ बचा है। वहां कुछ भी नहीं है। दूसरी भी उठती है और छिप कर आती है। यह क्या ? दूसरी पहले से ही वहां पर है। सुलह हो जाती है और उनके आक्रोश का प्रवाह अब एक दूसरी के विरुद्ध न रह कर अपने पतियों की ओर रुख कर लेता है : ये पुरुष ! हम प्रतिदिन इनके लिये भोजन बनाती हैं परन्तु इनमें इतना शिष्टाचार भी नहीं कि एक बार हमारे लिये भी खाना बनादें।**

---

*देखिये :—'खीरला मानू' भूमिका.

**'एह मर्द भी'

प्रस्तुत-कहानी उतनी ही चरित्रप्रधान है जितनी कि यह घटना प्रधान है, और मदनमोहन इसमें से अत्यन्त सराहनीय ढंग से निस्तार पा गए हैं। विवाद का दृश्य बड़ा सजीव है तथा इसका अन्त प्रेरणाजनक है। दो स्त्रियों के चरित्रों को प्रामाणिकता से निरूपण किया गया है। भाषा प्रखर है और प्रहार प्रभावजनक हैं। इसमें मृदु-कटाक्ष है और हल्के हास्य का पुट है। कुछ विवरण बड़े ठीक-ठीक दिये गए हैं—"जहां स्त्रियां हर समय जलती, (विवादाग्नि से) भुनती रहती हैं वहां उनके चूल्हे में आग कभी विरले ही जलती है।" परन्तु पुनरुक्तियां इस कहानी में भी हैं। मदनमोहन ने इन भाइयों में से किसी एक के खुर्राटों की जो तुलना सांप की फुंकार के साथ या लड़तो हुई दो बिल्लियों के साथ की है, वह या तो अयथार्थ है या अतिरंजित है।

'प्राचित' (प्रायश्चित) में प्रायश्चित की एक नई परिभाषा दी गई है। मानव-जीवन बहुमूल्य है तथा जीने के योग्य है, यह अलग-थलग रह कर व्यर्थ व्यर्थ गंवा देने अथवा अकारण ही अपने को कष्ट झेलने वाला बना देने के लिए नहीं है। स्वयं प्रसन्न रहना तथा दूसरों को प्रसन्न करना ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। वैरागियों जैसा जीवन बिताना छोड़कर पुन्नू चाचा और रत्ना मासी परस्पर विवाह-सूत्र में बंधकर खेतों में श्रम और कुछ रचनात्मक काम कर के अपनी भूल के लिये प्रायश्चित करते हैं। यह एक नई दृष्टि है, बिल्कुल अभिनव, जो आजकल के जीवन के याथार्थ्य तथा इसकी आवश्यकताओं के साथ पूर्णतया मेल खाती है। अनुपयुक्त शब्दों और अभिव्यक्तियों, शब्दों तथा वाक्यांशों की पुनरुक्तियों तथा लम्बे चौड़े उपदेशात्मक वक्तव्यों से कहानी को क्षति पहुंची है। कहीं कहीं कुछ स्थलों का सौन्दर्य, अलबत्ता पाठक को रवीन्द्र बाबू की गीताञ्जलि का स्मरण दिलाता है। पुन्नू चाचा के चरित्र को बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है।

'भांड' (मसखरा) वाक्प्रपंच तथा वक्रोक्ति से परिपूर्ण है।

एक मसखरा, जो हर किसी की हंसी उड़ाता है, एक अध्यापक द्वारा दण्ड मिलने पर अपने इस (मज़ाक करने के) अधिकार का परित्याग करता है। किन्तु जब इसे अपनी वाणी पर नियन्त्रण नहीं रहता तो वह अपनी जीभ को काट कर अपनी इस प्रवृत्ति का दमन करना चाहता है। दृश्ट अत्यन्त भयावह है और पाठक के विश्वास के अनुरूप भी नहीं है। यद्यपि वास्तविक जीवन में ऐसी घटना की संभाव्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता, पर कला की दृष्टि से इसमें नाटकी असंभाव्यता का आभास होता है।

'खीरला मानू' (अन्तिम व्यक्ति) एक श्रेष्ठ भाव पर आधारित है। एक लड़की उस व्यक्ति को चाहती है, जो उससे प्रेम करता है। परन्तु वह तब तक इस प्रेम को स्वीकार नहीं करेगा जब तक कि उसका देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता। उसका विवाह किसी अन्य व्यक्ति के साथ हो जाता है। वह कभी कभी उसे याद करती है परन्तु उसके साथ फिर कभी नहीं मिल पाती। पर यह क्या ? वह अपने बेटे के मुख से भी ऐसे हा बचन सुनती है, जो इस लिये विवाह करने से इन्कार कर देता है, क्योंकि वह 'अन्तिम व्यक्ति' होगा। वह भला कैसे प्रसन्न रह सकता है जबकि दूसरे लोग प्रसन्न नहीं हैं ? स्त्री सोचती है: 'इसके सपने कब पूरे होंगे और वह भी अपनी बहू को देख सकेगी ?'

कहानी का अन्त सप्राण नहीं है। एक फलती - फूलती हुई स्त्री की उत्कण्ठाओं की बाढ में कल्पना सृष्टि के द्वारा किये गये चित्रण में बड़ी चारुता है। परन्तु विवरणों की पुनरुक्तियां थकाने वाली हैं, और ऐसा लगता है कि शब्दों की इस बाढ़ में वह जाने से अकेले मदनमोहन ही बच पाए हैं। कहानी की शैली उर्दू की कहानी जैसी है। इस में उर्दू की अभिव्यक्तियों की वहुलता है। मंच पर से किये जाने वाले लम्बे लम्बे भाषणों का प्रलोभन मदन-मोहन में बड़ा प्रबल है, और कहानी के अन्तिम-भाग में बेटे का

भाषण किसी चुनाव के घोषण-पत्र का अंशरूप अथवा मानवीय-अधिकार विषयक किसी गरिच्छेद जैसा लगता है।

आश्चर्य की बात यह है कि मदनमोहन एक मामूली सी बात को बड़ी गंभीरता के साथ चित्रित करते हैं, जैसे कि यह कोई महत्वपूर्ण और बड़ी गहरी बात हो; एक उत्कृष्ट विषय पर लिखते समय आप यह भूल जाते हैं कि आप उपहासास्पद नहीं तो एक सामान्य दिशा की ओर सरक गए हैं। किन्तु, तोभी कहानी में किसी किसी स्थान पर घनिष्ठता की छाप है। कुछ अभिव्यक्तियां बड़ी आकर्षक बन पड़ी हैं क्योंकि उनमें बड़ी सादगी है और वे एक सामान्य स्त्री की एक चूल्हे, एक घर तथा उस व्यक्ति के प्रति, जिससे कि वह प्रेम करती है, और एक मां के रूप में सन्तान के प्रति उसकी भावना को अभिव्यक्त करती हैं।

आपकी 'सकोलड़े' (शीर्षक कहानी) स्त्री के मान और ईर्ष्या तथा हमारे समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा प्रथाओं और परम्पराओं को लेकर लिखी गई है। विवाह के बाद लड़की के ससुराल वाले एक विशेष उपहार भेजते है। यह उपहार ही इस कहानी का वर्ण्य बिषय है। इस में दो बहनों की पारस्परिक होड़ दिखाई गई है, जिन में से एक का विवाह शहर में हुआ है और दूसरी का एक गांव में। इसमें उनकी सहेलियों की, इनके माता-पिता तक की तुलना तथा एक अथवा दूसरे का पक्ष लेने का, जाने अथवा अजाने में, वर्णन किया गया है। दृश्य पूर्णतः स्वाभाविक है और इसका चित्रण मदनमोहन ने बड़ी सूझ-बूझ और सुकुमारता के साथ किया है। आपने शान्तो की आवेशपूर्ण मनोदशा को बड़ी स्पष्टता के साथ चित्रित किया है, जिसके ससुराल वालों की ओर से विशेष 'उपहार' नहीं आया है। इस से उसकी तथा उसके पति की मानहानि हुई है तथा उसकी बहन के मन की दुर्भावना को सन्तोष मिला है। परन्तु प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या कहानी का इस प्रकार का अन्त अपेक्षित था ? यह जरा भी दुःखान्त नहीं है। इसमें भावोद्दीपक नाटकीयता आ

गई है। प्रारंभिक पंक्तियों में—मेघों की कल्पना - सृष्टि, श्वेत और काले मेघ, घुटन भरा वातावरण—ये सब शान्तो की मनोदशा का एक अत्यन्त स्पष्ट चित्र उपस्थित करते हैं। अलबत्ता त्रुटिपूर्ण वाक्यविन्यासों, पुनरुक्तियों तथा लम्बे - लम्बे विवरणों के कारण ऐसे उत्कृष्ट स्थलों का आकर्षण कम हो गया है। घरेलू वातावरण, नारी - जगत, उनकी मान और पक्षपात की प्रवृत्ति, उनके प्रेम और घृणा, और इस सब से बढ़ कर उन की कौतूहलपूर्ण मनोवृत्ति तथा दूसरों के रहस्य को जानने की इच्छा आदि को बड़े स्वाभाविक रूप में चित्रित किया गया है। परन्तु अन्त में आंखे मूंद लेने के संबंध में कहा गया वाक्य अपूर्ण एवं अपर्याप्त है; इसका विन्यास अशुद्ध है और यह इसके अभीष्ट अर्थ को उलझाने वाला है। लेखक यह नहीं दिखाना चाहता कि शान्तो मर गई है, परन्तु इस अन्तिम वाक्य से, पढ़ने वाले को ऐसा ही भान होता है।

'शाह' (सूदखोर महाजन) भी एक गृहस्थ जीवन तथा लड़कियों के जन्म पर हमारे समाज में व्याप्त अनुचित धारणाओं का एक अध्ययन है। पैदा होने वाली प्रत्येक लड़की एक सूदखोर महाजन के समान हैं, जो अपने परिवार को विपदा में डाल देती है, क्यों कि पग पग पर उसके लिये धन व्यय करना होता है। सब से बड़ा बोझ तब पड़ता है जब उसके विवाह का समय आता है और जब, महाजन से लिये गए ऋण पर दिये जाने वाले चक्रवृद्धि ब्याज की भांति, दहेज देना पड़ता है। दूसरी ओर लड़कों को श्रेष्ठ समझा जाता है और इन के पक्ष को धर्म का अनुमोदन भी प्राप्त है। मदनमोहन इस अभिवृत्ति और विशेषत: स्त्रियों की अभिवृत्ति का विरोध करते हैं जो परिवार में लड़की के जन्म लेने पर अपेक्षत: अधिक दु:खी होती हैं। मां और उसकी सास की मनोवृत्ति का बड़ा स्पष्ट निरूपण किया गया है। घर की मालकिन एक बार फिर गर्भिणी हो जाती है। और तब वह सयय आता है, जब स्थिति अनिश्चयपूर्ण हो जाती है, परन्तु यह

स्थिति देर तक नहीं रहती। एक ही वाक्य द्वारा, जो अनुपयुक्त है, जो एक दुर्बल कड़ी का काम देता है, मदनमोहन इस अनिश्चय को भंग करते हैं : "वही हुआ जो लोग कहते हैं कि भाग्य से भला कौन लोहा ले सकता है ?"* यदि किसी को यह सम्भावना दिखाई देती है कि शायद लड़का ही होने वाला है, तो प्रस्तुत वाक्य इस मिथ्या विश्वास को तोड़ देता है। मदनमोहन ने नारी हृदय तथा उसके व्यवहार-विषयक अपने श्रेष्ठ ज्ञान का परिचय दिया है, परन्तु आप की उपदेशात्मकता की पुरानी प्रवृत्ति इस कहानी में भी विद्यमान है। लड़के के जन्म का पता चलने पर मां का दु:ख अन्त अप्रत्याशित रूप में होता है।

मदनमोहन ने डोगरी में कुछ और कहानियां भी लिखी हैं जिन का प्रकाशन अभी हाल ही में हुआ है। आपकी कहानियां डोगरी-गद्य में हो रही निश्चित प्रगति की सूचक हैं। और यदि आप अपने विषयवस्तु का अनपेक्षित विस्तार करने के प्रलोभन को दबा लें तो आप निश्चय ही सफलता प्राप्त करेंगे। आपने 'धारा ते धूड़ां' (ऊंचे पहाड़ और धुंध) नामक एक उपन्यास भी लिखा है।

ललिता मेहता (१९३८... ... ...)

ललिता मेहता एक तरुण किन्तु प्रतिभाशील साहित्यकार हैं। आप भूगोल—अध्यापक श्री आर० एल मेहता की सुपुत्री हैं। और आप जम्मू प्रान्त के भीतरी क्षेत्रों में, अपने पिता के साथ दूर दूर तक घूम-फिर चुकी हैं। आप बड़ी भावुक हैं तथा आपकी कहानियों में हमें हमारे घरों की बोलचाल की, विशेषत: स्त्रियों की, भाषा दृष्टिगत होती है। डोगरी एक मधुर भाषा है, और जब कोई इसे (लेखन के लिये) चुन ले तो यह बड़े मार्मिक भावों

---

*देखिये : शाह।

का निरूपण करने का माध्यम बनाई जा सकती है। ललिता मेहता का 'सूई धागा' नामक कहानी संग्रह पढ़ कर वह ग्राभास होता है कि ये कहानियां डुग्गर की घरेलू समस्याओं को लेकर लिखो गई हैं। एक कलाकार की सफलता समुचित वातावरण का निर्माण करने, किसी बात को ठोक ठीक ढग से कहने, ताकि शब्दों और भावों का परस्पर टकराव न हो, बल्कि वे समुचित कल्पना-सृष्टि का निर्माण करने में सहायक हो, में ही निहित रहती है। अब, चूंकि ललिता की कहानियां सामाजिक समस्याओं—और विशेषत: कौटुम्बिक समस्याओं—को लेकर लिखी जाती हैं, उनकी भाषा भी उनके उपयुक्त होनी चाहिये। जहाँ तक ललिता मेहता की भाषा का सम्बन्ध है, यह उस वातावरण को चित्रित करने में सफल रही है। आपके वाक्य संक्षिप्त हैं तथा विवरण संगत हैं। आपके संचार चटकीले तथा चरित्रों का उदघाटन भाषा की नाटकीय पद्धति द्वारा नाटकीय ढंग से होता है।

आपकी अधिकांश कहानियां वैभव के बीच दृष्टिगत होने वाली निर्धनता को लेकर लिखी गई हैं। यह विषमता सीधे संकेतों द्वारा सर्वत्र निरूपित हुई है, जैसा कि 'टस्सरी कुर्ता' और 'हण्डोला' (झूला) आदि कहानियों में देखा जा सकता है। तथा कहीं इसे अप्रत्यक्ष रूप में भी दिखया गया है, जैसा कि 'सूई धागा' में। ललिता मेहता के पास एक निरूपणशील दृष्टि है; आप जानती हैं कि हमारे घरों में क्या कुछ होता है, और कोमलता के साथ, विशेषत: एक नारी-हृदय की कोमलता के साथ, आप घरेलू वातावरण का चित्रण करती हैं। इनकी भाषा अपने निजी लय-ताल-गत सौन्दर्य से समन्वित है। यह एक ऐसी कोमलता लिये रहती है जिसमें व्यंग्य का स्वर अन्तर्निहित रहता है। इनके इस संग्रह की भूमिका में प्रो० रामनाथ शास्त्री लिखते हैं: 'इनकी कहानियां पढ़ कर मुझे विश्वास हो गया है कि इनमें वे बहुत सी विशेषताए विद्यमान हैं जो एक कहानीकार में होनी चाहियें। आप उपयुक्त विषय-वस्तु का चयन करती हैं;

वस्तु का विकास समुचित रूप में होता है, और आपके चरित्र-चित्रण में तथा स्थानीयता का रंग जमाने में एक कहानीकार का कौशल प्रकट हुआ है। इनकी कहानियों में डुग्गर के सामाजिक जीवन की विविध झांकियां मिलती हैं। यह इनकी विशिष्टता है। यद्यपि आपकी कहानियां कहानी-लेखक की कला की कसौटी पर पूरी नहीं उतरतीं, तो भी यह एक ऐसी कोमलता लिये हुए हैं जो इनके पाठकों के हृदय को स्पर्श कर जाती हैं। इसी में आप की विशेषता छिपी हुई है।' (देखिये 'सूई धागा' की भूमिका)। मुख्यतः शास्त्री जी के साथ मतैक्य होते हुए भी एक बात पर बल देना अपेक्षित है। सुकुमारता और करुणा, जो हमें ललिता की कहानियों में दृष्टिगत होती हैं, प्रायः भावुकता से ओत-प्रोत रहती हैं। अपने आपको केवल अभिव्यक्त करने में ही असीम आनन्द अनुभव करने की अवस्था में भावुकता का समावेश एक त्रुटि बन जाता है और यह त्रुटि ललिता मेहता और कवि रतन में समान रूप से विद्यमान है। लेखक की अनुभूतियों का अतिशयोक्ति और भावुकता के रूप में, भले ही अत्यन्त अगोचर रूपमें, उसकी कृतियों में समाविष्ट हो जाना स्वाभाविक है। ललिता मेहता अपनी अनुभूतियों की पकड़ में स्वयं आ जाती हैं और इसी लिये आपकी कहानियां पढ़ कर जहां हम आपकी शैली, इनके प्रसंग और विषय-वस्तु की प्रशंसा करते हैं, वहां हम इनके एक सुगठित रचना द्वारा पड़ने वाले प्रत्यक्ष प्रभाव से वंचित रहते हैं।

'टस्सरी कुर्ता' में धनी और निर्धन—शिबू और किपूं—के बीच की विषमता प्रदर्शित की गई है। वे अनुभूतियां, जिनका मानव-मन में होना स्वाभाविक होता है, किपूं में भी विद्यमान हैं और इस विवशता का वर्णन, जिसे वह अपने धनी मित्र शिबू के साहचर्य में अनुभव करता है, बड़ी सचेतनता, सुकुमारता और उल्लेखनीय सरलता के साथ किया गया है। उसके मन में उठती

हुई परस्पर विरोधी भावनाएं—अपनी पत्नी के लिये एक बढ़िया कमीज़ खरीदने का भाव और यही विचार कि इसी राशि से उसके ढोगों को एक मास तक चारा भी मिल सकता है—समुचित रूप में चित्रित की गई है। इस में पारिवारिक जीवन की झलक विद्यमान है; एक पुरुष का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम, एक किसान की अपनी भूमि और अपने ढोरों के प्रति कतव्य-परायणता। यह घरेलू जीवन संबन्धी कल्पना-सृष्टि वातावरण को सम्पन्नता प्रदान करती है। प्रस्तुत कहानी में वर्णित बढ़िया वस्त्र प्राप्त करने की अभिलाषा और उन्हें किसी से मांग कर न लाने की इच्छा आदि नारी-हृदय की अनुभूतियों से ललिता की कलागत नैसर्गिक सम्पन्नता प्रकट हुई है। यह सब होते हुए भी इसका अन्त हमारे हृदय को स्पर्श नहीं करता। यह प्रतिकाष्ठता के रूप में आता है, क्योंकि उत्पन्न की गई अनिश्चय की स्थिति का समाधान कलात्मक ढंग से नहीं किया है। एक विशेष समारोह पर पहनने के लिए सुरक्षित रखी हुई कमीज़, इसकी मालकिन के अजाने में ही, वहुत पहले से चुराली गई है।

इनकी चाचू' (चाचा) शीर्षक कहानी एक वृद्ध व्यक्ति को लेकर लिखी गई है जिसकी प्रतिष्ठा की भावना को उसकी दो वहुओं द्वारा क्षति पहुंतो है, जो सदैव परस्पर झगड़ती रहती हैं। यह दृश्य डुग्गर ही नहीं, अपितु सभी जगह सब घरों में, जहां कहीं भी संयुक्त-परिवार की व्यवस्था का प्रचलन है, प्राय: देखने को मिलता है। वाह्य आकार और यथार्थ के बीच की विषमता में अन्तर्निहित विडम्बना और इसका चाचू के चेतनाशील मन के ऊपर पड़ने वाला प्रभाव सचमुच सराहनीय है। झगड़े का दृश्य सजीव है, इसकी भाषा व्यावहारिक और सशक्त है और यह दृश्य हमें मदन शर्मा की 'एह मर्द' तथा वेदराही की 'लहरां' नामक कहानियों के विवाद-दृश्यों का स्मरण दिलाता हैं। मदन शर्मा की कहानी में प्रचण्डता तथा सुखदता है और वेदराही द्वारा

प्रदर्शित विवाद एक साधारण से प्रसंग को लेकर खड़ा किया गया है। ललिता के विवाद विषयक दृश्य में गम्भीरता का स्वर है। बहुओं द्वारा तिरन्तर होने वाली ले-दे अन्त में चाचू की मृत्यु का कारण बनती है। यहां भी चाचू की मृत्यु आकस्मिक एवं बलात् दिखाई गई प्रतीत होती है। इसमें ललिता चेतनाशील दृश्यों पर पड़ने वाले इन विवादों के दुष्प्रभाव को स्पष्टतः निरूपित करने की भावना से इस दिशा में प्र रित हुई हैं और इससे कहानी में दोष आ गया है।

'हण्डोला' (झूला) एक बूढ़ी विधवा की कहानी है जिसका नन्हा बेटा मां की दरिद्रावस्था को नहीं समझता, वह उससे मेले को ले जाने के लिये ज़िद करता है। और जब सारा धन—थोड़े से पैसे—चुक जाता है, तो वह हठ करता है कि वह झूले की सवारी करेगा। इसका बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है—एक विधवा की नितान्त हीनावस्था और दारिद्र्य और एक नन्हे अबोध बालक की उस वस्तु का आनन्द उठाने की ज़िद जिससे अन्य बच्चे आनंदित हो रहे हैं, एक मार्मिक चित्र उभरा है। परन्तु यहां भी भावुकता का समावेश प्रवलता से हुआ है।

जहां नरेन्द्र खजूरिया की कहानियों में तद्देशीयता का आभास विपुल मात्रा में नहीं होता है, वहां ललिता में भौगोलिक चेतना प्रबलता से विद्यमान है। आपकी 'बेबू' शीर्षक कहानी बसतगढ़ के निकट रहने वाली एक स्त्री की कहानी है। बेबू विधवा है, परन्तु एक सम्पन्न विधवा है। वह भीरु नहीं है, बल्कि उसके नाम से हर कोई भयभीत है। परन्तु कई लोगों को उसकी सम्पत्ति चुराने की उत्कट इच्छा होती है। वह किस प्रकार उनके इस प्रयास को विफल बनाती है यही इस कहानी का वर्ण्य-विषय है। उनके द्वारा संध लगाने का दृश्य सुस्पष्ट और अनिश्चयपूर्ण स्थिति लिए हुए है। प्रस्तुत दृश्य का वातावरण

बलवंतसिंह की उर्दू कहनियों के अनुरूप है, जो डाका डालने के ऐसे ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। बेबू को भले ही शारीरिक दृष्टि से एक स्त्री दिखाया गया है, परन्तु अपने वास्तविक व्यवहार में उसे अजेय साहस तथा लगभग क्रूरता-पूर्ण प्रकृति वररूप में मिली है। परन्तु जैसा कि प्राय, देखा जाता है, बेबू का अन्त स्वाभाविक नहीं होता। अन्तिम वाक्य किसी जीवनी से लिये गये उद्धरण जैसा अधिक दिखाई देता है, 'और यह घटना भी बेबू के जीवन का एक एक अंग बन जाती है।'

ललिता की यह त्रुटि, जोकि वह अपने विषय - वस्तु का समुचित विकास नहीं कर पाती हैं, आपको एक महान् कहानीकार के रूप में प्रकट करने में गम्भीरता से बाधक हुई है। आपकी 'गोपी' शीर्षक कहानी को भी कुछ हिन्दी-मुहावरों, पुनरुक्तियों, और कृत्रिमता से क्षति पहुंची है, जिसमें अपने पाठकों के मन में करुणा की भावना को जाग्रत करने का आपका हठ उत्तरदायी है। आपकी कहानियों का दुःखद अवसान, जो यद्यपि कला की दृष्टि से अपेक्षित नहीं था, इनके द्वारा पाठकों के मर्मस्थल को आन्दोलित करने के उद्देश्य से किया गया है। और चूंकि आपके विषय-वस्तु का समुचित विकास नहीं हो पाया है, और इनका अन्त स्वाभाविक रूप में होता है, इस लिये आपके विषयवस्तु कृत्रिम और कष्ट-कल्पित प्रतीत होते हैं।

'मन्दे भाग' (दुर्भाग्य) एक परम्परागत स्थिति को लेकर लिखी गई है। एक सौतेली मां का डाह, अपनी सौतेली बेटी से छुटकारा पाने की उसकी इच्छा, प्रायः सब जगह देखने में आती है। लड़की 'बिशनी' यह सब सुनती है और अपनी मृत्यु के लिये प्रार्थना करती है। हर किसी को यही सम्भावना होती है कि वह मर जाएगी। यह सम्भावना पूरी नहीं होती और यहां एक आश्चर्यजनक मोड़ आ जाता है। वह आत्महत्या तो नहीं

करती पर उसे सांप काट लेता है। चरित्र-चित्रण स्पष्ट नहीं है और इसका अन्त वैसा ही होता है जैसा कि इसकी सम्भावना है; केवल यह उस प्रकार से नहीं होता है जैसा कि पाठकों को आशा होती है।

'सूई धागा' एक उद्देश्य को लेकर लिखी गई है; यह दिखाने के लिये कि आर्थिक परतन्त्रता कैसे एक स्त्री की दुर्दशा का कारण बन सकती है। पर यदि उसे कोई शिल्प आता है तो वह न केवल इस परतन्त्रता से मुक्त हो सकती है, अपितु अपने सम्बन्धियों से अपना खोया प्यार और आदर भी पुनः प्राप्त कर सकती है। इसकी शैली-परिमार्जित नहीं हैं और कहानी शिथिलगति से आगे बढ़ती है। इसमें अनेक प्रश्न उठाए गए हैं, जिनका कोई उत्तर नहीं दिया गया है। सिलाई को एक बड़े घरेलू व्यवसाय के रूपमें रूपान्तरित किया गया है जो वाणिज्य संबन्धी सभी सम्भावनाएं और आकर्षण लिये हुए है। वह बच्चों के लिये लिखी गई कहानी जैसी प्रतीत होती है और इसका प्रतिपादन पूरी गम्भीरता और तत्परता के साथ हुआ है। इसी तत्परता ने इनकी कहानी को सरल बनाया है। ललिता को अपने भावों के प्रति अपने दृष्टिकोण को अधिक रचनात्मक बनाना, अपने वर्ण्य-विषय, वस्तुविन्यास तथा चरित्र-चित्रण की ओर अधिक ध्यान देना अपेक्षित है। और यदि आप भावुकता का परिहार करें तो आप के दैवी वरदान आपके लिये श्रेष्ठतर कहानियां लिखने की दिशा में उपकारक सिद्ध होंगे।

कविरत्न शर्मा (१६४०..........) : आप एक युवा लेखक हैं। आप डोगरी के पुनर्जागरण काल में पल कर बड़े हुए हैं। और इसी कारण आप डोगरी साहित्य में व्याप्त वातावरण से उतने ही प्रभावित हुए हैं, जितने कि आप अपने पारिवारिक वातावरण से। डोगरी आपके परिवार में

बोली जाती है परन्तु कवि महोदय हर नवीन शब्द अथवा भाव को तुरन्त मनोगत कर लेते है; आपका हृदय चेतनाशील है। वेदराही की भांति कविरतन की कहानियां किसी एक विचार का विस्तृत रूप होती हैं। परन्तु अपने सम्पन्न व्यक्तित्व और यौवनोल्लास के कारण आप भाषा की समुचिता सहायता के बिना किन्हीं पक्षों पर अनावश्यक बल देते हैं। यह पक्ष आपकी 'दादी' शीर्षक कहानी में प्रमुख रूप से उभरा है। वक्ता—एक अध्यापक—अपनी कहानी सुनाता है। इसमें भूत-काल को वर्तमान में घटित दिखाया गया है। वक्ता अपने विगत जीवन के उन क्षणों को पुनः जीता है, जो यद्यपि काल की घनी परतों के नीचे दब चुके हैं, पर अब उसके स्मृति-पट पर उभर रहे हैं। परन्तु लेखक उनका उल्लेख एक रेखा-चित्र के रूप में करता है। एक छोटी लड़की उसके पास पढ़ने के लिए आती है। वह उसके पिता के एक मित्र की बेटी है। लड़का उसके साथ बड़ों जैसा व्यवहार करता है, उसमें अभी बचपन है और वह सरल-स्वभाव तथा देखने में सुन्दर है। वह लज्जाशील है और बीच बीच में ऐसे संकेत मिलते हैं कि जैसे वह उसे चाहती है। परन्तु यह एक अविवचित अथवा कम से कम एक अस्पष्ट भावना है। इस सम्बन्ध के प्रति दोनों हो अनिश्चित हैं। एक दिन वह सुनता है कि उसकी शिष्या—सीता—श्रीनगर चली गई है क्योंकि उसके पिता का वहां तबादला हो गया है।

कई वर्ष बीत जाते हैं। अब वह दादा बन चुका है। और वह अपने पोते के साथ एक दिन सन्ध्या समय सैर के लिये निकलता है। वहां पर वह उसे सहसा मिल जाती है और उसे स्मरण होता है कि वह उससे प्रेम करती थी और वह भी उसे चाहता था।......वह मर जाती है, और जब उसका पोता उससे पूछता है कि वह कौन थी, तो वह उसे कहना चाहता है—'बेटे, वह तेरी दादी थी।' इस भाव में एक अच्छी कहानी के लिये

सभी उपादान विद्यमान हैं। परन्तु विवरणों और भाषा पर इनकी समुचित पकड़ के भाव तथा शैली के आपकी आयु के साथ मेल न खाने के कारण इनमें भावुकता आ गई है। आप कुछ एक स्थलों को अस्फुट और अनिरूपित ही छोड़ देते हैं। आपको इस अस्पष्टता में आनन्द मिलता है। इन में यह रोमांटिक प्रवृत्ति इनकी युवावस्था के कारण है।

आपकी 'शेरू' (एक स्वाभिभक्त कुत्ते) की कहानी में आपकी भावुक प्रकृति का पता चलता है। विचार अच्छा है। इसमें एक स्वामी की अपने कुत्ते के प्रति सहानुभूनि दिखाई गई है, जो कि जागीरदार को गाड़ी के नीचे आ गया हैं क्योंकि जागीरदार अपने अच्छा-खासा भोजन पाने वाले कुत्ते को उसके द्वारा नीचा दिखाने का बदला लेना चाहता था। कहानी में कुछ अच्छे विवरण हैं : पारिवारिक जीवन तथा किसानों की कठिनाईयों की कुछ झांकियां हैं, भूमिपति का अहम् इस क्रूरतापूर्ण प्रतिशोध का कारण बनता है। परन्तु भावुकता इसमें भी आ गई—एक दशक बीत जाने पर भी, उस कब्र पर, जहां कि शेरू को दफ़नाया गया था, अपने मृत कुत्ते के लिये लड़के का शोक, उसका शोकाकुल मुख।

आपकी पहली रचना 'डोली' एक साधारण-से अनुभव पर आधारित है—एक धनी लड़की का उसकी इच्छाके विरुद्ध, एक धनी व्यक्ति के साथ विवाह, जिसे उसने नहीं देखा है और एक निर्धन व्यक्ति की कहानी जो उसके साथ प्रेम करता है, और इस पर भी दरिद्र होने के कारण उसके साथ विवाह नहीं कर सकता। प्रस्तुत विषय हिन्दी तथा उर्दू की अनेकों कहानियों से मिलता-जुलता है, परन्तु कवि महाशय की दृष्टि वैयक्तिक है। भावुकता इसमें भी आ गई है। परन्तु यह प्रवृत्ति इन की आदर्शवादी प्रकृति का फल हैं, जो स्वयं इनके युवा व्यक्तित्व का परिणाम है।

कवि रत्न की शैली ओजोमयी है । आपके वाक्य किसी किसी स्थल पर बड़े मार्मिक हैं और आप की (परिपक्वता) के अभाव की क्षतिपूर्त्ति आपकी सुकुमार भावनाओं और हर प्रकार तथा हर रूप में होने वाले क्रूरता पूर्ण व्यवहार और प्रपीड़न के प्रति आपकी नैसर्गिक घृणा के द्वारा हो गई है । अभी आरंभ हुआ है और कवि के सन्मुख अभी एक क्षेत्र पड़ा है । इन्हें अपनी अभिव्यक्ति में संयम लाने तथा सूक्ष्मता से निरूपण करने और बस्तुओं के प्रति विषयपरक रहकर उन पर अधिक बल देने की आवश्यकता है ।

नाटक

जम्मू में रंगमंच और नाटक की परम्परा वहुत समय से चली आ रही है। कुछ संस्थाओं और संगठनों द्वारा आयोजित और प्रदर्शित किये जाने वाले नाटकों के अतिरिक्त यहाँ जन-नाटक दल भी थे, जो धार्मिक नाटकों का आयोजन किया करते थे। जम्मू तथा इसके कस्बों और गांवों में जन-नाटकदलों, रासमण्डलियों तथा नाटकमण्डलियों द्वारा रामायण तथा महाभारत के दृश्यों का अभिनीत करना इस तथ्य का प्रमाण है कि नाटक यहां की जन-संस्कृति के मूल में दूर नीचे तक चला गया है। होली के दिनों में किसान बाहर खुले में ही नाटक खेलते थे। इसके अतिरिक्त जम्मू में विभिन्न क्लबों द्वारा, जो प्रायः हर समय विद्यमान थे, रंगमंच के प्रदर्शनों का आयोजन किया जाता था। ये नाटक ऐतिहासिक सामाजिक और पौराणिक विषयों पर हुआ करते थे। जम्मू के रंगमंच के सम्पूर्ण इतिहास के लिए श्री धर्मचंद प्रशान्त का 'जम्मू में रंगमंच का उदय और अस्त' शीर्षक लेख देखा जा सकता है। ('योजना', संस्कृति-अङ्क, १९६०) इसमें श्री प्रशांत ने यह दिखाया है स्थानीय तथा बाहिर के कलाकार किस प्रकार नाटक खेला करते थे। उन्हें महाराजा प्रतापसिंह तथा महाराजा

हरिसिंह का संरक्षण प्राप्त था। बाद में चलकर स्थानीय नाटक-क्लबों की स्थापना हुई। सनातन-धर्म नाटक समाज सर्वाधिक प्रसिद्ध और सब से प्राचीन संस्था है। विभिन्न कस्बों और गांवों में रंगमंच के लिये सुविधाएं काम-चलाऊ रूप में उपलब्ध हो जाती थीं और कभी कभी बाहर खुले में ही नाटक खेले जाते थे।

इस अवधि में खेले जाने वाले नाटक हिन्दी, उर्दू अथवा पंजाबी में लिखे होते थे। कोई भी डोगरी-नाटक लिखा या खेला नहीं गया था। परन्तु देश में राष्ट्रभाषा तथा क्षेत्रीय भाषाओं के आन्दोलन के साथ-साथ कुछ लेखकों ने डोगरी में कहानियां तथा एकांकी लिखने शुरू किये—श्री विश्वनाथ खजूरिया और श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त ने डोगरी के प्रथम एकांकी लिखे। और १९४८ में टिकरी (जम्मू से ३३ मील दूर) नामक स्थान पर एक राजनैतिक सम्मेलन हुआ; यहां पर लेखकों की एक मण्डली के द्वारा डोगरी का पहला नाटक खेला गया। 'बावा जित्तो' शीर्षक यह नाटक महान् कृषक-सन्त, घार के निवासी बावा जित्तो के जीवन-चरित का नाटकी-करण था जो लग-भग तीन सौ वष पूर्व हो चुके हैं। इसके लेखक प्रो० रामनाथ शास्त्री थे। रंगमंच के उपयुक्त परदे आदि नहीं थे और न मेक-अप् आदि की अन्य सामग्री ही थी। संवादों की भली-भांति रिहर्सल नहीं की गई थी और न कलाकार ही व्यावसायिक थे। और इस पर भी दर्शकों के एक बड़े समुदाय के सन्मुख इसके सफल अभिनय से डोगरी के लेखकों के सामने यह सीधा सा तथ्य प्रकट हुआ कि लोग इस प्रकार के और अधिक नाटकों को पसंद करेंगे।

श्रीगणेश हो चुका था। इसके उपरान्त अधिकाधिक लेखक डोगरी नाटक और एकांकी लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। सर्वश्री विश्वनाथ खजूरिया, प्रशान्त, वेदराही, रामनाथ शास्त्री, और

नरेन्द्र खजूरिया ने और अधिक डोगरी नाटक लिखे, दीनूभाई पन्त, रामकुमार अबरोल और रामनाथ शास्त्री ने एक साथ मिलकर 'नमा ग्रां' (नया गांव) नामक नाटक लिखा। वेदराही ने 'धारें दे अथ्रू' लिखा। शास्त्री जी का नवीनतम नाटक 'सार' है जो राजा रणजीतदेव के शासनकाल के दो विशिष्ट व्यक्तियों--प्रसिद्ध नारी चित्रकार मङ्कू और 'किल्लिया बत्तना' के ख्यातिप्राप्त कवि दत्तू के कल्पित प्रेम पर आधारित है। दीनू भाई कृत 'सरपंच' डोगरी नाटक के इतिहास में एक और सीमाङ्क है।

लगभग सारे डोगरी नाटकों का प्रदर्शन बहुत बड़े दर्शक समुदायों के सन्मुख होता आ रहा है, यद्यपि ये सबके सब अभी प्रकाशित नहीं हो पाए हैं। यह इस कारण से भी सराहनीय हैं कि इनमें कुछ तो साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं तथा दूसरे भली भांति खेले गए हैं। परन्तु इस सफलता का सबसे बड़ा कारण यह है कि इससे पूर्व डोगरी-भाषी और डोगरी समझने वाली जनता को ऐसे नाटक देखने को नहीं मिलते थे जिन के विषयवस्तु और भाषा को वे भली भांति समझ सकते और उनका रसास्वादन कर सकते। इसका जनता तथा लेखकों पर द्विमुखी प्रभाव पड़ा है। दोनों एक दूसरे से कुछ सीख सकते और कुछ सिखा सकते हैं। रंगमंच पर डोगरी नाटकों की सफलता से यह बात स्पष्ट हो गई है कि इनमें जनता का मनोरंजन करने तथा उसे शिक्षित करने की सम्भाव्यता विद्यमान है। इसके साथ साथ इससे जम्मू के रंगमंच और इसकी परम्पराओं को नया बल मिलेगा और डोगरी भाषा और उसकी शब्द-शक्ति का विकास होगा और विशेष रूप से इसका गद्य-साहित्य समृद्ध होगा।

'नमां ग्रां' (१९५७) एक ही लेखक की कृति नहीं है अपितु जिले-जुले प्रयास का फल है। प्रो० रामनाथ शास्त्री, श्री दीनू-

भाई पन्त और श्री रामकुमार अबरोल, ये तीनों इस नाटक के लेखक हैं। एकाधिक लेखकों द्वारा लिखा होने के कारण इस नाटक की कुछ विशिष्ट समस्याएं और उल्लेखनीय बातें ये हैं : जहां इसमें इन तीनों लेखकों के श्रेष्टतम गुणों के होने की संभावना है, वहां इनमें इनकी अन्तर्वर्ती शैली तथा दृष्टिकोण संबंधी त्रुटियों के होने की सम्भावना भी है। हम इसे ज़्यादा से ज़्यादा एक समझौता कह सकते हैं और समझौता सदा सर्वोत्तम सिद्ध नहीं होता।

पर, जैसाकि प्रो० रामनाथ शास्त्री ने इसकी भूमिका में कहा है : 'इसे लिखना आरम्भ करते समय हमारे मनों में डुग्गर के पुनर्निर्माण की अभिलाषा अति प्रबल थी............इस लिए रंगमंचीय शिल्प तथा प्रदेश में किये जा रहे रचनात्मक कार्य की ओर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया। इस प्रकार से यह साहित्यिक श्रेष्ठता तथा साहित्यिक प्रचार के बीच एक समझौता है।'

इसका मुख्य उद्देश्य, जैसाकि पहले बताया जा चुका है लोगों में इस चेतना को जाग्रत करना था कि लोगों के सम्मिलित प्रयासों द्वारा क्या क्या परिवर्तन लाए जा सकते हैं। भले ही निहित-स्वार्थ वाले (बाबू, सन्तू शाह और पन्त जैसे) लोग यहां हैं, जो नए परिवर्तनों और नवीन व्यवस्था के विरोधी हैं। परन्तु जमादार और माधो जैसे व्यक्तियों के धैर्यपूर्ण प्रयत्नों के द्वारा इन विरोधों का अन्त हो जाएगा। और चूंकि एक वीर ही एक सुन्दर वस्तु का अधिकारी हुआ करता है, माधो गांव की सुन्दरी, जमादार की बेटी और नाटक की नायिका, के हृदय को जीत लेता है।

प्रस्तुत दृश्य ग्रामीण वातावरण लिए हुए है और सभी पात्र गांव से सम्बन्ध रखते है। (यहां तक कि बाबू भी, जो शहर में रह चुका है, परन्तु उसका जमादार और शहर से सम्बन्ध है)।

जैसाकि शीर्षक से स्पष्ट है, एक नये गांव—ग्राजकल जैसे गांवों से श्रेष्टतर गांव का—निर्माण इस नाटक का उद्देश्य है। इस लिए इसमें किसी न किसी रूप में प्रचार अथवा कुछ न कुछ मात्रा में ग्रादर्शवाद का होना स्वाभाविक ही था। जब कोई रचना लोगों को श्रेष्टतर जीवन के लिये शिक्षा देने के अभिप्राय से लिखी जाए तो इसके भीतर यथार्थवाद और आदर्शवाद का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक ही है। एक राजनैतिक भाषण अथवा एक उपदेशात्मक वार्ता अधिक प्रभावजनक नहीं हो सकती; यह केवल उनके मस्तिष्क से होकर निकल जाती है। परन्तु अपने अद्वितीय स्वरूप के कारण, लोगों को प्रभावित करने के लिए रंगमंच एक महान उपकरण सिद्ध हो सकता है। समूची समस्या पर रंगमंच का प्रतमक्ष प्रभाव पड़ता है। हमैं अपनी ही तरह के कुछ व्यक्ति रंगमंच पर दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी धारणाएं तथा दृष्टिकोण पृथक होते हैं और जो विशिष्ट मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे पूर्णतया स्वाभाविक दिखाई देते हैं और जब वे रंगमंच पर अभिनय करते हैं अथवा जब वहां उनके साथ कोई घटना घट जाती है, इसके दृष्टि-गोचर होने से दर्शकों पर पड़ने वाला प्रभाव बड़ा प्रबल होता है। रंगमंच पर किया गया प्रदर्शन हमारे लिये किसी भाषण अथवा लेख से कहीं अधिक विश्वासोत्पादक होता है। और उनके अनुभव और अन्त से हम निजी स्थितियों के परिणाम पर पहुंचते हैं। श्रेष्ठ अभिनय, यदि इसके साथ सशक्त संवाद और रंगमंच की उपयुक्त रचना हो तो उसमें परिस्थिति के अनुसार हमारी भावनाओं के आन्दोलित करने की शक्ति होती है। हम क्रोध और घृणा, समवेदना और भय, प्रेम और हर्ष से आप्यायित हो जाते है। हम किसी को चाहने लगते हैं और किसी से घृणा करने लग जाते हैं। और तब दर्शक इसके नैतिक पक्ष से अवगत होते हैं। कभी नैतिकता नाटक में कहीं अन्तर्निहित रहती है और कभी सुस्पष्ट और प्रत्यक्ष होती हैं।

'नमां ग्रां' एक सन्देश को लेकर लिखा गया था : कि लोगों के द्वारा किए जाने वाले सम्मिलित प्रयास गांव को उन्नति और प्रसन्नता की ओर उन्मुख कर सकते है और कुछ लोगों के षड्यन्त्र और विरोध लोगों के दृढ़ संकल्प के सन्मुख नहीं टिक सकते । साहित्य की किसी भी अन्य बिधा से अधिक नाटक में पात्र तुरन्त प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं और किन्हीं मूल्यों के प्रतीक बन जाते हैं और नाटक अथवा नाटककार की सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि इसके पात्र उन व्यक्तियों अथवा मूल्यों का मानवीकरण करने में कहां तक सफल रहे हैं । आरंभ में हमें विदित हो जाता है कि रसीला के समेत माधो और जमादार श्रेष्ठ लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं । कुछ पात्र मध्यवर्त्ती कोटि के होते हैं, कुछ भीरु हृदय होते हैं और कुछ दूसरों के दृष्टिकोण और व्यवहार में शिथिलता और अस्पष्टता रहती है । ऐसे सभी चरित्र अथवा दल और वर्ग हमारे गांवों में विद्यमान होते हैं । नमां ग्रां' कुछ प्रत्यक्ष समस्याओं को लेकर लिखा गया है और कुछ हद तक उन समस्याओं को उठा कर उनका समाधान भी किया गया है, यह सफलता का लक्षण है । जहां तक उन समस्याओं का सम्बन्ध है, उनमें कुछ भी कृत्रिम और अस्वाभाविक नहीं हैं । इसमें छूतछात, पूंजीवादी और सामंतशाही शोषण अन्ध-विश्वास और अज्ञान की समस्याएं उठाई गई है । इन सबका निरूपण बड़ी योग्यता के साथ किया गया है । 'नमां ग्रां' हमारे प्रदेश डुग्गर का कोई भी गांव हो सकता है । इस प्रकार के लोग प्राय: सभी गांवों में पाए जाते हैं । इसके द्वारा विषय-वस्तु में सार्वभौमिकता आ गई है । और विषय-वस्तु का विन्यास सामूहिक दृष्टि से देखने पर स्वाभाविक लगता है । इसमें तीव्र विषमताएं नहीं दिखाई गई हैं अर्थात् इसमें कोई भी पक्ष पूर्णतया निर्दोष अथवा पूर्णतया सदोष नहीं है । गांव का दृश्य, जहां तीन तरह का प्रतिनिधित्व करने वाली तीन स्त्रियां वार्त्तालाप करती हैं, बड़ा सजीव बन पड़ा है । बीच बीच में

संवाद बड़े सशक्त और प्रभाव-जनक हैं और इनकी शैली व्यावहारिक और ओजःपूर्ण हैं। शिल्प की दृष्टि से बड़ा सरल है और बड़ी आसानी से मंच पर खेला जा सकता है। सेटों को बिना किसी बड़ी कठिनाई के मंच पर व्यवस्थित किया जा सकता है। कथावस्तु का विकास पर्याप्त संतोषजनक है और बहुत सी बातें तर्क-संगत रूप में कारण-कार्य न्याय से आगे बढ़ती हैं।

और फिर भी, इन सब गुणों के रहते, रंगमंच पर सफलता प्रदर्शन के योग्य होते हुए भी 'नमां ग्रां' को एक प्रथम कोटि की साहित्यिक कृति नहीं कहा जा सकता। मंच-विषयक सुविधाओं के लिए और देश में चल रहे रचनात्मक-कार्य में योगदान देने की भावना के कारण इसमें अनेकों साहित्यिक गुणों की आहुति दे दी गई है। और फिर गीतों तथा तमाशे जैसी कुछ बातों का समावेश दर्शकों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करने के उद्देश्य से किया गया है। यद्यपि यह एक तथ्य है कि ये कहानी को कोई सहायता नहीं देते और न ही इसके साथ इनकी कोई प्राकरणिक संगति ही है। इस पर रेडियो-नाटक अथवा फ़िल्मी-कहानी का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है। माधो के चरित्र में पहले दृश्य के बाद ही दृढ़ता आती है। वह न तो अज्ञानी है और न बुद्धू ही दिखाई देता है, जैसा कि उसे भूमिका में दर्शाया गया है। और न ही प्रथम दृश्य वाला माधो बाद के माधो के साथ कोई मेल खाता है। प्रथम दृश्य वाला माधो कहानी में और दर्शकों के सन्मुख लेखकों की सुविधा की अनुकूलता के लिए लाया गया है। प्रथम दृश्य के बाद की यह विकृति—क्योंकि यह इससे तनिक भी कम नहीं है—अस्वाभाविक और अनपेक्षित है। गीत भी कम संख्या में रखे जा सकते थे। बाबू के अभिप्रायों को अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया जा सकता था। कहीं कहीं सन्तूशाह के मुंह पर चढ़े हुए शब्दों—'कैसा मूर्ख

ऐ—की प्रसंग के साथ संगति नहीं बैठती । पहले दृश्य के बाद जमादार तथा माधो के चरित्रों तथा रसीला, सन्तू शाह, पन्त और लाजो के चरित्रों का भली भांति विकास हुआ है, किन्तु बाबू अधिक प्रभावित नहीं कर पाता ।

इसमें कुछ भाषा-गत त्रुटिया भी हैं तथा उर्दू और डोगरी के मिश्रण से बनाए गये शब्द कानों में अखरते हैं, जैसे—भलाई बेहतरी, गरीब गुर्बे, मलियामेट । सम्भवत: लेखकों के अनुप्रास के प्रलोभन के कारण ही ऐसा हुआ हैं । जमादार के भाषण बहुत लम्बे और मंचीय हो गए हैं । सन्तू शाह बाबू से कहीं अधिक धूर्त, कपटी और दुष्टस्वभाव का है । उस उद्देश्य की दृष्टि से, जिससे कि यह नाटक लिखा गया था, यद्यपि यह नितांत स्वाभाविक है, केवल देखने ही में सुन्दर लगता है, क्यों कि यद्यपि नाटक में सन्तूशाह बाबू को समाप्त कर दिया गया हैं, उनका वस्तुत: अन्त नहीं हुआ है और उनके षड्यन्त्रों के प्रति सतर्कता में ढील नहीं लाई जा सकती । लाजो और माधो के बीच के संवादों में और स्वाभाविकता नहीं है और इनके अन्तिम शब्द प्रभावित नहीं करते :

माधो : 'कौन जीता है ?'
लाजो : 'मैं जीती हूं ।'

परन्तु उन सब त्रुटियों के रहते भी 'नमां ग्रां' मंच पर एक सफल नाटक सिद्ध हुआ है और इसने डोगरी के गद्य-साहित्य में भी अभिवृद्धि की है । रंगमंच पर यह इतना सफल हुआ कि भारत सरकार के सामुदायिक प्रायोजना तथा एन. ई. एस. के मंत्री श्री एस. के. दे ने इसका अनुवाद हिन्दी में कराने की इच्छा प्रकट की । इसे जम्मू की लगभग सारी तहसीलों और अनेकों कस्बों तथा गांवों में खेला जा चुका है ।

'धारें दे अथ्रू'' (१९५९) 'नमां ग्रां' की सफला से डोगरी गद्य के लेखकों को नई स्फूर्ति मिली वेद राही दीनू भाई पन्त और रामनाथ शास्त्री नाटक लिखने की ओर प्रवृत्त हुए और 'धारें दे अथ्रू'' (वेदराही) 'सार' (प्रो० रामनाथ शास्त्री), 'सरपंच' और 'संझाली' (दीनू भाई पन्त) आदि नाटक लिखे गये। वेद राही एक लोकगीत से प्रेरित हुए जिसमें 'दोहरी' और अनमेल विवाह की बड़ी मार्मिक व्याख्या है। पर लड़की, चूंकि अन्धविश्वास के वातावरण में पली है, वह उस समय तक प्रतीक्षा करती रहती है, जब तक कि उसका पति जवान होगा। वह अपने पति को छोड़ किसी दूसरे के साथ प्यार करने की बात तक भी नहीं सोच सकती। वेदनासिक्त होते हुए भी कामना उसके पति विषयक कर्तव्य के पथ में बाधक नहीं होती।

दोहरी और अनमेल-विवाह की समस्या पर डोगरी के कई लेखकों ने लिखा है। भगवतप्रसाद साठे की 'दोहरी' और नीलाम्बर की 'पहाड़े दी कहानी' में इस कुप्रथा की कड़ी निन्दा की गई है। वेदराही ने भी उर्दू में दोहरी पर एक कहानी लिखी है। 'धारें दे अथ्रू'' में भी वे इसी विषय का नाटकीकरण करना चाहते हैं। इसके लिये इन्हें पहले ही हर बात के लिए योजना बनानी थी। आप समाज को युगों पुरानी निद्रा से जगाने के लिये रंगमंच को साधन के रूप में प्रयुक्त करने तथा इस पुरानी कुरीति का उन्मूलन करने के इच्छुक थे। यह बात स्पष्ट है कि अपने नाटक के द्वारा वेदराही भी लोगों के लिए वही कुछ करना चाहते थे, 'नमां ग्रां' द्वारा शास्त्री, दीनू और अबरोल जिसे करने का प्रयास कर चुके थे। दोनों नाटक आदर्शवाद की भावना से प्रेरित हैं और इसी कारण कहीं कहीं इनकी बातें वास्तविक दिखाई नहीं देती। अपने नाटक में राही दोहरी के दुष्परिणाम दिखाना चाहते थे। परन्तु, इनके कथनानुसार, यह अपने आप में पर्याप्त नहीं होगा, इसका कोई समाधान सुझाना भी अपेक्षित है।

उन कुरीतियों का विरोध करने वाली शक्तियां, इस प्रकार के अनाचार करने वाली शक्तियों का नाश करने के लिये काफ़ी सुदृढ़ होनी चाहियें। इस दृष्टि से इसके पात्र भले और बुरे के रूप में समुचित रूप में संतुलित हैं। लच्छमी, पेंच मामा और रतन अच्छे चरित्र हैं। शम्भू चाचा दुष्ट शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। लाजो (नायिका) वह केन्द्र - विन्दु है, जिसके आस-पास ये शक्तियां मंडराती हैं तथा जिसके लिये यह निर्णायक युद्ध लड़ा जाता है।

यहां तक सब अच्छा है। परन्तु राही की कला की कुछ अन्तवर्ती त्रुटियां हैं जिनका प्रस्तुत नाटक पर भी प्रभाव पड़ा है। आप तमाम सूत्रों पर नियन्त्रण रखे हुए हैं; जिसका परिणाम यह हुआ है कि प्राय: सभी स्वयं कार्य करते प्रतीत नहीं होते, प्रत्युत ऐसा लगता है, जैसे इनसे बलात् कार्य करवाया जा रहा हो। इस दिशा में एक मात्र अपवाद शामू चाचा है। ऐसा लगता है कि वह राही के नियन्त्रण के बाहिर हो जाता है और स्वतन्त्र अस्तित्व धारण कर लेता है। वह अपनी इस सत्ता का अनुभव करता है क्योंकि इस में दृढ़ संकल्प की भावना है, जो हमें नाटक के अन्य चरित्रों में कभी कभी ही दिखाई पड़ती है। यद्यपि राही की इच्छा लच्छमी को केन्द्रीय महत्व का चरित्र रखने की रही है, पर हुआ यह है कि वह अपने लिये कुछ नहीं कहती, अपितु राही ही उसके माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। यह नाटक की एक गम्भीर त्रुटि है और इसकी प्रबलता और इसकी विशिष्टता का ह्रास करती है। केवल प्रथम अंक के पहले दृश्य तथा द्वितीय अङ्क के चौथे दृश्य में जाकर लच्छमी और रतन अपने निजी संकल्पों से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। पहले अंक के दूसरे दृश्य में पनचक्की (प्रपीड़न की चक्की) का उल्लेख प्रतीकात्मक है; यह नाटक को इसकी सामान्य स्थिति से ऊपर ले जाता है, क्योंकि अधिकांश समय तक स्थिति कटी-फटी और आयास-निर्मित दिखाई

देती है और इसका अन्त अत्यन्त भावुकता लिये हुए है, जो कितना ही अपेक्षित क्यों न हो, विश्वसनीयता से दूर है। बीच-बीच में भाषा त्रुटिपूर्ण है। दृश्य पहाड़ी क्षेत्र किन्तु भाषा मैदानी इलाके की है, जो उस क्षेत्र में नहीं बोली जाती है बल्कि शहरों में बोली जाती है। इसमें कई ऐसे शब्द आ गये हैं, जो शायद डोगरी और पंजाबी दोनों में एक जैसे हों, किन्तु इनका वाक्य-विन्यास ऐसा है कि ये पंजाबी के ही प्रतीत होते हैं। नाटक देशकाल की दृष्टि से भी स्पष्ट नहीं है। कहानी वास्तव में किस स्थान पर घटित हुई है ? इस दिशा में राही नरेन्द्र खजूरिया से बहुत मेल खाते हैं। स्थान के सम्बन्ध में अस्पष्टता इसके स्वरूप की विशिष्टता को निःसन्देह घटाती है। (यदि यह कहानी किसी विशेष स्थान अथवा किसी क्षेत्र विशेष से संबंध नहीं रखती है तो यह किसी भी इलाके की कहानी नहीं हो सकती।)

नाटक लिखते समय राही महोदय ने लाजो और शम्भू चाचा के कल्पित सम्बन्ध पर एक सरसरी नज़र डाली है। जबकि 'पैंच मामा' उसे अपनी माता के रिश्ते की भतीजी (भनेई) बताता है, तो दूसरे लोगों का कहना है कि वह उसका दूर के रिश्ते का मामा है और वह भी उसे इसी नाम से पुकारती है। इस त्रुटि को बड़ी आसानी से दूर किया जा सकता था।

'धारें दे अथ्रू' एक ऐसा नाटक हैं जिसे किसी बड़े झंझट के बिना खेला जा सकता हैं। पात्र अधिक नहीं हैं और न ही ज्यादा सेटों की ही आवश्यकता है। जैसा कि आपने इसकी भूमिका में स्वयं कहा है, आपने इसकी रचना इस ढंग से की है कि वे सभी कठिनाईयां दूर कर दी जाएं जो किसी नाटक के रंगमंच पर खेलने में बाधक होती है। नाटक को सफलतापूर्वक खेला जा चुका है और श्रेष्ठ अभिनय इसकी त्रुटियों को निस्तेज

करके इसे एक श्रेष्ठ साहित्यिक कृति की कोटि में ले आता है। परन्तु उन दिनों, जब डोगरी नाटकों का इतिहास बड़ा पुराना नहीं था, राही का 'धारें दे अथ्रू' डोगरी नाटक-साहित्य में एक उपयोगी अभिवृद्धि थी।

'खीरली भेंट' (अन्तिम भेंट)। रामनाथ शास्त्री ने 'बावा जित्तो' नामक पहला नाटक लिखा था। आप 'नमां ग्रां' के सह-लेखक भी है। आपने 'सार' नाटक भी लिखा है जो अभी पाण्डुलिपि के रूप में ही है। आपने टैगोर कृत 'बलिदान' का 'खीरली भेंट' के नाम से डोगरी रूपान्तर भी किया है। यह अनुवाद स्वयं टैगोर द्वारा कृत इसके अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित है। बंगला के संस्करण से इस नाटक का कलेवर अपेक्षतः छोटा है; पात्र-संख्या कम है, इसमें केवल दो सेट और थोड़े से दृश्य हैं, जिसके फलस्वरूप यह अभिनय की दृष्टि से बड़ा सरल बन पड़ा है।

शास्त्री जी मूल रचना से अधिक दूर नहीं निकल गए हैं और इसे संतोषजनक रूप में प्रस्तुत किया गया है। तो भी एक अन्तर उल्लेखनीय है : मूल रचना में नक्षत्र का चरित्र उतना हंसाने वाला नहीं है, जितना कि इसे डोगरी के संस्करण में दिखाया गया है; किसी किसी स्थल पर भाषा में शिथिलता आ गई है और वाक्य दुरूहता की सीमा तक लम्बे हो गए हैं। अपर्णा, जयसिंह और पुजारी के चरित्रों को डोगरी में विश्वसनीय ढंग से निरूपित किया गया है। चांदमल और सेनापति की भूमिका बड़ी संक्षिप्त है और अपनी विदूषकात्मक प्रकृति के कारण नक्षत्र कुछ सजीव क्षणों की सृष्टि करता है। महाराज और महारानी का पुनरांकन समुचित ढंग से किया गया है।

'खीरली भेंट' ने केवल डोगरी नाटक को समृद्ध ही नहीं किया है अपितु इसने डोगरी पाठकों को बंगाल की सर्वश्रेष्ठ

प्रतिभा-गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर—से परिचित कराया है, और पाठक को इसकी अनुवादगत त्रुटियों की उपेक्षा करने की अभिलाषा होती है।

'सरपंच' : दीनू भाई पन्त की रचना है। कवि के रूप में अधिक प्रसिद्ध दीनू भाई पन्त ने रामनाथ शास्त्री और रामकुमार अबरोल के साथ मिलकर नाटक लिखने का पहला प्रयास किया था, जिसका परिणाम 'नमां ग्रां' नामक नाटक था। इस नाटक में दीनू की नाटक लिखने की प्रतिभा को स्वतन्त्र क्षेत्र उपलब्ध नहीं हुआ था और सरपंच का आगमन सबके लिए आश्चर्य का विषय बना। इसकी कहानी हमें बीरपुर के दाता रानू नामक एक ब्राह्मण पुरोहित के विषय में बताती है जो न्याय और नैतिकता के लिये अपने प्राणों की आहुति दे देता है। बाड़्गी और चौधरी के बीच पारिवारिक विवाद है और रानू को इनकी मध्यस्थता करने के लिये कहा जाता है। सरपंच के रूप में रानू अपना निर्णय चौधरी के पक्ष में देता है। बाड़्गी इसे सहन नहीं कर सकता और वह इस प्रकार का षड्यन्त्र रचता है कि जिसके परिणामस्वरूप रानू की मृत्यु हो जाती है। बाड़्गी अपने इलाके का शासक बन जाता है, परन्तु शीघ्र ही उसे अपनी क्रूरता की कीमत चुकानी पड़ती है।

प्रस्तुत नाटक एक ऐतिहासिक विषय को लेकर लिखा गया है परन्तु दीनू इसमें शाही दरबारों के ठाट-बाट को अधिक मात्रा में नहीं ला पाये, क्योंकि आप वैयक्तिक चरित्रों और सामाजिक व्यवस्था में बीच बीच में प्रकट होने वाली विषमताओं को चित्रित करते है। फलतः ऐसा हुआ है कि इसके पात्र व्यक्ति नहीं रहते अपितु 'टाईप' वन जाते हैं, और उन्हीं के द्वारा—यद्यपि ये साधारण पात्र हैं—हमें उस युग की, उस काल के पददलित किसानों की और पोलीस की क्रूरता की तथा सामंत-अधिपति बाड़्गी की

झलक मिलती है। दातारानू केवल बीरपुर का पुरोहित ही नहीं है वरन् न्याय और नैतिकता का प्रतीक भी है, जिसे किसी प्रकार की धमकियां या धूर्तता पूर्ण प्रवंचनाओं के कपट जाल भी नैतिकता के सिंहासन से नीचे नहीं गिरा सकते। बांगी केवल अपने चचेरे भाई चौधरी को सम्पत्ति के भाग को बलपूर्वक हथियाने वाला बीरपुर सामन्त-शासक ही नहीं है, अपितु वह उन सब सामतशाहो का प्रतिनिधित्व करता है जो दूसरों के परिश्रम और भाग के बल पर उन्नति करते हैं। और जब ये खुशामदी लोगों से घिर जाते हैं तो ये अपना सारा मानसिक सन्तुलन, सारा विवेक और न्याय-परायणता खो देते हैं और अपनी इस नपुंसकता की झोंक में अपने को सर्वशक्तिमान तक समझने लगते हैं। चौधरी बांगी का एकमात्र चचेरा भाई नहीं हैं, पर वह न्यायप्रियता का प्रतिनिधि है—और वह परिस्थितियों के वश तथा बांगी के षड्यन्त्रों द्वारा परास्त हो जाता है। पर उसे कभी भी मिटाया नहीं जा सकता, क्यों कि वह अन्त में विजयी रहता है। बांगी का भाई चोलो मानवता की ऐसी भावना का प्रतिनिधि है, जो इस सब के बीच भी भ्रष्टाचार के वातावरण से दूषित नहीं हुई है और जिसे निठल्ले धनी का वैभवशाली जीवन बिताने की अपेक्षा परिश्रम की गरिमा अधिक प्रिय है। मोहितबर उन समासदों का प्रतिनिधि है जो निन्द्य उपायों द्वारा लाभान्वित होना चाहते हैं, और जो अपने स्वामियों को सच्ची और ईमानदारी की बातें न बता कर, उनके साथ ऐसी वातें करके जैसी कि उनके स्वामी उन से सुनना चाहते है, उन के कृयापात्र बने रहते हैं। फिड्डू नाई उन लोगों की प्रतिमूर्ति है जो सदा से समाज में हीन समझे जाते रहे हैं, पर जिनकी एक पग ऊंचा उठाने की लालसा उन्हें असन्दिग्ध बनने को उद्यत करती है, यद्यति ये इतने भीरु होते हैं कि कोई दूसरा मार्ग न अपना कर कुत्सित और नीचता का मार्ग अपनाते हैं। रानू की मां इस भावना से आप्यायित रहती कि सत्यको सदैव असत्य पर विजयी होना चाहिए, भले ही उसके

बेटे को उसके लिये अधिकतम मूल्य चुकाना पड़ता है । रानू की पत्नी शुक्रा डुग्गर की एक आदर्श नारी है, जो अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा अपने पति को सर्वाधिक चाहती है । साधारण खेतिहरों और किसानों तक को नहीं भुलाया गया है, उन्हें भी नाटक में अपना स्थान मिला है और वे हमारी सहानुभूति के पात्र बनते हैं। यही वे गुण हैं जिन से यह नाटक सार्वजनिक आकर्षण पा सका है।

प्रस्तुत नाटक वेदनामय विषाद को मुखरित नहीं करता, क्यों कि फिर तो यह एक त्रासजनक कृति बन कर रह जाता । अपितु इसमें ऐसी भावना उदित हुई है कि रात की कालिमा को नवल प्रकाश की किरणें विदीर्ण कर देंगी और मानवता की श्रेष्ठ भावनाओं द्वारा इस अनाचार को मूलोच्छेद कर दिया जाएगा । बाङ्गी जो निरीह लोगों पर किये जाने वाले अत्याचारों का प्रतिनिधि है, और मध्यस्थ रानू की हत्या की योजना बनाता है, प्रतिकार लेने वाली शक्तियों के प्रतिशोध—विषयक न्याय का शिकार होता है: वह कोढ़ी हो जाता है और घिनावनी मौत मरता है ।

नाटक का शीर्षक उपपुक्त है, क्यों कि रानू की हत्या इस लिये की जाती है कि वह एक मध्यस्थ के रूप में संपत्ति के विभाजन संबंधी विवाद में चौधरी के पक्ष में निर्णय देता है । और इसके साथ ही यह नाटक आज के युग में पंचायत-संस्था के कार्य और इसकी महत्ता को प्रदर्शित करने के उद्देश्य को पूरा करता है । गीत अर्थपूर्ण हैं विभिन्न सूत्रों को मिलाने का कार्य करते हैं।

अलबत्ता एक नाटक की सच्ची परीक्षा न तो उसके गीतों से और न ही उसके संवादों से की जा सकती है अपितु इसकी रूपकी-करण की कला द्वारा होती है। 'सरपंच' केवल पढ़ने में ही प्रभावजनक नहीं है अपितु यह दर्शक-समाज पर एक गहरी छाप

छोड़ जाता है। इसे जम्मू, उधमपुर और कठुआ जिलों के सभी ब्लाकों में खेला जा चुका है। इसके संवाद ओज:पूर्ण और चटकीले है, व्यंग्योक्तियों की चाशनी लिये हुए इसका हास्य सजीव है और भाषा परिपुष्ट है। और 'मार गोली' जैसे अशुद्ध प्रयोग भी—क्यों कि आज से आठ शताब्दी पूर्व बंदूकें होती ही नहीं थीं—'सरपंच' की वास्तविक उत्कृष्टता को कोई क्षति नहीं पहुंचाते हैं। और निश्चित रूप में यह अब तक के डोगरी नाटकों में श्रेष्ठतम है।

नाटक के क्षेत्र में दीनू का अगला प्रयास 'संभाली' है। यह नाटक सहकारिता के विषय पर लिखा गया है। दीनू पंचायत-विभाग में काम करते हैं, और ग्रामीण लोगों को समस्याओं को भली भांति समझते हैं। सुधारवादी होने के कारण आपने (अपने नाटक में) गांव के लोगों को उन्नति का सब से उत्तम और सबसे छोटा मार्ग सुझाया है। प्रस्तुत नाटक साहूकार को लेकर लिखा गया है। जो परिवर्तनों का विरोधी है, पर अन्त में जिसे संयुक्त और सहकारिता के प्रयासों द्वारा श्रेष्ठ कार्य करने की ओर मोड़ दिया जाता है।

इनकी पूर्वरचित कृति 'सरपंच' की तरह 'संझाली' एक प्रभावोत्पादक रचना नहीं है। इसमें दीनू आंकड़े जुटाने में इतने तल्लीन हो गए हैं कि आपको नाटक के मूलतत्व--कार्य--की ओर ध्यान ही नहीं रहा है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि यह एक निष्प्राण-वार्ता बन कर रह गया है। नाटक में एक और दोष यह है कि दीनू भाई इसमें फ़िलमी वातावरण ले आये हैं, जो इसे अधिक रोमैंटिक बना देता है, जो कि इस स्थिति में अपेक्षित नहीं है। रतन के प्रति साहूकार की बेटी का प्यार, साहूकार और पटवारी का षड्यन्त्र, रत्न की गिरफ्तारी और साहूकार की बेटी के हस्ताक्षेप से उसकी रिहाई, सिनेमा देखनें वालों के लिये एक जानी-पहचानी स्थिति है और जो वास्तविकता को झुठलाती है। इसके लिए दीनू

का स्पष्टीकरण, कि सहकारिता के आन्दोलन का वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं है और इस लिये एक ऐसा मोड़ दे कर ही लोगों को इसकी भावना से अवगत कराया जा सकता है, केवल आंशिक रूप में ठीक है।

और जब तक दीनू इस नाटक पर पुनः दृष्टिपात करके इसे छोटा नहीं करते, इसके पात्रों की संख्या नहीं घटाते और इसके संवादों को परिमार्जित नहीं करते, ताकि इसमें और प्रत्यक्षता और तीव्रता आ जाए, तब तक यह नाटक आपके पूर्वरचित श्रेष्ठतम नाटक 'संरपंच, की अपेक्षा अति न्यून स्तर का रहेगा।

दीनू ने 'स्वर्ग की खोज' नाम से एक हिन्दुस्तानी नाटक हिन्दुस्तानी में भी लिखा है।

राम कुमार अबरोल कृत 'देहरी'। 'नमां ग्रां' के लिखने में रामनाथ शास्त्री और दीनू भाई पन्त के साथ सहयोग देने के बाद अबरोल ने देहरी' नामक डोगरी नाटक लिखा। इस से पूर्व इन्हों ने 'और इन्सान जीत गया' नाम से उर्दू में एक नाटक लिखने का प्रयास भी किया था। 'देहरी' वस्तुतः अबरोल की अपनी 'गैरतू दा मुल्ल' शीर्षक कहानी के विषयवस्तु, उसकी स्थितियों और यहां तक कि उसके पात्रों का विस्तरग है, परन्तु 'गैरतू दा मुल्ल' में अबरोल ने जो कुछ विवरण के रूप में कहा है उसे 'देहरी' में संवादों के रूप में कहा गया है। परिणाम यह हुआ है कि पाठक यह समझने लगता है कि अबरोल अपने ही कथन को दुहरा रहे हैं।

रंगमंच की दृष्टि से अब्ररोल ने जिस तकनीक को अपनाया है वह चातुर्यपूर्ण है; नाटक को खेलना वड़ा आसान बन पड़ा है। और वह युवक स्वयं अबरोल के अतिरिक्त और कोई नहीं जो गांव में उस स्थान पर आता है, जहां पर देहरी बनी हुई है।

रंगमंच की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया गया है। परन्तु ग़लत अभिव्यक्तियां, त्रुटिपूर्ण भाषा, पुनरुक्तियां और कृत्रिमता जैसे जो दोष अबरोल की कहानियों में हैं वे इस नाटक में भी दृष्टिगत होते हैं। वेदराही कृत 'धारें दे अथ्रू' की भांति 'देहरी' भी दोहरी—अनमेल विवाह—की समस्या को लेकर लिखा गया है। स्वयं एक अभिनेता होने के कारण अबरोल ऐसे चरित्रों की की सृष्टि करते हैं जो अपने स्वभाव और स्वरूप से प्रभावशाली होते हैं और जो रंगमंच पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। और न तो विषयवस्तु और न उसका निर्वहण इस बात की अपेक्षा करता है कि शाम की मृत्यु का देहरी के रूप में एक स्मारक बनाया जाए जहां पर यात्रियों की तरह हज़ारों लोग मानसिक शान्तिलाभ के लिये उमड़ पड़ें। अबरोल की रचना 'देहरी' अपने नायक के लिये पाठकों के हृदय में स्थान पाने में दीनू के सरपंच रानू की भांति सफल नहीं हो पाई है। क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किसी रचना की सच्ची परीक्षा इसके विषयवस्तु अथवा संवादों से नहीं हो सकती, अपितु इसके रूपकीकरण से हो सकती है। अबरोल का नायक शाम, दीनू भाई के नायक दाता रानू के सामने एक परछाईं सा दिखाई देता है। मोहितबर का बार बार 'के आखदा' कहना, जबकि इसकी कोई उपयोगिता भी नहीं होती, मोहितबर के अपने मुंह पर चढ़े वाक्यांश का यह उपयोग उतना उसके स्वभाव का अंश प्रतीत नहीं होता, जितना कि यह रामकुमार के मन को ठेस पहुंचाता है, जो अपने पात्रों को इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहते हैं कि उन्हें सरलता से स्मरण रखा जा सके। इसमें 'नमां ग्रां' में पूर्वप्रदर्शित शैली पर चलने का अभ्यास भी दिखाई देता है: 'मूर्ख कुसा पासे दा' और सरपंच में 'मार गोली'।

अपनी कृतियों में अबरोल एक आदर्शवादी हैं, इस लिए आप पूर्णतः विभाजित विषमताओं का अध्ययन करने और उनको अभिव्यक्त करने में विश्वास रखते हैं। श्रेष्ठ अभिनय के कारण

यह रंगमंच पर अच्छा चल जाता है किन्तु यह पाठकों को, वास्तविक जीवन में इस प्रकार की विभाजित विषमताओं के अस्तित्व का विश्वास नहीं दिला सकता। अतएव यही कारण है कि 'देहरी' एक महान् कृति की कोटि में रखने योग्य नहीं है, यद्यपि नाटक में कुछ तनावपूर्ण स्थितियां और कुछ सुकुमार क्षण अवश्य आते हैं।

अबरोल कभी न थकने वाले लेखक हैं। आप एक बार कुछ लिख कर उसे पुनः लिखते हैं और अपनी पहली कृतियों कों सुधारते हैं। आप के पग भले ही डगमगा जाएं पर आप रुकते नहीं हैं। और इनका यह गुण एक आशाजनक लक्षण है कि अबरोल की भविष्य में लिखी जाने वाली कृतियां इन त्रुटियों से मुक्त होंगी, जिनमें आपके श्रेष्ठ और प्रभावशाली अभिनेता के आत्मचेतना-परक तत्व द्वारा दूसरों को बौनों की भांति न्यून बनाने का प्रयास हो।

———

उपन्यास

विश्व के अन्य साहित्यों की भांति डोगरी में भी साहित्य के चित्रपट पर उपन्यास सब से अन्त में प्रकट हुआ। इसके कारण हैं। साहित्य की किसी भी अन्य विधा से उपन्यास में जीवन के विस्तृत विवरणों के ज्ञान, प्रौढतर दृष्टि और भाषा के उपकरणों के अत्यधिक विकास की सर्वाधिक आवश्यकता रहती है। कविता, विशेष रूप में लोक-कविता, साहित्य में सर्वप्रथम आविर्भूत होती है क्योंकि इसकी संक्षिप्तता का तात्विकता से समन्वित होता अपेक्षित होता है। गद्य के लिये अपेक्षतः अधिक समय और स्थान की आवश्यकता रहती है। परन्तु कहानी की अपेक्षा, जो वस्तुतः एक ही विषय-वस्तु अथवा स्थिति अथवा जीवन के एक ही विशिष्ट पक्ष को लेकर लिखी जाती है, उपन्सास में महत्तर ज्ञान और सूझबूझ की आवश्यकता रहती है; इसका आलेख्यपट अपेक्षतः बहुत अधिक बड़ा होता है और इसमें पात्रों का समावेश बहुत बड़ी संख्या में रहता है।

इस लिये यह एक आश्चर्यजनक बात है कि डोगरी में, जिसके लिखित साहित्य का प्रारम्भ अभी दो दशक पूर्व ही हुआ

है, उपन्यास का प्रादुर्भाव भी हो चुका है। इसके लिये भाषा की सम्पन्नता को भी उतना ही श्रेय प्राप्त है जितना कि इसके लेखक बधाई के पात्र हैं। अब तक नरेन्द्र खजूरिया, वेदराही और मदन मोहन शर्मा ने एक एक उपन्यास लिखा है, जो प्रकाशित हो चुके हैं। नरेन्द्र खजूरिया और मदनमोहन दोनों के लिखे एक एक और उपन्यास अभी पाण्डुलिपि के रूप में ही हैं। श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त भी एक उपन्यास लिख रहे हैं जो अभी तक पूरा नहीं हो पाया है और जिसे अभी कोई नाम नहीं दिया गया है।

प्रशान्त की शैली पत्रकारों वाली है; आप व्यवसाय से पत्रकार हैं और आपने जम्मू के लग-भग सभी इलाके देखे है। आप लोगों के बीच रहे हैं और उनकी प्रवृत्तियों, उनकी मनःस्थितियों और उनकी भाषा को समझते हैं। अपने उपन्यास मैं आपने लोगों के सम्मुख उभरी हुई समस्याओं का विवेचन किया है: इसमें राजनीति, कृषिशास्त्र और धार्मिकता के अणु विद्यमान हैं, पर इसका विषय वस्तुतः सामाजिक है। प्रशान्त स्पष्टत; बंगला के लेखकों विशेषतः बंकिम और शरत् से प्रभावित दिखाई देते हैं और यह उपन्यास बहुत हद तक शरत् के 'श्रीकान्त' का ऋणी है। वैसा ही वातावरण है. उसी प्रकार के चरित्र हैं, विशेषतः 'बुआ' जो राज्यलक्ष्मी से मिलती-जुलती है, और वक्ता स्वयं भी उसके नायक श्रीकान्त के अनुरूप है। परन्तु प्रशान्त कभी कभी अपने विचारों में खो जाते हैं, अपने ही भावों से आप्यायित हो जाते हैं और आपकी अपनी विषयगत पकड़ शिथिल होने लगती है तथा विवरण अपने स्वरूप को खोने लगते हैं। परन्तु सम्पूर्ण कृति का अनुमान इसके अब तक के लिखे अंश से नहीं लगाय जा सकता। अतः हमारे लिये अच्छा यह रहेगा कि इससे आगे कुछ न कह कर हम इसके पूरा होने की प्रतीक्षा करें।

नरेन्द्र खजूरिया। तीनों उपन्यास, नरेन्द्र खजूरिया कृत 'शानो' मदनमोहन का 'धारां ते धूडां' और वेदराही रचित

'हाड़ बेड़ी ते पत्तन' आजकल के जीवन, ग्रामीण इलाकों के वातावरण से संबंध रखते हैं। सामूहिक दृष्टि से ये हमारे सन्मुख हमारे गांवों का विशद और विशाल चित्र उपस्थित करते हैं और सामाजिक व्यवस्था के कई कुरूप तथ्यों को हमारे सामने रखते हैं।

नरेन्द्र खजूरिया का 'शानो' हमें उस वातावरण से परिचित कराता है जहां गांवों की उन्नति के लिये रचनात्मक प्रयास किये जा रहे हैं। उपन्यास का नायक शङ्कर एक ग्रामीण है, जो सेना में रह चुका है और जिसकी प्रमुख सम्पत्ति उसका साहस तथा बलिदान की भावना है। सामने से आती हुई रेलगाड़ी से एक छोटे बच्चे को बचाने के प्रयास में शंकर अपनी एक टांग खो बैठता है। इस घटना से उसकी सब विपत्तियों का सूत्रपात होता है। उसे अपने किये श्रेष्ठ कार्य पर खेद नहीं है। उसकी पत्नी शानो का अपने पति के प्रति अनुराग और प्रेम उसे हमेशा सांत्वना देता है और उसका साहस उसकी भावनाओं में कभी शिथिलता नहीं आने देता।

नरेन्द्र का यह उपन्यास उनकी पूर्वरचित 'दिनवार' और 'धरती दी बेटी' का विस्तरण है। इसकी परिस्थितियां तथा वातावरण सब उन जैसा है। यहां तक कि इसके मुख्य चरित्र भी इन दो कहानियों के मुख्य चरित्रों का विस्तरण हैं। इसके परिणामस्वरूप हमें इसमें वही गुण और वही त्रुटियां दृष्टिगत होती हैं जो हम इन कहानियों में देख चुके हैं। ये वस्तुतः उपन्यास के ढांचे में ही निहित हैं।

नरेन्द्र के विषय में स्मरण रखने योग्य बात इनका आदर्शवाद और जो होना चाहिये और जो है के बीच की विषमता है। ऐसा आदर्शवाद किसी लेखक को प्रचार की सीमा तक ले

जाता है, और जब तक लेखक अपने प्रति कठोर नहीं बनता, और अपने विचारों और भावों पर संयम नहीं रखता, तब तक उसके उपन्यास के ढांचे को तथा उसकी अनुभूतियों को खरोंचें आने की सम्भावना बनी रहती है। संक्षेप में, नरेन्द्र की स्थिति में यही हुआ है। जिस ढंग से नरेन्द्र ने अत्यन्त वास्तविक और जीती-जागती समस्याओं को उठाया है, उससे भावुकता का विपुल मात्रा में समावेश हो गया है। जहां कहीं कपट की भर्त्सना करने और हमारे समाज में व्याप्त छलनाओं को अनावृत करने का अवसर आता है, नरेन्द्र की लेखनी दुर्लभ कौशल के साथ तथा बड़ी मौज में आकर आगे बढ़ती है। परन्तु जब उनके उपाय-प्रतिकार ढूंढने का अवसर आता है तो तब आपके दृष्टिकोण में भावुकता आ जाती है। यही कारण हैं कि आपको शंकर की अवज्ञापूर्ण मनःस्थिति का चित्रण करने में अधिक सफलता मिली है, यद्यपि यह अवज्ञापूर्ण व्यवहार इनमें कदाचित ही देखने को मिलता है। इनकी शानो उपन्यास का प्रमुख चरित्र होते हुए भी एक साध्वी स्त्री जैसी अधिक दिखाई देती है, जिस में सब गुण ही गुण दर्शाए गए हैं। किसी त्रुटिकी ओर संकेत नहीं किया गया है। वह अपनी समस्त उत्तेजनाओं और रोष पर विजय प्राप्त कर चुकी है और जो ऐसे अनेक लोगों की समवेदना प्राप्त कर सकती है जो उसके प्रति सहानुभूति से आप्यायित हैं, पर फिर भी जो अपने पाठकों के हृदय को कदाचित ही आन्दोलित कर पाती है। जीवन के प्रति इसके दृष्टिकोण में कुछ उपेक्षा का सा भाव है और कभी कभी उसके धैर्य पर खीझ होने लगती है। पर नरेन्द्र की प्रतिभा का श्रेष्ठतम प्रदर्शन उस समय होता है जब आप खलनायकों के साथ जूझते है। उनका अस्तित्व स्वतन्त्र हो जाता है और वे अपनी निजी इच्छाओं का अनुसरण करते हैं। आपकी भाषा मांसल हो जाती है और यह इनकी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रबल साधन बन जाती है। नरेन्द्र जी ने इस प्रकार के लोगों को देखा है और आप इनके सम्पर्क में रह

चुके हैं; आप इनके विरोधी हैं और इनके साथ लोहा लेना चाहते हैं। पर जब शानो और शङ्कर की बात आती है, आपकी पकड़ शिथिल होती दिखाई देती है; क्योंकि तब आप एक आदर्शवादी जैसे दिखाई देते हैं; आप ऐसे लोगों को देवता तुल्य दिखाते हैं, जो बुराई के विरोधी हैं। परन्तु ऐसे चरित्र बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं हो सकते क्यों कि इस प्रकार की विशुद्ध निर्दोष और सदोष विषमताओं की जीवन में कोई सत्ता ही दिखाई नहीं देती और इस प्रकार के चरित्र यहां उपलब्ध नहीं होते। वास्तविक जीवन में ऐसे लोगों का अस्तित्व भले ही सम्भव हो, पर नाटकीय दृष्टि से इसकी सम्भावना नहीं है। और उपन्यास में नरेन्द्र द्वारा सुझाए गए उपाय वैसे ही हैं, जिनकी एक आदर्शवादी को अपने जीवन में लालसा रहती है। परन्तु ये शक्य नहीं होते, क्यों कि वस्तुतः ऐसा कभी होता नहीं है। उपन्यास का अवसान एक आशामय विवेचन पर होना है: 'इसके आगे सब साफ था' (बत्त चनैन ही)। यह नरेन्द्र के अपने गद्य पर अधिकार का दृष्टान्त है। पर इससे यह भी प्रकट होता है कि यह आपका सुहावना और अपने मन को सन्तोष देने वाला मात्र एक विश्वास है कि इसके बाद स्थिति में सुधार आ जाएगा। और उपन्यास का इस प्रकार से समाप्त होना ही पाठकों के असन्तोष का कारण बनता है, क्यों कि वे जानते हैं कि स्थिति अब भी उतनी सरल नहीं है और सर्वत्र केवल चांदनी ही चांदनी और प्रकाश ही नहीं है—मार्ग अब भी धुंधले और अंधकार के टुकड़ों से भरे पड़े हैं, यद्यपि ऐसी बात नहीं कि इस प्रकाश और आशा ने इन्हें किंचित मात्रा में भी मुक्त नहीं किया है।

परन्तु ऐसा कहने का अभिप्राय शानो के गुणों को न्यून बताना नहीं है। उपन्यास में घटनास्थल-विषयक दोष हैं—भौगोलिक सीमाओं का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया गया है, पाठक अपनी अटकल से ही जान पाता है कि नई सड़क का आशय उधमपुर-घार सड़क से है। पाठक के लिये नरेन्द्र के

वर्णन से अधिक उसकी बुद्धि ही सहायक होती है। ये त्रुटियां नरेन्द्र की कहानियों में भी समान रूप से पाई जाती हैं और इस पर भी इस उपन्यास की कहानी में अमित पठनीयता विद्यमान है। किसी किसी जगह पाठक अविश्वसनीयता को, कुछ समय के लिये, जानबूझ कर विस्मृत कर देता है और नरेन्द्र की गद्य-लहरियों के साथ द्रुतगति से बहने लगता है। आप थोड़े से शब्दों में ही बहुत कुछ कह जाते हैं जिससे, मदनमोहन शर्मा के उपन्यास की भूल-भुलैय्यों से मुक्त होने के कारण, पाठक के श्रमका अपहरण होता है। कहीं कहीं भाषा में त्रुटियां आ गई हैं, क्योंकि नरेन्द्र ग़लत मुहावरों का प्रयोग करते हैं। पर आप वाचालता की सीमा तक जाने की ग़लती कभी नहीं करते। 'शानो' का मूर्ख हमें 'लीयर' के 'ग़रीब टॉम' का स्मरण दिलाता है, यह समानता विशुद्ध रूप में आकस्मिक है, क्योंकि जिस समय नरेन्द्र ने 'शानो' लिखा था, तब आप शेक्सपीयर की इस महान कृति से परिचित नहीं थे। परन्तु 'ग़रीब टॉम' की दार्शनिकता 'शानो' के भीतर के 'बुद्धू' से मिलती-जुलती है। वह शंकर को मद्यपान द्वारा विनष्ट होने से बचा लेती है. ठीक उसी प्रकार जैसे ग़रीब टॉम ग्लेस्टर को मृत्यु की गोद में कूदने से बचा लेता है।

नरेन्द्र ने 'शानो' पर ही विश्राम नहीं किया है, आप अब 'मरुए दी डाली' नाम से एक उपन्यास लिख रहे हैं। हमें विश्वास रखना चाहिये कि आप अपने दृष्टिकोण में अधिक व्यावहारिकता लाएंगे और यथार्थवादी बनने का प्रयास करेंगे—अभाग्यवश 'शानो' में बुराई का अनावरण कृत्रिम दिखाई देता है—क्यों कि वे कठिनाईयां और क्लेश, जिनका आपने वर्णन किया है, वास्तविक हैं और जीवन की अवनति का मूल कारण हैं।

वेदराही। वेद राही और मदनमोहन शर्मा के उपन्यासों के शीर्षक अर्थपूर्ण हैं, ये प्रतीकात्मक हैं। 'धारां ते धूड़ां' में 'धारां' (पर्वतों की ऊंचाईयां) प्रकृति की महानता और हमारी

धरती और इसके निवासियों की पवित्रता और शक्ति की ओर संकेत करती है। और 'धूड़ां' (धधु) सामन्तशाही के भ्रष्टाचार और शोषण की उस धुंध और धूल की प्रतीक है जो गिरिशिखरों (जनसाधारण) को घेर लेती है और उन्हें प्राकृतिक वैभव (वास्तविक स्थिति) के स्वरस में आने में बाधक होती है।

वेदराही के उपन्यास 'हाड़ बेड़ी ते पत्तन' में 'हाड़' (बाढ़) उन कभी समाप्त न होने वाली कठिनाईयों और कष्टों का प्रतीक है जिनका सामना निर्धनों को, विशेषतः उन स्त्रियों को जो सुन्दर होती हैं, और उन बच्चों को जो किसी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बनते हैं, करना पड़ता है। अमरू और जगतू जैसे व्यक्ति, जो समाज-विरोधी पक्ष के लोग हैं, अबोध लोगों के कष्टों और उन पर की जाने वाली क्रूरता का कारण बनते हैं। अनिष्ट कारक सामन्तशाही कुरीतियां केवल उनके हाथों को मज़बूत बनाती हैं।

बेड़ी (नाव) श्रेष्ठ और दयार्द्र हृदय वाले लोगों की प्रतीक है, जो आपद्ग्रस्त लोगों की सहायता के लिये हाथ बढ़ा कर अपनी निःस्वार्थ एवं आत्मबलिदान की भावना द्वारा अपनी स्वार्थ साधना करते हैं। कुन्ती, सैरू और महेश जैसे लोग माया. रानू और छालो जैसे लोगों के लिये नौका का काम देते हैं, जो विपत्तियों के तूफ़ान की लपेट में आए हुए हैं। और प्रगति की नवीन शक्तियां, जो पुनर्निर्माण के पवन-वेग के अनुरूप हैं, तूफ़ान में घिरे हुए इन लोगों के लिये 'पत्तन' (घाट) का काम देती हैं, जो अपने मार्ग की समस्त बाधाओं पर विजय प्राप्त करके सुरक्षित स्थान पर पहुंच गये हैं।

उपन्यास में ग्राम्य-जीवन का चित्रण है, इसमें प्रेम और अनुराग है, धरती के प्रति प्यार है, पर इसमें तृष्णा और लोभ, प्रतिहिंसा और ईर्ष्यालुता है, हानिप्रद कुरीतियां हैं, पाखण्ड और

छलनएं हैं। जगत् की सहानुभूति भी उतनी ही हानिकारक है जितनी कि उसकी शत्रुता है।

अलबत्ता, ग्राम्य-जीवन का यह चित्र अधूरा है, क्योंकि हमारे गांवों में आमोद-प्रमोद भी रहता है, यह हमारे जीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में है। परन्तु इस उपन्यास में हमें इसका अभाव दिखाई देता है। कहानी दुःखद और रुलाने वाली बात को लेकर लिखी गई है और इसमें इस व्यापक शोक से थोड़ी देर के लिये मुक्ति पाने के लिये भी अधिक मात्रा में कुछ भी नहीं है। हंसाने वाले विवरणों का यह अभाव इस उपन्यास की गम्भीर त्रुटि है, और यह अभाव हमारी रुचि को अत्यधिक क्षति पहुंचाता है, जोकि इस में होनी चाहिये थी।

शायद इस उपन्यास का सब से बड़ा दोष यह है कि इसके चरित्रों का समुचित विकास नहीं हो पाया है; भली भांति परिष्कृत और परिमार्जित न होकर वे नीरस और खुरदरे हैं, जो थोड़ी देर के लिये मंच पर प्रकट होते हैं और फिर निस्तेज होते हैं या मर जाते हैं। इनमें से अधिकांश, सम्भवतः पराजयवादी हैं। न तो उनके चरित्र और न ही उनकी कोई अन्य विशेषताएं इस पुस्तक में प्रमुख रूप से उभर सकी हैं, वस्तुतः इन्हें इस उपन्यास का मुख्य आकर्षण होना चाहिए था।

शुरू में उपन्यास मन्थर गति से आगे बढ़ता है और प्रत्येक विवरण बड़े विस्तार के साथ दिया गया है। पर ज्यों ज्यों उपन्यास आगे बढ़ता है त्यों त्यों वेद राही इस अनुभूति के प्रति सहसा जागृत हुए प्रतीत होते हैं कि उपन्यास में असम्बद्धता आने लगी है, विभिन्न सूत्र, जिन्हें आपने चारों ओर फैला दिया है, एकत्र करने चाहियें। और आपने इस कार्य को इतनी त्वरता के साथ किया है कि इसका पूर्वार्द्ध इसके उत्तरार्द्ध की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा दिखाई देता है, और इस लिये यह उत्तरार्द्ध की अपेक्षा अधिक संतोषजनक है।

वेद राही के 'हाड़, बेड़ी ते पत्तन' की भाषा इनकी कहानियों की भाषा का विकसित रूप है। यह जगह जगह सरल, सुस्पष्ट और मुहावरेदार है, पर इसकी मूलभूत त्रुटियां वही हैं जो इनकी कहानियों में मिलती हैं। आप शब्दों और वाक्यों का ग़लत प्रयोग करते हैं और लिंग को उलझा देते हैं। उदाहरण के लिये :

१. हुट्टन होई गई—'गइ' के स्थान पर 'गया' होना चाहिये।

२. कुदरों पानी लेई आ—'कुदरों' के स्थान पर कुतेया होना चाहिये।

३. 'झुनके' का झपकी के लिये प्रयोग शुद्ध नहीं है। पृष्ठ-५

४. भलोकी का अर्थ भोली-भाली नहीं हो सकता।

आदि आदि।

तो भी राही का यह प्रयास श्लाघ्य है। शिल्प और कला की दृष्टि से आप नरेन्द्र खजूरिया और मदनमोहन शर्मा दोनों से श्रेष्टतर हैं और इसी कथन में बहुत कुछ आ जाता है।

मदनमोहन शर्मा। वेदराही कृत उपन्यास 'हाड़, बेड़ी ते पत्तन' यदि हमारी व्यवस्था के सामाजिक पक्ष पर बल देता है तो मदनमोहन शर्मा का उपन्यास 'धारां ते धूड़ां' इसके राजनैतिक पक्ष को उभारता है और उन नवीन प्रवृतियों को मुखरित करता है, जिन्हें हमारे देशमें और अधिकांश रूप में हमारे गावों में स्वतन्त्रता-आन्दोलन द्वारा बल मिला है। 'धारां ते धूडां' (पहाड़ों की ऊंचाईयां और धुंध) में हमें द्रुतगति से ह्रासोन्मुख सामंतशाही-समाज की झलक मिलती है, जो एक अजनबी को स्वस्थ और मांसल प्रतीत होता है परन्तु जो घिसी-पिटी सामाजिक कुरीतियों, पाप और पाखण्ड के कारण बीच में से खोखला हो चुका है और अपने भ्रष्टाचार के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा है।

मदनमोहन को रामकोट नामक एक छोटी सी जागीर के क्षेत्र में रहने का सुअवसर मिल चुका है, जिस पर किसी समय एक सामन्त-शासक राज्य करता था। यह एक सुन्दर क्षेत्र है जिसे सामन्तशाही की करतूतों ने कुरूप बना दिया है। उपन्यास का नायक रसालसिंह प्रगतिवाद की उभरती हुई नवीन शक्तियों का अगुआ है। परन्तु ये शक्तियां तब तक प्रभावशील नहीं हो सकतीं जब तक स्वार्थपरता और शोषण की प्रवृत्ति हमारे बीच में विद्यमान हैं, जब तक हमारे समाज में व्याप्त पाप और भ्रष्टाचार उनका गला दबाते हैं। अपने प्रेम में रसालसिंह को मिले नैराश्य से उस पर प्रगति की शक्तियों का महत्व प्रकट हो जाता है, जिनके भीतर सामन्तशाहों की दुष्टता, उनके शोषण के सभी चिन्हों को मिटा देने की क्षमता है। परन्तु जनसाधारण की अन्तर्वर्त्ती पापात्मक प्रवृत्तियों और स्वार्थपरायणता का क्या हो ? वे सामंतशाहों को प्रगति की शक्तियों की कोपाग्नि से बचाते हैं और उनके दण्डित होने में बिलम्ब का कारण बनते हैं।

यही स्वार्थपरता और शोषण कमलो की स्नेह और अनुराग भरा गृहस्थ जीवन पाने की इच्छा में बाधक होते हैं। और जब वह इस में असफल रहती है, तो फिर अपने विचारों के प्रति उसकी निष्ठा नहीं रहती, वह केवल दुष्ट लोगों की वासना का खिलौना बन कर रह जाती है, और अपनी सत्ता खो देती है। परन्तु इस खोखले जीवन की वाह्य आभा उसे व्याकुल बना देती है, क्यों कि ऐसा जीवन जाने के लिये उसे अपनी नैसर्गिक इच्छाओं और कामनाओं की आहुति देनी पड़ती है और अपनी महत्वाकांक्षाओं और अभिलाषाओं का गला घोंटना पड़ता है। यह एक ऐसी दुनिया है, जिसमें यदि कोई अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहे, तो उसे सभी नैतिक मूल्यों को दूषित करना पड़ता है और ऐसा जीना घुट-घुट कर होने वाली नैतिक मृत्यु

के समान है। ऐसी दशा में यदि कोई जीने की इच्छा करता है तो उसे इस सब से बाहर निकलना पड़ता है।

कमलो की अपेक्षा तारो इस बात को अधिक स्पष्टता से देखती है, क्यों कि इस प्रकार के वातावरण में वह अपेक्षतः अधिक समय से रह रही है, वह इस सब के खोखलेपन को जानती है, क्यों कि जो चमकता है वह सब सोना नहीं है, वरन बाह्य चमक-दमक वाली वस्तु है। और इस लिये वह उस नारीत्व की प्रतीक बन जाती है, जो इस क्रूर शोषण की व्यवस्था के प्रति घृणा और क्रान्ति की भावनाओं से परिपूर्ण है। वह जानती है कि वह जिस प्रकार का जीवन बिता रही है उससे इसकी बेटी ब्यासो का भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा और इस लिये यदि वह चाहती है कि ब्यासो एक सामान्य जीवन व्यतीत करे तो उसे इस प्रकार के जीवन का परित्याग कर देना चाहिये। यदि वह चाहती है कि उसकी बेटी जीवित रहे तो उसके लिये मर जाना ही श्रेयस्कर है। और चूंकि वह अपनी परिस्थितियों से ऊपर उठ जाती है अतः वह उनसे महत्तर बन जाती है।

परन्तु मदनमोहन अपनी अत्यधिक व्यावहारिकता के कारण इन बातों में चमत्कार लाने अथवा अपेक्षतः छोटा मार्ग अपनाने में असमर्थ रहे हैं। सामंतशाही के विरुद्ध चल रहा संघर्ष बड़ा कठिन और लम्बा है। और ये सामन्तवादी इन खल नेताओं की त्रुटियों के प्रति उन्हें अपने काम में लाने की दिशा में अत्यधिक सचेत हैं। वह दृश्य, जब शहर से कलाकारों की एक मण्डली आती है, उन अवसरवादियों का, जो अत्यधिक शक्तिशाली नहीं हैं, भण्डा फोड़ता है, जिन्हें सब से अधिक अपने हलवे-माण्डे की ही चिन्ता लगी रहती है। मदनमोहन लोगों को सावधान करते हैं कि यदि वे अपने आपको ऐसे स्वार्थपरायण और भ्रष्ट लोगों के वशीभूत कर देंगे, जिनके विषय में किसी प्रकार के संदेह की

गुंजाइश नहीं है, तो उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाएंगे और उनके सभी बलिदान निरर्थक बन जाएंगे।

नरेन्द्र खजूरिया के विपरीत मदनमोहन में तद्देशीयता का बोध कहीं अधिक प्रबल मात्रा में है। आपका यह बोध किसी स्थान विशेष के निरूपण में दृढ़ता से विद्यमान रहता है। परन्तु आप अपने पुनरुक्तियों-भरे वाक्यों द्वारा अपने प्रभाव को क्षीण कर देते हैं। आपकी कहानियों की तरह घुमा-फिरा कर बात करने की त्रुटि इस उपन्यास में भी आ गई है। इससे आपकी वह मनोवृत्ति प्रकट हुई है जो भूल-भुलैयों में रमते रहने में आनन्द का अनुभव करती है। अलबत्ता जिस मौज और उल्लास के साथ आपका वर्णन आगे बढ़ता है वह कभी कभी आप के पाठकों को स्तब्ध कर देता हैं। और वस्तुतः यह एक उल्लेखनीय गुण है। उपन्यास में कमलो के मिथ्या-स्वप्नों से आपकी 'खीरला मानू' शीर्षक कहानी के मिथ्या-स्वप्नों का स्मरण हो आता है, और ऐसे विवरणों में मदनमोहन निश्चय ही असाधाण कौशल दिखाते हैं। इस में मानव-हृदय की अछूती बातों को सामने लाने वाली अस्पष्ट लालसाओं को अनुरूपता प्रदान की क्षमता है। आपकी हास्य-विषयक प्रवृत्ति भी उस दृश्य में प्रदर्शित हुई है, जहां कलाकारों की मण्डली एक दुकान पर लोगों से वार्तालाप कर रही होती है।

जैसे जैसे कहानी आगे बढ़ती जाती हैं, त्यों त्यों ऐसा लगता है कि मदनमोहन का अपनी वर्ण्य-सामग्री पर नियन्त्रण शिथिल पड़ता जाता हैं, आपका विवरण विषयक बोध न्यून होने लगता है और आप जितनी भी जल्दी हो सके इस से मुक्त होना चाहते हैं। इसके परिणामस्वरूप अनावश्यक त्वरता और प्रभाव में मलिनता आ गई है। इस प्रकार इसका अन्त एक सस्ते रोमांटिक चलचित्र जैसा अधिक दिखाई देता है. जिस में केमरे की चालाकी को रहस्यपूर्ण

ग्रौर शोकमय वातावरण में उत्तेजना लाने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। ग्रभाग्यवश इसका ग्रन्त मन को जंचता नहीं ग्रौर पाठक इससे प्रत्यक्षतः प्रभावित ग्रथवा आन्दोलित नहीं होते। लेखक का ग्रभीष्ट दुःखान्त स्वरूप नहीं आ सका हैं। यह बिना किसी उद्देश्य ग्रौर प्रभाव के एक दूसरे के विरुद्ध उद्यत लोगों की भ्रान्त लड़ाई मात्र बन कर रह गया हैं।

———

चतुर्थ भाग

परिशिष्ट

इस ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन के बीच में काफ़ी समय बीत गया है। तीन वर्ष से कुछ ऊपर इस दीर्घकाल में जम्मू-कश्मीर प्रदेश के भीतर तथा बाहर महत्वपूर्ण राजनैतिक और सामाजिक घटनाएँ घटित हो चुकी हैं। उन सब में अधिकतम प्राभावशाली चीनी आक्रमण और सबसे बढ़ कर दुःखद घटना श्री जवाहर लाल नेहरू का निधन था।

डोगरी साहित्य देशमें हो रही प्रगतियों से प्रभावित होता रहा है क्यों कि वह भी इसी भूमि में पनपा है और कवियों एवं लेखकों ने अपनी कृतियों में महत्वशाली घटनाओं का उल्लेख किया है। इस खण्ड में उन सबका समावेश न करना, न केवल डोगरी-साहित्य के प्रति, मेरे प्रति भी अन्यायपूर्ण होता, अस्तु, मैंने अनुभव किया कि उनका प्रति पादन परिशिष्ट के रूपमें आवश्यक है।

इसके सिवाय, जिस समय मैंने इस खण्ड को समाप्त किया कई ऐसे लेखकों द्वारा गद्य और पद्य में लिखा जारहा था, जिन्हों ने अपने लेखों द्वारा बड़ी २ आशाएं बंधाई थीं, परन्तु जिन्हें

परिस्थितियों से विवश होकर जम्मू को छोड़ देना पड़ा, और पश्चात् उन्होंने डोगरी में लिखना भी बंद कर दिया। रणधीरसिंह वायु सेना में भरती होगए, और उससे पूर्व जो कुछ वे लिख चुके थे उसमें कोई अभिवृद्धि उन्होंने नहीं की। ऐसा ही माधो सिंह के विषयमें भी हुआ, जिन्हों ने गद्य में कुछ लघु रचनायें लिखीं, परन्तु बादमें सैनिक सेवा के कारण उन्हें डोगरी में अपने विचारों को लिखने का अवकाश ही न मिला। पद्मा और दीप में परस्पर झगड़ा हो गया और उनका कानूनी विच्छेद हो गया। पद्मा आजकल नई दिल्ली, आकाशवाणी, के डोगरी विभाग में काम करती हैं, और लगभग ३६५ मीलों का अन्तर, इस अंतरिक्ष युग में भी, जहां तक डोगरी में लिखने का सम्बन्ध है, कोई थोड़ा अन्तर नहीं है, क्यों कि दिल्ली में डोगरी में लिखने के अनुकूल वातावरण का अभाव है। ऐसा भी नहीं है कि पद्मा ने कविता लिखना सर्वथा छोड़ ही दिया हो, बल्कि 'साढ़ा साहित्य" (१९६३) में उनकी उन कविताओं में से दो प्राकाशित हुई हैं, जो उन्होंने दिल्ली में लिखी हैं (पृ० १८-२१)। उन कविताओं से प्रकट होता है कि उनकी कल्पना विस्तृत हुई है, उन का छन्दों पर अधिकार परिपक्व हो गया है, लेकिन फिर भी ऐसा लगता है कि उनकी भाषाने, यद्यपि उसमें सौष्टव और नारीसुलभ विलक्षणता मौजूद है, अन्य भाषाओं से प्रभावित होना शुरू कर दिया है। उनका उदगम ज़्यादा भावुकता युक्त, बल्कि दैन्यपूर्ण हो गया है। इसका कारण ढूंढने के लिये दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। परन्तु यहां हमें परिणामों से ही वास्ता है, उनके कारणों से नहीं। उनके द्वारा लिखी गई कविताओं की संख्या में भी काफ़ी ह्रास हुआ है।

पद्मा से विच्छेद दीप के लिये उपलब्धि के रूपमें परिणत हुआ दीख पड़ता है। इस भावनात्मक आघात ने मानो दाप की कविता के सेतुवन्ध को ही तोड़ डाला है। उनकी लिखी कुछ ग़ज़लों में गहरा नैराश्य पाया जाता है और कुछ में कटुता एवं

दैन्य है, परन्तु ज्यों २ समय बीत रहा है दीप अपने विचारों पर दृढ़ता पूर्ण पकड़ प्राप्त करने हुए और उन्हें एक दबी हुई पर हृदय-स्पर्शी शैली में अभिव्यक्ति दे रहे जान पड़ते हैं। उनके भीतर बहुत ज़्यादा आत्मचेतनाधीन न होने, ऊंचे मंच पर बैठ कर दूसरों का न्याय करने की नहीं, बल्कि स्वयं अपने को तथा दूसरों को समझने की इच्छा पाई जाती है। शोक है कि दीप ऐसी ग़ज़ल अधिक नहीं लिखते और जो कुछ भी लिखते हैं उसे प्रकाशित करने का कष्ट उन्होंने नहीं उठाया।

कविरत्न की कहानियां पढ़ने में आशा बंधती थी कि कालगति के साथ २ उनकी कृतियों में से भावुकता दूर हो जायगी, परन्तु इसकी बजाय, यह लगभग दुर्भाग्य का विषय है कि वे डोगरी के साहित्य क्षेत्र से पूर्णतः तिरोहित होगये हैं। फ़िर भी यह न्यायोचित नहीं हुआ है कि इस ग्रन्थ के पूर्वोत्तर भागमें यह निर्देश नहीं किया गया है कि कविरत्न भी कहानियां लिखते थे।

साहित्यक्षेत्र में कुछ और भी कहानी लेखकों का प्रवेश हुआ है; उनमें से एक तो, ज्यों ही उनके विषयमें यह जानने में आया कि उनसे वहुत सी सम्भावनाएं हैं, वे स्वयं ही विलुप्त होगये। वे थे डी० आर स्वर्णकार जो लगभग तीन वर्ष पहले शुद्ध महादेव के निकट एक बस-दुर्गटना में निधन पागये। उनकी रचना 'न्हेरा ते सवेरा' (अन्धकार और प्रकाश) ['साढ़ा साहित्य'—१९६०-६२] प्रायः आत्मचरितात्मक है; इससे प्रकट होता है कि वे एक भावुकता-पूर्ण हृदय, अपने इर्द गिर्द की वस्तुओं के लिये एक पैनी दृष्टि रखते थे और उनको कलापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने में आनन्द का अनुभव करते थे। उन्होंने और भी दो तीन कहानियां लिखी थीं, परन्तु वह आशालता जो कि उनके द्वारा अंकुरित की गई थी अकालमें ही उखाड़ ली गई और एक होन हार जीवन का अप्रत्याशित अवसान होगया।

चरण सिंह ने भी कुछ कहानियां लिखी हैं। उनमें से 'कल्पना'

शीर्षक से एक कहानी 'श्रेष्ठ डोगरी कहानियां' पुस्तक में प्रकाशित हुई है, इससे जहां चरण सिंह का डोगरी भाषा पर अधिकार का आभास मिलता है, वहां उन के मन के भीतरी उस अन्तर्द्वन्द्व का भी पता चलता है जिसका प्रत्येक कवि, लेखक या कलाकार के मन में एक न एक समय विद्यमान रहना स्वाभाविक है, जब कि वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि कला और पेट (निर्वाह) इन दो में से वह किस को महत्व दे। उसमें आत्मचरित सम्बन्धी छिपा निर्देश भी है, परन्तु चरणसिंह ने अपनी विषय वस्तु को भावुकता का अभ्यास नहीं बनने दिया है।

डोगरी संस्था, डोगरी मण्डल, प्रकाशकों तथा साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों ने एक पाठक वर्ग को जन्म दिया है। पुस्तकों का प्रकाशन अपने हाथ में लेने, लेखकों को अपनी रचनाएं प्रकाशित करने के लिये आर्थिक सहायता देने तथा सर्वोत्तम पुस्तकों और नाटकों (हस्तलिपि) पर पुरस्कारों की स्थापना द्वारा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं को प्रोत्साहन देने में साहित्य अकादमी जम्मू बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। फ़लतः उत्तम साहित्य पर्याप्त मात्रामें हमारे सामने आया है। नरेन्द्र के 'अस भाग ज़गाने आले आं,' शम्भुनाथ शर्मा के 'रामायण' और मधुकर के 'ए डोला कुन ठप्पेया' इन में से प्रत्येक रचना ने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किये हैं, और दीनू के नाटक 'सरपंच' एवं रामलाल शर्मा के 'किरण' तथा चरणसिंह के 'जोत' कविता संग्रह को द्वितीय पुरस्कार दिये गये हैं। नरेन्द्र के नाटक 'ढौंदियां कन्दां' को भी द्वितीय पुरस्कार मिला है। अकादमी द्वारा इन प्रतियोगिताओं का आयोजन, सूचना विभाग, रेडियो कश्मीर, जम्मू और साहित्य अकादमी द्वारा कविसमेलन का संचालन एवं अभी थोड़ा समय पहले 'शामे अफसाना' (कहानियों का सांयकाल) की स्थापना, इन योजनाओं ने लोगों में डोगरी में लिखने के लिये अधिकतर उत्साह और प्रेरणा उत्पन्न कर दिये हैं। अब ज़्यादा लोगों ने डोगरी में लिखना शुरू किया है और उनमें

बहुत से हमारी जानकारी में आये हैं। जम्मू और देहाती इलाकों के सम्पर्क दोनों पक्षों के लिये लाभकारी हुए हैं। इस के सिवाय जम्मू तथा कांगड़ा एवं धमशाला के सम्पर्क भी इस अंश में उपयोगी सिद्ध हुए हैं कि हम यह जान पाये हैं कि वहां भी कुछ लोग ऐसे लेखक मौजूद हैं जो डोगरी में लिख रहे हैं और कि यदि अपेक्षित मनोयोग दिया गया तो डोगरी आंदोलन एक अभिनव स्फूर्ति प्राप्त कर लेगा। परन्तु पूर्वतर वस्तु ही पहले होनी चाहिये।

अनुवाद—किसी भाषा के साहित्य को समृद्ध करने के उपायों में से सबसे श्रेष्ठ, अन्यभाषाओं के उत्तम और विशिष्ट ग्रन्थों का उस भाषा में अनुवाद किया जाना होता है। टेगोर-शताब्दी-समारोह के अवसर पर टेगोर को 'गीताञ्जलि' का अनुवाद रामनाथ शास्त्री ने, एकोत्तरशती (१०१ कविताएं) का अनुवाद के. एस. मधुकर ने तथा 'इक्की कहानियों का अनुवाद वेदराही ने किया। इनका प्रकाशन डोगरी में साहित्य अकादमी जम्मू द्वारा हुआ है। इनके सिवाय रामनाम शास्त्री ने टेगोर की 'Sacrifices' (बलिदान) का अनुवाद भी डोगरी में किया।

टेगोर को भारत से बाहर के साहित्य जगत् में, सही अथ में, गीताञ्जलि ने ही परिचित कराया और टेगोर को नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने में प्रथम और एकमात्र भारतीय अधिकारी बनाया था। टेगोर ने परोक्षरूप में प्रसिद्ध छायावादी कवि कबीर से बहुत कुछ ग्रहण किया है, परन्तु जो कुछ भी उन्होंने ग्रहण किया उसे उन्होंने एक असाधारण अर्थगरिमा से विभूषित किया और उसे निजी ही बना दिया। उनकी कविताओं की, एक ही समय में, ऊर्ध्वगामी तथा संगीतमय एक अद्वितीय वस्तु है; और उनको डोगरी में रूपान्तरित करना एक चुनौती है, जो मुग्धकारी और क्षोभजनक दोनों है। शास्त्री जी के श्रेयपक्ष में यह कहना ही होगा कि उन्होंने इस चुनौती को स्वीकार किया है और उसका काफ़ी मात्रा में सफलता के साथ सामना किया है।

स्वभाव के दृष्टिकोण से शास्त्री और मधुकर ये दो ही कवि हैं जो डोगरी में टेगोर की रचनाओं का अनुवाद करने के सर्वाधिक अधिकारी हैं। शास्त्री जी में भावनात्मक तथा बौद्धिक पहलुओं का पारस्परिक सन्तुलन है. और गीतांजलि का डोगरी में अनुवाद करने के लिये यह सन्तुलन अपेक्षित था, जिससे कि पाठक टेगोर के व्यक्तित्व और उनकी कला का समुचित परिज्ञान प्राप्त कर सकते। और इसी कारण, शास्त्री जी द्वारा गीतांजलि का डोगरी में अनुवाद करने के पश्चात् भी, शास्त्री जी की शैली वस्तुत: वैसी ही बनी रही, जैसी कि गीताञ्जलि का कार्य हाथ में लेने से पूर्व उनकी शैली थी।

परन्तु मधुकर जी के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे तो गीतांजलि रूपी सरिता के उद्गम स्त्रोत तक पहुंच गये, जहां उन्होंने उसका आकण्ठ पान किया। टेगार की रचनाओं के हिन्दी उर्दू अथवा पंजाबी अनुवादों पर ही उन्होंने पूर्णता निर्भर नहीं किया, बल्कि उन्होंने किसी सीमा तक बंगला माषा सीखी, ताकि वे ठेगोर के आत्मतत्व की वस्तुत: पकड़ प्राप्त कर सकें। अस्तु यह कहा जा सकता है कि इस अंश में मधुकर जी टेगोर के डोगरी में दूसरे दो अनुवादकों—शास्त्री और वेदराही—को पीछे छोड़ गये हैं। इनके अनुवाद में गीतिमाधुर्य का वही सवेग प्रवाह, उड़ान और वही संगीत है जो टेगोर की मूलकविता से अविच्छेद्य है। जान पड़ता है मानो मधुकर जी ने अपने व्यक्तित्व की, रवीन्द्र बाबू के व्यक्तित्वमें डुबकी लगा ली हो, और जब वे उस डुबकी से उभरे हैं तो उन्हीं रंगों में रंगे हुए पाये गये हैं। यह बात मधुकर जी के लिये उतनी ही श्रद्धांजलि है जितनी कि उनकी आलोचना क्योंकि जिस बात की मधुकर जी से आशा थी, वह यह थी कि वे निजी रूप को ही न गंवा बैठते, बल्कि उसे सुस्थिर रखते, भले ही टेगोर की एकोत्तरशती का अनुवाद उन्हें करना था। और यद्यपि उन्होंने टेगोर की एकोत्तरशती का अनुवाद करके डोगरी की एक चिरस्मरणीय सेवा

की है । बहुत से पाठकों के लिये, उक्त अनुवाद को समाप्त करके उसके बाद वे वही पुराने मधुकर नहीं रह गये हैं । और शायद ऐसा होना स्वाभाविक भी था । मधुकर मृदुहृदय और भावनात्मक हैं. और उन्होंने महसूस किया कि टेगोर की कविता का अनुवाद करने के लिये यह अधिक उपयुक्त होगा कि अपने बौद्धिक तत्व को अपनी भावनात्मकता में विलीन कर दिया जाय । यही कारण है कि उनका लिखा एकोत्तरशती का अनुवाद शास्त्री जी की गीताञ्जलि से अधिक सन्तोष प्रद है । परन्तु जहां शास्त्री जी ने अपने व्यक्तित्व और शैली को सुस्थिर रखा, वहां मधुकर ऐसा नहीं कर पाये । और यह तथ्य उनकी बहुत सी कविताओं में जोकि उन्होंने अपने संग्रह 'डोला कुन ठप्पेया' में सम्मिलित की हैं, देखने में आता है । उनमें संगीत है, उत्तोत्तर ऊंचा उड़ने वाली कल्पना है, तीब्र वेग और भाषा की समृद्धि हैं; परन्तु कहीं २ वे अपने विचारों से आक्रान्त और उन्हें अभिव्यक्त करने के प्रलोभन में फ़ंस गये जान पड़ते हैं, भले ही वे कहीं २ अस्फुट, गूढ़ और ठोस न भी रहे हां ।

वेद राही का 'इक्की कहानियां' का अनुवाद उन दोषो से ग्रस्त है जिनसे एक अनुवाद के अनुवाद को ('एक नकल की नकल सत्य से दुगुनी दूर रहती है'—इस अंग्रेज़ी लोकोक्ति के अनुसार) ग्रस्त होना ही पड़ता है । अनुवाद भी एक जल्दवाज़ी में किया गया जान पड़ता है । फिर भी लेखक ने टेगीर के भावों और व्यक्तित्व को किसी भी भांति विकृत नहीं होने दिया है । साहित्यिक अत्युत्तमता का अभाव रहते हुए भी इस अनुवाद ने, जैसा भी वह है, डोगरी गद्य साहित्य के कलेवर में एक बहुमूल्य अभिवृद्धि की है ।

टेगोर की 'गीताञ्जलि', एकोत्तरशती', और 'इक्की कहानियां' के अनुवाद से भी पहले गीता का डोगरी में अनुवाद—अथवा उल्था-परशुराम नागर, ठाकुर रघुनाथसिंह सम्याल और

प्राध्यापक गौरीशंकर ने किया था। ऐसा नहीं है कि ये अनुवाद पूर्णत: सन्तोषप्रद हुए थे, क्योंकि अनुवादकों के व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और मनोवृत्तियां उनके अनुवादों में घुस आये थे, परन्तु यह बात कि पूर्वोक्त सज्जनों ने गीता जैसे दुरूह ग्रन्थ का डोगरी में उल्था करने की चुनौती को स्वीकार किया, सिद्ध करती है कि तब तक ऐसी स्थिति आपहुंची थी जबकि डोगरी का उपयोग उन कामों की अपेक्षा, जिनमें अबतक उसका उपयोग या उसकी आशा हो सकती थी, वृहत्तर कामों में उपयोग सम्भव हो गया था। श्री नागर की गीता अधिकत: भक्तिरस से आप्लावित है, ठाकुर समयाल की ओज तथा भाषा की उद्भटता से युक्त तथा प्राध्यापक गौरीशंकर की गीता नागर जी के भक्तिपक्ष और ठाकुर समयाल की उद्भटता का मध्य सन्तुलन रखती है।

इसके बाद अनन्तराम शास्त्री द्वारा 'पञ्चतन्त्र' का और प्राध्यापक रामनाथ शास्त्री द्वारा 'भर्तृहरि शतक' के अनुवाद किये गये। ये अनुवाद मूलग्रन्थों की पूर्ण अत्युतमता नहीं रखते, परन्तु उधर असीम रूप से समृद्ध हैं जो सीमित साधनस्रोत रखने वाली डोगरी भाषा द्वारा पूर्णरूप से लाभान्वित होने के लिये महत्तर कौशल की अपेक्षा करती है।

परन्तु श्रीशम्भुनाथ द्वारा 'रामायण' का डोगरी में अनुवाद करने का निश्चय करने के समय तक डोगरी भाषा के साधन स्रोत काफ़ी विस्तृत हो चुके थे। यों भी, स्वभाव की दृष्टि से इस प्रकार के साहस को हाथ में लेने के लिये श्री शम्भुनाथ अधिक उपयुक्त थे। इसके सिवाय, श्री शम्भुनाथ के रंगमंच के साथ दीर्घकालिक सम्बन्ध रहने के कारण भी वे एक अच्छी स्थिति में थे। वे मूलग्रन्थ के नाटकीय अंशों का मूलानुरूप शैली में रूपान्तर करने में अधिक साधन सम्पन्न थे। एक शब्द का समुचित रूपान्तरीकरण और एक सन्दर्भ की वाचिक सरसता या स्वरमाधुर्य को अभिव्यक्ति को बल देना, जो कि रंगमंच में इतना

आवश्यक रहता है, शम्भुनाथ के लिये रामायण के समग्र संदर्भों की विविध मनोवृत्तियों की पकड़ पा सकने में समान रूप से उपयोगी सिद्ध हुए। यही कारण है कि रामायण के इस डोगरी रूपान्तर को पढ़ने से मूलरामायण के ही आत्म तत्व के दर्शन हो जाते हैं। प्रमोद और परमानन्द, दुःख और वेदना, दुविधा और रहस्य, शौर्यपूर्ण मनोवृत्तियां, सीता, राम के विवाह, युद्धभूमि, राम के अयोध्या में पुनरागमन, उनके स्वागत के दृश्य, सीता त्याग से उत्पन्न राम की अन्तर्वेदना और अन्य बहुत से वर्णन सचमुच वैशिष्टय पूर्ण हैं। अभिव्यक्ति की सरसता, झंकारपूर्ण वर्णन और उनकी गौरवपूर्ण शैली ये सब बातें एक वास्तविक कलापूर्ण कृति के निर्माण में श्री शम्भुनाथ की सहायक हुई हैं।

बालोपयोगी साहित्य—श्री श्यामलाल का 'भागवत कथाएं' और 'वैताल पचीसी' का डोगरी रूपान्तर डोगरी अनुवाद ग्रन्थों की अभिवृद्धि मात्र ही नहीं हैं, वे बालोपयोगी साहित्य में बहुमूल्य योगदान भी हैं, जिनकी डोगरी में भारी न्यूनता थी। श्री श्यामलाल की शैली शक्ति शर्मा की शैली की भांति शिक्षाबहुल है, और चूंकि ये दोनों ही अध्यापक हैं, दोनों की शिक्षणात्मकता न तो आडम्बरपूर्ण और न ही पाठकों के लिये भारभूत होती है। वह एक ऐसी सादगी और सरलता रखती है जो बालहृदयों में अपने को अनिरुद्ध रूप से पहुंचा पाती है। इस पर भी भागवत और वैताल पचीसी की मूल विषय वस्तुएं विनष्ट नहीं होने पाई हैं, भले ही उनमें मूलग्रन्थों की सूक्ष्म गहनताओं और अत्यावश्यक विस्तार का अभाव है।

डोगरी बाल-साहित्य के संदर्भ में नरेन्द्र खजूरिया के नाटक संग्रह 'अस भाग जगाने आले आं' और उनके एक अन्य कहानी संग्रह 'रोचक कहानियां' का उल्लेख भी आवश्यक है। नरेन्द्र खजूरिया भी अध्यापक रह चुके हैं और वे अपने को छात्रों की समझ में आने

योग्य बनाने में चेतनापूर्ण यत्न करते हैं । नाटकों और कहानियों की विषय वस्तुएं ऐसी हैं जो सुकुमार बालक-बालिकाओं की समझ में सहज ही आ जाते और उनके लिये विश्वसनीय भी होते हैं, फलतः, वे लोग लम्बे चौड़े वाक्य खण्डों और अमूर्त संदर्भो की अपेक्षा उनसे अधिक प्रभावित होते हैं । उनके नाटक तथा कहानियां एक ऐसी भाषा में लिखे गये है जोकि ओजस्विनी और प्रत्यक्ष है, और कहीं २ उनकी शैली में तीक्ष्णता और कटाक्ष है जो कि काफ़ी प्रभावपूर्ण हैं, यद्यपि इन दोनों संग्रहों में महान् साहित्य के गुणों का अभाव है ।

डोगरी कविता और चीनी आक्रमण—सन् १९५० और १९६२ के बीच का अन्तराल—पाकिस्तनी आक्रमण के प्रथम सम्पात की समाप्ति से लेकर भारतपर चीनियों के सामूहिक आक्रमण तक का मध्यवर्ती काल—डोगरी की साहित्यिक प्रतिभा के फूलने-फलने का समय रहा है । इसके फलस्वरूप उन संदर्भों में एक मोड़ आ गया, जिस पर अभी तक डोगरी कविता लिखी जा रही थी और उसके साथ ही सच्चे गद्य साहित्य का निर्माण हुआ, जिसके लिये लेखकों द्वारा चेतनापूर्ण प्रयत्न किये गये । देशभक्ति पूर्ण कविताएं लिखी तो गईं, परन्तु बिखरे हुए रूप में, और जब भारतीय-ग़दर (१८५७) की शताब्दी का समारोह (१९५७ में) मनाया जा रहा था, देशभक्ति पूर्ण कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया गया । उसकी कवितायें साधारणतः अच्छी थीं परन्तु वे मुख्यतः, लेखकों की गहरी प्रेरणा की बजाए, कुछ आभारों के पूरा करने के लिये ही लिखी गई थीं ।

लेकिन उस समय ऐसा नहीं हुआ, जब ८ आकटोबर १९६२ को चीनियों ने सहसा भारत पर धावा बोल दिया । भारत की एक सूत्रता को पछाड़ दिया गया, जनता के भारत-चीन की शाश्वत मित्रता—हिन्दी चीनी भाई भाई—पर के विश्वास को एक तीव्र झटका लगा और पंचशील के सम्प्रदाय का, उसके मूल

प्रवर्तकों में से ही एक के द्वारा, अकाल में गला घोंट दिया गया। आघात इतना आकस्मिक था कि लोग व्याकुलता से न बच पाये, परन्तु फिर भी एक कटु सत्य यह था कि चीनियों ने भारत के आत्मसम्मान को आहत किया था, और स्वयं हम भी कुछ अधिक दुर्बल सिद्ध हुए—इतने दुर्बल हम खुद भी यह नहीं जान पाये और चीनी भी हमारे उतने क्षीण होने का सन्देह नहीं कर पाये थे।

देश के हितसाधन के प्रति अपूर्व आत्मार्पण के दृश्य सामने आये। एक औसत भारतवासी, एक श्रमिक, एक मज़दूर, एक दरिद्र वृद्धा, एक बूट पालिश करने वाला, एक भिखारी, प्राईवेट फ़र्म, बैंक या सर्कारी दफ्तर का एक बाबू, सब ने चीनी-आतंक से उत्पन्न स्थिति के प्रति आश्चर्य जनक प्रतिक्रिया का प्रदर्शन किया। परन्तु तथाकथित बड़े २ व्यापारियों, चोटी के उद्योगपतियों एकाधिकारियों (इज़ारे दारों) एवं शासक वर्ग तथा विरोधी पक्षों के तथाकथित नेताओं ने क्या किया ? भ्रष्टाचार और काला बाज़ार, मुनाफ़ाखोरी तस्कर व्यापार तथा अपसंचय देशमें चारों ओर फैल गये थे, वे प्रकट कर रहे थे समस्त सद्भावनाओं का अपकर्ष देशमें परिपूर्ण हो चुका था और प्राक्तन मूल्यों में—जो कि स्वाधीनता से पूर्व देखने में आते थे—स्वार्थी राजनीतिज्ञों और धनलोलुप व्यापारियों तथा उद्योग पतियों का एक नया वर्ग जिनका विश्वास अनाचारपूर्ण साधनों के द्वारा जल्दी से जल्दी धनी बन जाने में था, उभर रहा था।

देश को बुरी तरह नीचा दिखाया गया था। परन्तु जनता में श्री जवाहर लाल नेहरू एवं अपने देश के प्रति आस्था इतनी उत्कट थी कि लोग परिस्थिति के विकृतपक्षों को भूल जाने की ओर झुक गये। उन सब ने अपने को देश के एक सैनिक के रूप में ढाल देने में विश्वास कर लिया; खेतों, कारखानों और दफ्तरों में वे लोग हाथों, साधनों, औज़ारों और शस्त्रों से जुट कर काम करने में लग गये।

परन्तु दूसरी ओर, एक और ही तरह के सैनिक थे जो अपनी लेखनियों की सहायता से शत्रु से जूझ रहे थे, जो अपने देश की जनता को आक्रमण कारी द्वारा दी गई चुनौती का सामना करने के लिये कटिवद्ध होने के लिये उद्‌बोधन दे रहे थे। हिन्दी कवि शम्भु नाथ सिंह ने पुकारा—

"फौलाद ढले फ़ेक्टरियों में..."

और उर्दू कवि जां निसार अखतर ने कहा—

"आवाज़ दो हम एक हैं।"

फिर एक अन्य कवि ने गर्जन किया—

"वतन की आबरू खतरे में है, होश्यार हो जाओ।" और अन्य बहुत से कवियों ने भी अपनी २ प्रादेशिक भाषाओं में गायन किया, प्रेरणा दी और गर्जन किया।

डोगरी के कवियों ने भी इसमें साथ दिया। उन्हों ने चीनी आक्रमण पर जो भी लिखा, उसमें निष्छलता थी, परन्तु वह बल, इस निश्चय से उत्पन्न ओजस्विता कि हम अवश्य विजयी होंगे, जो कि पाकिस्तानी अक्रमण के पश्चात् पाया गया था, नहीं था। इसका कारण ढूंढने को हमें दूर जाने की ज़रूरत नहीं। पाकिस्तानी आक्रमण की सम्भावना देर से बनी हुई थी क्यों कि पाकिस्तान और हमारे बीच में दीर्ध काल से चल रहे, न निपटाए जा सकने वाले, विचार धारा सम्बन्धी मत भेद थे, और उनकी अभिव्यक्ति की पद्धति भी प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट थी तथा उनके लक्ष्यों का स्वर्श बहुत निकटता से हमारे निजी घर द्वार से था। इसके सिवा, पाकिस्तान की तुलना में हमारा सैनिक बल महत्तर था—सैनिकों की संख्या और शस्त्रभंडार दोनों ही तरह से। फिर मुल्यों का क्षय भी अभी तक एकदम ज्यादा नहीं हो पाया था। स्वाधीनता मूलक संघर्ष से उत्पन्न आदर्शवाद, जो यद्यपि धीमा पड़ चुका था, का स्थान अभी भी पूर्ण रूप से निपट अवसरबादिता, सत्ता की तृष्णा और

अर्थलोलुपता ने नहीं ले पाया था। कविजनों को यह ज्ञात था हम किस के साथ और किस लिये युद्ध कर रहे थे। उनकी व्यूहरचना एक विदेशी आक्रमण कारी के विरोधमें थी, एक भीतरी शत्रु के खिलाफ़ नहीं। उनका निश्चय और मार्ग स्पष्ट था।

परन्तु चीनियों ने उनमें से बहुत लोगों के लिये एक समस्या उत्पन्न कर दी थी। उनमें से कुछ के लिये यह मान लेना सहज नहीं था कि चीन, एक साम्यवादी देश, किसी देश पर आक्रमण कर दे। उन लोगों के लिए जो 'हिन्दी चीनी भाई भाई' में विश्वास रखते थे, चीन द्वारा भारत के प्रति खुल्लमखुल्ली प्रतिद्वन्द्विता से उत्पन्न आघात पर विजय पाना सुकर नहीं था। इसके अतिरिक्त आक्रमण इतना अचानक और अप्रत्याशित हुआ कि उसने लोगों को और लोगों की भावनाओं की अभिव्यक्ति के साधनरूप कवि जनों को, अपने विचारों को संग्रहीत करने तथा उन्हें ज़ोरदार शब्दों में अभिव्यक्त करने के लिये क्षणमात्र का अवसर भी नहीं दिया।

एक और भी बात। पाकिस्तान की भांति चीन भारत की अपेक्षा सैनिक दृषि से एक हीनबल का देश नहीं था। दूसरी ओर, भारतचीन मित्रता के सुखद काल में कुछ लोग चीन के सैनिकों और उसके शस्त्रास्त्र के गुण गान करते कभी नहीं थकते थे। यह सभी कुछ भली प्रकार जानते हुए, उन लोगों के लिये यह इतना सुगम नहीं था कि पाकिस्तान की ही भांति चीन के विषय में भी कुछ लिख पाते। और इसके साथ ही भीतरी शत्रु भी थे जो चीन के राजनैतिक समर्थकों के रूप में इतने नहीं थे जितने कि स्वार्थी, भ्रष्टाचारी और अयोग्य लोगों के रूप में थे। दो मोर्चों पर एक साथ क्यों कर युद्ध किया जा सकता था? ऐसी दशा में केवल वही लोग, जो राजनैतिक परिस्थितियों की समुचित सूझ बूझ और जीवन का विशालतर दृष्टि कोण रख ते थे, समस्या का चौमुखी सामना कर सकते थे। यही कारण है कि कई एक कवियों का

अभिगम एक पक्षीय और चक्करदार रहा है; वे समस्या की समुचित पकड़ नहीं कर पाए हैं। यह कहना कि, हम चीन की अपेक्षा कमज़ोर हैं, भले ही सत्य हो, परन्तु देशभक्ति पूर्ण नहीं है, और यह कहना कि हम चीनियों को क्षणमात्र में खदेड़ कर बाहर कर देंगे, एक नारे बाज़ी अथवा इच्छानुरूप चित्रन मात्र और वास्तव में आधारशून्य होगा।

अस्तु, भारतीय जनता और कवियों के लिये यही एक दुविधा थी। 'साहिर' (एक महान् उर्दू कवि) इस दुविधा पूर्ण मनो वृत्ति को सही तौर पर पकड़ पाये थे –

'वे जिनको भाई कह कर हम ने सीने से लगाया था

....

वतन-दुश्मन दरिंदों के लिये तलवार हो जाओ।'

और उन्हों ने चेतावनी के एक संकेत सिंहनाद भी किया— 'हमें सावधान रहना चाहिये कि कोई देश द्रोही अपनी तिजोरी न भर सके, कोई काला बाज़ार करने वाला जनता के मूल्य पर लाभान्वित न हो पाये। इतिहस हमारे संकट के इस दुर्भाग्यकाल में हमें हमारी लोलुपता और शक्तिक्षय के लिये धिक्कार न दे।'

परन्तु हमारे कवियों में से कितने शत्रु के प्रति ललकार और देश द्रोहियों के विरुद्ध चेतावनी की इस दोहरी मनः स्थिति की पकड़ पासके थे ? यही आधारभूत समस्या थी और हमारे कवि न तो इसको समझ पाए और न इसका सामना कर सके। ज़्यादा उनमें से अधिकांश अर्जुन, कर्ण, राणा प्रताप, शिवाजी और टीपू सुलतान जैसे योद्धाओं के अतीत शानदार कारनामों का संकेत मात्र ही दे सके।

परन्तु क्या ऐसा करना वर्तमान के कठोर सत्यों की मार से

डर कर अतीत की ओर पलायन का भगोड़ापन स्वीकार करना नहीं था ? क्या पाकिस्तानी आक्रमण के समय पाई जाने वाली स्वच्छन्दता, जो कि दीनू, दीप, यश, शास्त्री और समैलपुरी तथा अन्य कई कवियों की रचना में हमें देखने को मिली थी, कहीं पाई जाती थी ? सिर्फ पद्मा शर्मा ही उस आत्मतत्व को पकड़ पाई दीख पड़ती हैं जब वे अपने 'बतन दे बिच्च' में गायन करती हैं (के० एस० मधुकर द्वारा सम्पादित 'देस प्यार दे गीत' (पृ. १८ पं० १-६)। यह हमें दीनू और यश की, एक पुरुष और एक नारी—भाई और बहन—के संवादों के रूप में लिखी कविताओं का स्मरण कराती है। इस बार दीप, पूर्व अवसरों के प्रतिकूल, अस्पष्ट और परित्याग-परायण-से हो गये हैं, जिसका कारण उनकी कविता 'मेरा देस' ('देस प्यार दे गीत' पृ० ३४ पं० १-५) से स्पष्ट समझ में आता है। और तारासमैलपुरी ने शान्तिपूर्ण व्यवसायों का गुणगायन करने तथा संकीर्ण राष्ट्रीयता और राष्ट्रों के आपसी सशस्त्र झगड़ों की निन्दा का प्रयत्न अपनी एक (अभी अप्रकाशित) कविता में किया है। श्री रामकृष्ण शास्त्री की कविता 'चीन' ('देस-प्यार दे गीत, पृ०) २० श्री दुर्गादत्त शास्त्री को 'देसा दा प्यार बधाना' (वही, पृ० ११) और श्री श्यामदत्त पराग की कविता 'आज़ादी दी जोत', इन सब में, यद्यपि भावनाओं की निश्छलता विद्यमान है, तथापि इनमें मात्र आलंकारिकता के सिवाय कुछ नहीं है। इनमें कहीं एक-आध पंक्ति या वाक्य काफ़ी हृदयस्पर्शी भी है, लेकिन सामूहिक रूप से इनका उद्देश्य अपने आपको यह विश्वास, दूसरों को विश्वास दिलाये बिना ही है कि हम चीन का सामना कर सकते हैं।

यह उलझन-भरी स्थिति वस्तुता कारुण्यपूर्ण और पीड़ादायक है, क्योंकि ऐसा कौन है जो एक सच्चा देशभक्त होते हुए भी यह नहीं चाहता कि चीनियों को भारतभूमि से खदेड़ कर बाहर कर दिया जाय ? परन्तू क्या हम अतीत के गुणगायन मात्र के थोथे

बलबूते पर ऐसा कर सकते हैं ? जीवन के कठोर सत्यों से, विश्व-राजनीति की उलझन भरी वस्तु स्थिति से लजा कर हम क्यों भगोड़े बनें ? क्यों, युद्ध के लिये तैयार होने की अनिवार्यता देखते हुए भी, हम कोरे दार्शनिकों की भांति, निस्सार शान्ति-प्रियता का वखान करते फिरें ? क्यों, परिस्थिति की विषमता को देखते हुए एक विशेष गुट के इर्दगिर्द चक्कर काटते रह कर भी हम गुट-निरपेक्षता की बातें बघारते रहें ? निश्चय ही यदि यह राष्ट्रीय-उलझन न होती, अथवा हमारे वचन और कर्म में ऐसी परस्पर द्वैधता न होती, जैसाकि चीनी भी कहते होंगे, तो सम्भवत: चीन हम पर आक्रमण करने का दुस्साहस न कर पाता । और कविजन भी, सच्चे देशभक्तों के अनुरूप, चीनियों को निकाल बाहर करने के लिये गीत गाते । परन्तु जैसे नेताओं के भाषण जनता को मात्र अंशत: ही सन्तुष्ट कर पाये थे वही दशा, चीनी आक्रमण के बाद लिखी गई कविताओं में से अधिकांश की भी हुई ।

जांनिसार अख्तर, जिन्होंने चीनी विभीषिका की समस्त भारतीय राष्ट्र के प्रति, सम्भावनाओं को, सच्चे रूप में चित्रित किया था, साहिर लुध्यानवी, जो अपसंचय और कालाव्यापार करने वालों का रूप धारण किये चीनी समर्थकों का भांडाफ़ोड़ करने से नहीं डरे, सिरफ़ ऐसे कविजन वस्तुतः महान् और आश्वासन देने में समर्थ कविताएं लिख सके थे । यही कारण है कि श्री कृष्ण समैलपुरी की कविता 'सोहागन' (देस प्यार दे गीत पृ० ३) तथा उन्हीं की कव्वाली (वही पृ० १) एक उत्तम कविता की अपेक्षा एक मधुर मनोहर संगीत तैयार करने के उद्देश्य से लिखी गई जान पड़ती है ।

श्रीमधुकर भी अपनी पहले की-सी ऊंचाइयों तक नहीं उठ पाये हैं, कि 'झूठ नेइयों बोलदा, मेरी गल्ला च सचाई ऐ, दिन्दा

इतिहास मेरी गवाई ए' इस कविता में देखने को मिली थीं, जिनमें उन्होंने उन कारणों को दोहराया था जिनसे भारत दासता की बेड़ियों में जकड़ा गया । कविता ओजस्विनी तो थी, यद्यपि उसका अभिगम थोड़ा बहुत प्रतिक्रियावादी था । अन्तर जानने के लिये, मधुकर की इस कविता की तुलना उन्हीं की कविता 'सदा सुहागन धरती' (वही, पृ० २९) या 'गीत' (वही पृ० ३२) से करनी होगी ।

परमानद अलमस्त ने बन्दूक के लिये 'बन्दूकड़ू', कम्बल के लिये 'कम्बलू' और 'गीतड़ू' जैसे शब्दों का प्रयोग करके, उनसे झलक रहे गीतोचित गुण उत्पन्न करने के तुच्छ प्रभाव के लोभ में अपनी कविता 'ललकार' (वही, पृ० २५) में पाये गये वीरतापूर्ण तत्व की मानो बलि दे डाली है । उन्होंने, केवल अनजाने तौर पर ढील, आराम पसन्दी, और मिथ्या सन्तोष आदि दोषों का, जो भारतीय राष्ट्र को गुमसुम रूप में धीरे दबोचते जा रहे हैं, संकेत मात्र कर दिया है जो उन्हें, तथा अन्य कई कवियों को भी, खुले तौर से कहने चाहिये थे। उनके शब्द महत्वपूर्ण हैं—'मन्नेयां गल्ल, हुन हल्ल भाई हल्ल' (वही, पृ० २६) : अब मेरो बात सुनो आलस छोड़ कर काम में जुट जाओ ।

अन्त में, अलमत फिर ज़ोर पकड़ते हैं :

'देसा अन्दर कोई बैरी खैरी,

अम्बी जै चन्द रौन नेईं देना ।'

परन्तु तभी वे अपनी पकड़ फिर ढीली कर देते हैं और उसी तुच्छता पर उतर आते हैं :

'मोंयें दे मुंडें दी माला बनागे'

'अलमस्ता दी जित, फिर कैदी ऐ हार' (वही, पृ० २८) श्री चरणसिंह अपनी कविता 'किन्द' में (वही, पृ० १६) परिस्थिति

के एक अलग पहलू पर दृष्टि डालते हैं : शायद हम निरुत्साही होते जा रहे हैं और पराजित-मनोवृत्ति का शिकार बनते जा रहे हैं—

"उट्ठो! उट्ठो! ....
हिम्मत, हौसला देसै गी हारी जा दा"

क्यों हम उत्साह हीन हों ? हम एक गौरवपूर्ण इतिहास रखते हैं, हमें एक बार फिर उठना चाहिये और वही कारनामे कर दिखाने चाहिये जो संसार के महान् नेताओं तथा शूरवीरों की सन्तान के रूप में हमारे लिये समुचित हैं ।

श्री रामलाल खजूरिया एक अधिकतर परिपुष्ट और स्वस्थतर स्वर अलापते हैं। हमने सदा ही शान्ति से प्रेम रखा है, उसकी रक्षार्थ कष्ट झेले हैं । परन्तु यदि चीन ने मित्रता के नाम को कलंकित किया और हमारी पीठ में छुरा घोंपा है, तो हम अपनी शान्ति प्रियता की नीति और चीन के प्रति मैत्री के लिये अपने प्रयत्नों के कारण लज्जित क्यों हों ? हम क्यों आश्चर्यचकित और अधीर हो उठें ? चीन सम्भवतः युद्धस्थलों की हमारी अतीत उपलब्धियों से अनजान है; शायद चीन वालों को युद्ध से उत्पन्न होने वाले भीषण परिणामों का भी ज्ञान नहीं है । हम रक्तपात के फलों से अवगत हैं, और इसी कारण हम उससे दूर रहना चाहते हैं ।' (वही, पृ० ८, कविता-चेतावनी) 'परन्तु यदि चीन युद्ध ही चाहता है तो हम उसके लिये सन्नद्ध हैं। हमें दूसरों की भूमि की लालसा नहीं है, पर जो हमारा है उसकी रक्षा से हम कदापि पीछे नहीं हटेंगे, और न ही हम आक्रमण का मुंह तोड़ उत्तर देने से झिझकेंगे । हम चीनियों द्वारा हमारे साथ खेली गई प्रवंचना और धोकाधड़ी के कारण लकवा मार जाने की स्थिति में गिर जाने से इन्कार करते हैं । हम आत्मरक्षा के यन्त्रों को सुदृढ करेंगे जिससे कोई भी शक्तिशाली आक्रमणकारी हमारी भूमि

पर अपनी पाप दृष्टि न डाल सके ।' (वही, पृ० १०-११ कविता 'हुब्ब')

राष्ट्र जिस रोग से ग्रस्त है उसका निदान दीनू भाई पंत बताते हैं। 'हम बहुत ज़्यादा आत्म-सन्तुष्ट और मिथ्याभिमानी हो चुके हैं और अपनी अतीत कीर्तियों पर भरोसा करते हैं। हमारी ऐसी ही प्रवृत्ति भूतकाल में भी हमारे सर्बनाश का कारण बनती रही है। यादवों के वीर-वंश का ध्वंस उनकी स्वार्थपरता और तुच्छ कारणों पर अन्तरिक कलह से हो गया था। परन्तु अब इसी तरह की सब बातों पर रोने धोने की ज़रूरत नहीं है। हम पर चीन द्वारा किया गया यह आक्रमण-रूपी झटका ही हमारे लिये उपकारी हो सकता है यदि हम अब भी अपने आलस्य और मिथ्या-संतोष को छोड़ सकें। यह जीवन तभी सफल समझना चाहिये यदि इसे देश सेवा और देश-भाइयों के हितार्थ अर्पण किगा जा सके। इस लिये हमें शत्रु का अपने को आभारी मानना चाहिये जिसने हमें इस मृत्युसम निद्रा से जागृत किया। देश के सपूत वही हैं जो देशकी रक्षा और एक सूत्रता के लिये अपना सर्वस्व बलिदान करने को प्रस्तुत हैं। ऐसे जन अमर हैं और एक ज्योति के समान हैं जो दूसरों के लिये शाश्वत रूप से पथ को प्रदर्शित करतें है। और वह क्षण वास्तव में एक पवित्र समय है जबकि देश के जन अपने देश के प्रति अपनी सही जिम्मेबारी को भांप लेते हैं। वही, पृ० २३-२४)

दीनू भाई के उद्‌वोधन का आत्मतत्व ठीक वैसा ही है जबकि हेनरी पांचवें अपने विरुद्ध दुर्दान्त परिस्थितियों को भांप कर भी युद्ध को ही श्रेष्ठतर समझता है क्योंकि वही, जो आज जीता बचेगा वस्तुतः चिरजीवी हो सकेगा।

हिन्दी के प्रख्यात कवि दिनकर 'चलो सिपाही, चलो' में पृ० १५ पर) प्रकाशित अपनी पाद टिप्पणी में वही बात कहते हैं

जो दीनू भाई ने डोगरी में कही है कि असली मोर्चे मात्र युद्ध भूमि में ही नहीं रहते बल्कि खेतों, कारखानों और बाज़ारों में भी हुआ करते हैं।

परन्तु इतना सब कहने पर भी, दीनू भाई 'पुन्न घड़ी' में देश की वास्तविक समस्या से यद्यपि जूझ पड़े हैं फिर बे हमें उस तीव्रता से प्रभावित नहीं कर पाये है जिससे उनकी पूर्वतर कविताएं कर सकी थीं, क्योंकि इस कविता में उनकी अनुभूति उनके हृदय से उतनी नही उठी है जितनी उनकी बुद्धि से।

प्राध्यापक रामनाथ शास्त्री भी वास्तविक समस्या तक जा पहुंचे हैं। 'यह समय हमारे लिये बातें करने का नहीं है, काम करने का है। क्योंकि ज़्यादा बातूनीपन से हम शत्रु को पराजित नहीं कर सकते। (वही, 'अज्ज हिमाला खतरे च ऐ') केवल संकट-काल में ही हम जान सकते हैं कि कौन लोग वस्तुत: देशभक्त हैं और कौन देश के प्रति अपने कर्तव्य को केवल बातों में ही टरका देते हैं। भारतीय दो तरह के हैं: चीनो भारती और भारत के भारतीय। देश को बलिदान, आत्मोत्सर्ग से ही जीवित रखा जा सकता है। पूरा भारत ही एक देश है। यदि उसके एक भाग पर आक्रमण होता है तो वह समस्त देश पर आक्रमग है। (वही, पृ० ५-६)।

इस प्रकार, जिस बात की इस समय आवश्यकता है, वह है नई सन्नद्धता, एक नया दृष्टिकोण जो बदल चुकी परिस्थितियों का सामना कर सके। अब हिमालय हमारा संतरी (रक्षक=पहरेदार) नहीं रहा, जोकि अति प्राचीनकाल से हमारा द्वारपाल था। अब तो उसकी प्राकार-भिति चीनी काफ़रों ने छेद डाली है। अब हमें एक नवीन हिमालय खड़ा करना होगा, जो दृढ़ हो, अभेघ हो, उसे अपने दृढ़ निश्चय और अटूट साहस से, नवीन और शक्तियुक्त सैन्य बल के रूप में, जो रक्षा के ओजस्वी

साधनों से युक्त हो, जिसकी सहायता से चीनी आक्रमण को निष्फल किया जा सके, निर्माण करना होगा।

अस्तु, युद्ध चालू है। यश, सपोलिया परमचंद प्रेमी और अन्य डोगरी कवियों ने भी चीनी आक्रनण पर लिखा है। ये रचनायें यदि हमारे मनके लिये कम सन्तोषजनक हैं तो इसमें सारा दोष इन कवियों का ही नहीं। समस्यायें और भी उलझ गई हैं और राष्ट्रीय नीति भी पूरे तौर पर स्पष्ट या एक सूत्री नहीं हैं। विचार-धारा सम्बन्धी संयोग अथवा राजनैतिक सम्बन्ध एक औसत भारतीय के लिये केवल उलझन में डालने के लिये ही सहायक हुए हैं, क्योंकि जहां वह देश के प्रति अपने कर्तव्य को पहचानता है, वह राजनैतिक दलों के नेताओं की मनोवृत्तियों को समझने में अपने को असमर्थ पाता है। यदि देश सबका है तो क्या बड़े २ व्यापारी, उद्योगपति और उन्हीं के समकोटि अन्य लोग स्वार्थपरता और आत्माभ्युदय की अपनी नीति का त्याग करके देश हित को निजी लाभ की अपेक्षा उच्चतर बनाएंगे? और, यदि वे लोग ऐसा कर सकें तो अन्तिम परिणाम के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो सकता। और जब मत और वचन का ऐसा वातावरण तैयार हो जाय, तो कविजनों को मालूम है कि वे जो कुछ लिख रहे है वह सीधा हृदय से निकल रहा है और दूसरों के हृदय तक पहुंच जाता है और वह उन्हें न तो उलझन में घसीटता और न उन्हें आलसी बनाता है। जब कवियों की वाणी जन-साधारण की वाणी से मिल पायगी तो वह एक ऐसा विशाल संगम बन जाएगा जो देश के समस्त शत्रुओं के लिये मृत्युवान के समान सिद्ध होगा।"

गद्य—श्री धर्मचन्द्र प्रशान्त की रचना 'उच्चियां धारां', एक कहानी संग्रह, नवीन और पुरातन का, रूढ़िप्राप्त शैली और नवीन प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण है। प्रशान्त एक पत्रकार हैं और

वे जो कुछ लिखते हैं उसके प्रति पाठकों की रुचि उत्पन्न करना चाहते हैं। उनका अभिगम उस लेखक का सा है जो ऐतिहासिक उपन्यास या अन्य ऐतिहासिक लेख लिखता है परन्तु जिसका ऐतिहासिक उपकरणों का उपयोग स्वेच्छानुसारी होता है। प्रशान्त महोदय अपने आप में बहुत कुछ हैं : एक मनोविज्ञान-वेत्ता, एक वर्णनात्मक लेखक, एक इतिहासज्ञ, एक भावुकतावादी; और इन्हीं से आपको बल मिला है और आपकी दुर्बलताएं भी इन्हीं के फल-स्वरूप आई हैं। कई स्थलों में तुच्छ विवरणों पर अनावश्यक बल दिया गया है, कई बातों की व्यर्थ में ही पुनरुक्ति की जाती है, और कहीं कहीं कल्पित कथा को इतिहास का परिधान पहना दिया जाता है। परन्तु बहुश: एक प्रत्यक्षता, एक समृद्ध गद्य-शैली, एक कौशलनिर्मित कथावस्तु, एक वातावरण रहता है जिसकी ओर बहुत कम डोगरी लेखक अधिक ध्यान देते हैं। और जब अतीत की ओर मुड़ कर देखने, उसके रहस्यों की खोज और उसके भीषण पहलुओं को प्रस्तुत करने का अवसर आता है तो दूसरे डोगरी कहानीकार कदाचित् ही आपकी समता कर पाते हैं। प्रशान्त अपने कथन की सत्यता के विषय में अपने पाठकों को विश्वास दिलाने के उद्देश्य से विवरण पर विवरण देकर उनका अम्बार लगा देते हैं, परन्तु यह प्रवृति कुछ कठिनाईयों से पूर्ण रहती है, क्योंकि उसमें सदैव विस्तार का जोखिम रहता है, और निःसन्देह आप बहुश: अनावश्यक विस्तार कर भी देते हैं। इनकी रोमेंटिक प्रवृत्ति इन्हें उन भद्दे मार्गों की ओर ले जाती है जिनका अनुसरण प्रशान्त जैसे सहज बुद्धि सम्पन्न लेखक कम ही किया करते हैं। परन्तु उधर प्रशान्त जी हैं जो अपने तर्क-बोध की अपेक्षा अपनी अनुभूतियों से ज्यादा प्रेरणा पाते हैं।

प्रशान्त की कहानियां पढ़ कर आशचर्य होता है कि क्यों वे अपने विस्तारशील स्वभाव और भावुकता तथा रोमेंटक प्रवृत्ति पर नियन्त्रण नहीं कर पाते हैं, क्योंकि जहां उनकी कहानी और

कथावस्तु में रोचकता विद्यमान रहती है वहां फिसलने वाली गद्यशैली, गद्यकाल के समुचित ज्ञान का अभाव, अपने विवरणों पर इनकी पकड़ की कमी है। प्रशांत की रचनाओं को पढ़ते समय पाठक प्रायः उत्सुकता और रहस्य, आतंक और आश्चर्य, जिसे प्रशान्त अपने विवरणों और वर्णनों द्वारा खड़ा करते हैं, से बहुत प्रभावित होते हैं और वे भगवत्प्रसाद साठे की याद दिलाते हैं। पगन्तु इन दोनों में एक जैसी त्रुटियां हैं, और इसका कारण सम्भवतः प्रत्येक वस्तु का परिमाजन करने में इनका आलस्य, और अपने विवरणों के प्रति इनकी अधिक सतर्कता तथा अपनी भावुकता के प्रति कुछ ज़्यादा कठोर रहने के निश्चय का अभाव है। और यह सब कह देने के बाद भी आपकी कथाओं में रोचकता और मूल्यांकन के लिये बहुत कुछ अवशेष रह जाता है और वह है उनकी पठनीयता। प्रशान्त, साठे की भांति, वस्तुतः पठनीय हैं। प्रशान्त अपेक्षतः अधिक चेतनाशील कलाकार हैं, परन्तु साठे अपनी भाषा पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण रखते हैं। प्रशान्त की 'अखीरली बल', 'नीलमा दा भेत' और 'म्हौर गढ़ दी कुन्जी' काफी रोचक कहानियां हैं और वैसी ही कल्चरल अकादमी के 'साढ़ा साहित्य (१९६०-६२) में प्रकाशित इनकी 'चंचलो' शीर्षक कहानी है।

प्रशान्त 'रेखा' नाम से एक कहानी-पत्रिका भी निकाल रहे हैं, जिसमें इन्होंने अपनी कुछ और कहानियां प्रकाशित की हैं। इन कहानियों में प्रशान्त हमारे समक्ष-नाटककार, पत्रकार, रोमेंटिक और भावुकता परायण प्रशान्त आ खड़े होते हैं। और अभी थोड़ा ही समय पहले आपने 'डोगरी गद्य का विकास' विषय पर एक लेख पढ़ा है जो काफी रोचक है, और जिसमें बहुत उपयोगी जानकारी और अनावश्यक विवरणों का मिश्रण है।

श्री राम कुमार अबरोल द्वारा रचित 'फुल्ल बने अङ्गारे' में आप एक प्रौढ़ कलाकार के रूप में प्रकट होते हैं। भाषागत दुर्बलता इसमें भी है और इनकी भावुकता भी वैसी ही है परन्तु

इनकी पूर्वरचित 'पैरें दे निशान' की अपेक्षा इस कहानी संग्रह में शिल्पगत कौशल अधिक है। विषय-वस्तु में भी पर्याप्त सुधार देखने में आया है और इनका आलेख्यपट भी विस्तृततर हो गया है। विवरणों पर इनकी पकड़ पहले की अपेक्षा कृतदृष्ट तो हुई है पर इतनी दृढ़ नहीं जितनी कि होनी चाहिये थी। 'साबत आदमी' की कल्पना-सृष्टि जटिल होते हुए भी प्रतीतिजनक रूप में हुई है। 'रौंगले हत्थ' नामक कहानी आंशिक रूप में रोचक है पर उसमें एक चीज़ खटकती है, और वह है 'जन' शब्द का बार बार प्रयोग; जो कि अबरोल में केवल अजाने में ही आवश्यकता से अधिक सतर्कता के इनके स्वभाव को ही नहीं, बल्कि उस शब्द के संक्षेपात्मक प्रयोग पर नियंत्रण के अभाव, निश्चिन्तता की कमी को प्रकट करता है। अबरोल महोदय वस्तुतः डोगरी के एक महान् कहानीकार बन सकते बशर्ते कि आप विवरणों में निश्चितता-उद्भावन तथा अपनी भावुकता पूर्ण मनो-वृत्ति पर नियंत्रण करें और टकसाली अभिव्यक्तियों का बहुलता से प्रयोग न करें।

शम्भुनाथ शर्मा और रामलाल शर्मा ने भी कुछ कहानियां लिखी हैं। शम्भुनाथ में करुण रस है और रामलाल शर्मा प्रायौगिक बुद्धि और व्यंग्य में प्रवीण हैं, फिर भी ये दोनों निश्चय ही कवि हैं। ढेरूमल, जो दुर्भाग्यवश असमय में ही कालकवलित हो गये, भी कहानियां लिखते थे; और उन में से एक 'न्हेरा ते सबेरा' ('साढ़ा साहित्य' में प्रकाशित) लगभग आत्मकथा के रूप में है। इसकी तुलना १९६३ में प्रकाशित 'फुल्ल बनी गे अंगारे' की 'टाकी कुन लाग' शीर्षक कहानी के साथ बड़ी सरलता से की जा सकती है। इस में करुणा हैं, व्यंग्य है और एक ताज़गी है, और यह और भी प्रभावोत्पादक है क्यों कि यह परिस्थिति के प्रत्यक्ष एवं कलात्मक निर्वहण के कारण आश्चर्य-चकित कर देती है।

मदनमोहन शर्मा का एक और कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है, 'चाननी रात'। आपकी शैली में एक स्तुत्य परिवर्तन हुआ। आयु

में वर्षों के साथ ही इन में प्रौढता आ गई है। इसमें लेखक के घुमा-फिरा कर बात के प्रति मोह मात्रा में बहुत काम है यद्यपि इनकी यह प्रवृति पूर्णतया विलुप्त नहीं हो पाई है। इसके परिणाम स्वरूप भावुकता कम हुई है, क्योंकि अब आप पहले की भांति केवल अपनी भावुकता में ही निमज्जित नहीं रहते हैं। इनका विषय वस्तु जटिल है परन्तु इनका निर्वहण बड़ी चतुरता से हुआ है, और कुछ मनो वैज्ञानिक अंकन है जिनके फल स्वरूप ये कहानियां अधिक संतोषप्रद बन पाई हैं। आपकी कहानी 'लालटेन' ('साढ़ा साहित्य' खण्ड-१, वर्ष १९६०-६२ में प्रकाशित) सिद्ध करती है कि मदनमोहन अब भावुक नहीं रहे हैं; और यह कहानी तकनीक और शैली की दृष्टि से भारत की अन्य प्रादेशिक भाषाओं में लिखी गई अनेकों सर्वश्रेष्ट कहानियों के समकक्ष रखी जा सकती है।

वेद राही ने भी अपनी डोगरी कहानियों में अभिवृद्धि की है, यद्यपि अब आप अधिकतर हिन्दी में लिखने में व्यस्त हैं, आपकी 'एह् मेरे पहाड़ नें' वास्तव में डोगरी की एक श्रेष्ट कहानी है।

गद्य में कला, नृत्य, लोकगीत, समालोचना इत्यादि विभिन्न विषयों पर कतिपय श्रेष्ट निबंध भी लिखे जा रहे हैं। इनके लेखकों में प्रमुख हैं; श्री विश्वनाथ खजूरिया, श्री संसार चन्द्र शर्मा, श्री विद्या रत्न खजूरिया, प्रो० राम नाथ शास्त्री, पं० गंगानाथ तथा अन्य इन में से कई एक लेख 'साढ़ा साहित्य' १९६०-६२ के और 'साढ़ा साहित्य' १९६३ में प्रकाशित हुए हैं।

श्री तारा समैलपुरी का 'डोगरी कहावत कोष' १५०० डोगरी मुहावरों को अनुरूप हिन्दी अनुवाद समेत संग्रह, प्रादेशिक सांस्कृतिक अकादमी द्वारा प्रकाशित, एक उपयोगी पुस्तक है। यह एक पाठक को केवल डोगरी में प्रचलित लोकोक्तियों का

ही नहीं, बल्कि कुछ अंशों में डोगरों के आचार-व्यवहार और उनके रीति रिवाजों का भी ज्ञान देता है। डोगरी के अध्ययन और इसके विकास में रुचि रखने वाले एक भाषाविद् के लिये यह एक उपयोगी उपकरण है।

काव्य—कुछ काव्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। वेद राही ने अपनी सभी डोगरी ग़ज़लें और कविताएं प्रदेश के सूचना विभाग की 'योजना' नामक हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित की हैं। वेदराही की शैली विचारपुष्ट और चिन्तनप्रधान है। आपकी ग़ज़लों में शिल्पगत कौशल है परन्तु इन में दीप अथवा मधुकर जैसी सम्पन्नता और नैसर्गिकता नहीं है। आप वस्तुतः एक गद्य लेखक हैं।

राम कुमार अबरील ने भी अपनी कुछ डोगरी कविताएं प्रकाशित की हैं। आपने 'मेरी कविता', 'मेरी कहानियां' लिखी हैं। प्रत्यक्षतः आप प्रो० रामनाथ शास्त्री द्वारा प्रभावित दिखाई देते हैं, यद्यपि इन की 'टल्लें कन्ने सजी दी एह मूरत' वस्तुतः विचारोत्तेजक है।

रामलाल शर्मा 'किरण' (१८६३) और चरणसिंह की जोत' (१९६४) भी इन के द्वारा काव्य-क्षेत्र में उठाए गए लम्बे डगों को प्रदर्शित करती हैं। दोनों ने ही अपनी आत्मचेतनपरायणता को त्याग दिया है और अपनी शैली में एक स्थिरता प्राप्त कर ली है। और रामलाल शर्मा अपने वर्ण्य-विषय पर गहरी पैठ पा गए हैं। भले ही आप के विचारों से कोई पूर्णतः सहमत न हो परन्तु इनकी कृतियों में बल है, एक प्रत्यक्षता और सरलता जो कि सब बड़े कवियों की कविताओं में नहीं मिलती। चरणसिंह की भाषा प्रभाव शील है और आवश्यकता होने पर मांसल भी है, परन्तु कहीं कहीं इन के विचार आपाततः समझ में नहीं आते।

मधुकर ने भी अपनी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित

किया है। कुछ कविताएं पहले से ही प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु कुछ एक पहली बार ही प्रकाशित हुई हैं। यह संग्रह डोगरी काव्य में एक महान् योगदान है और एक साहित्यिक सीमा-चिह्न है। इसमें एक स्वर्गीय उड़ान है परन्तु 'धरती माता की ओर' का अभिगम भी है। इस में माधुर्य है, समृद्धि है और परिपक्वता है। इस के द्वारा मधुकर मात्र एक श्रेष्टतर कवि के रूप में ही नहीं अपितु एक श्रेष्टतर मानव के रूप में भी हमारे समक्ष आते हैं।

मोहनलाल सपोलिया ने भी स्पष्ट रूप से प्रगति की है। आपकी पहले की कुछ दुर्बलताएं और भावुकता अब भी है परन्तु आपका शिल्प-चातुर्य काफी विकसित हुआ है और आपका विषय वस्तु का चयन और उसका निर्वहण वस्तुतः शलाघनीय है। सपोलिया कभी कभी जनता के एक वर्ग-विशेष के लिये लिखते हैं, जिसका राजनयिक दृष्टिकोण दक्षिणपंथी है। परन्तु आपकी शैली की प्रवलता और उग्रता कहीं आश्चर्य में डाल देती है। यदि आप अपने भावावेश और जोर जोश पर काबू पा सकें तो निश्चय ही आप डोगरी के महान् कवि बन सकते हैं।

तारा समैलपुरी ने भी डोगरी के सम्पन्न कलेवर में अभिवृद्धि की है। आपकी 'बावे' निढल्ले साधुओं मंगतों पर एक अच्छा व्यंग्य है, जो सूर्य को पहली किरणों के उदय के साथ ही अपने भिक्षा पात्र लेकर लोगों के घरों पर धावा बोल देते हैं। वे सामाजिक बुराइयों और दुःखद अवस्था से तनिक भी विचलित नहीं होते और उन्हें इस सब के साथ दूर का भी वास्ता नहीं है कि देश में शान्ति है युद्ध की स्थिति है; उन्हे तो केवल अपने 'आटे' और 'चावल' ही से मतलब रहता है। प्रस्तुत कविता इन साधुओं का बड़ी निठुरता से भाण्डा फोड़ती है जो जनसाधारण की कमाई पर उनकी स्त्रियों की निष्ठा और आस्था का उनुचित लाभ उठा कर अपना जीवन-यापन करते हैं। यदि ये साधु देश में

हो रहे रचनात्मक कार्यों में अथवा इसकी स्वतंत्रता की सुरक्षा में हाथ बटाएं तो वे अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकते हैं। पर यदि वे ऐसा करने लगें तो फिर वे साधु कैसे ? तारामणि ने इनकी ध्वनि और इनके स्वर को भी ज्यों का त्यों उतार लिया है और उनकी जीवनचर्या का यथातथ्य चित्र उपस्थित किया है, जो दिन में तो साधुओं का अभिनय करने हैं। किन्तु रात के समय मद्यपान करते हैं तथा जुआ खेलते हैं। विवरण सशक्त तथा प्रामाणिकता लिये हुए है और शैली में हास्य - व्यंग्य का मिश्रण हैं। 'बावे' शुरू में तो अपने पाठकों को हंसाती है पर बाद में ऐसी जोकों के प्रति उनके मन में रोष और घृणा का संचार करती है, जो अपने कुकर्मों द्वारा लोगों में वास्तविक साधुओं के प्रति भी अश्रद्धा की भावना उत्पन्न कर देते हैं। आजकल तारा समैलपुरी 'बिलावर' नियुक्त हैं। बिलावर जम्मू प्रान्त के आकर्षक स्थानों में से है और सुकराला देवी के मन्दिर के कारण प्रसिद्ध है। जहां भक्तजन अपनी श्रद्धा की भेंट चढाने जाया करते हैं। बिलावर एक पुरातन नगर हैं, जहां इतिहास और पुराण एकाकार हो गये हैं। तारासमैलपुरी ने बिलावर पर एक लम्बी कविता लिखी है, जिसमें उन्हों ने लोकविश्वासों को अभिव्यक्त किया है, परन्तु उस क्षेत्र में व्याप्त अन्धविश्वासों को नहीं। अपने विर्वहण में यह कविता हमें भगवत्प्रसाद साठे की कहानी 'कुड़में दा लामा' का स्मरण दिलाती है, क्योंकि भले ही दोनों के विषय-वस्तु पृथक हैं, परन्तु इनका निर्वहण परस्पर बहुत मिलता जुलता है। दोनों ही इस तरह लिखते हैं, मानो इन्हे अपने लिखे पर पूरा विश्वाश हो, और इसके द्वारा इनके विषयों में विश्वसनीयता और प्रामाणिकता आ गई है। इस कविता के प्रकृति - चित्रण से इनकी पूर्वरचित कविता 'अनसम्बे गीत' का स्मरण हो आता है।

इसमें बैसी सम्पन्न परन्तु जटिल शैली है, विवरणों का वैसा ही फ़लात्मक प्रतिपादन है, जिस में पुराण और इतिहास

एक समृद्ध स्वरूप में अन्तर्भूत किये गये है, जिसे आप 'अनसम्बे गीत' में देख चुके हैं। और यद्यपि कविता के विषयगत निर्वहण में अत्युक्ति के समावेश की गुंजाइश थी, पर इसके प्रतिपादन में, सामूहिक दृष्टि से, संयम से काम लिया गया है।

हमारी कामना है कि तारा समैलपुरी को ऐसी और अधिक रचनाएं प्राय: लिखते रहना चाहिये।

इन दिनों दीनू भाई पन्त कविता की अपेक्षा कही अधिक गंभीरता से नाटक लिखने में लगे हुए हैं। कविता अब आप बीच बीच में किसी कवि सम्मेलन का आयोजन होने पर अथवा किसी और विशेष अवसर पर ही लिखते हैं। आपने होली पर एक कविता लिखी है जो उस महान् कवि की याद दिलाती है। जो दीनू भाई किसी समय थे। हास्य का तत्व, जो दीनू को डोगरी के अन्य कवियों में विशिष्टता प्रदान करता है, प्रस्तुत कविता में भी है, पर दीनू अब ऐसी कविताएं कभी विरले ही लिखते हैं। आप रचनात्मक पक्ष पर अधिक बल देते हैं; और इसी कारण आपकी कविता एक समाज-सेवक को भले ही अधिक उपयोगी प्रतीत होती हो, पर साहित्य के विद्यार्थी को अधिक प्रभावित नहीं कर सकती।

आपकी 'नेहरू की वसीयत' लिखी गई कविता स्पष्टत: नेहरू की वसीयत से प्रभावित होकर लिखी गई है। पर नेहरू की वसीयत अधिक कवित्वपूर्ण है, यद्यपि यह दीनू की कविता के दूसरी ओर गद्य में लिखी गई है। और दीनू इस तथ्य को स्वीकारते हैं। परन्तु इसमें भी वह पहले का कुशल-कवि बीच-बीच में कौंध के रूप में देखा जा सकता है।

किशन समैलपुरी : इन्हें अपनी उर्दू कविताओं के संग्रह 'फ़िरदौसे बतन' पर १९६३-६४ में अकादमी का द्वितीय पुरस्कार मिल चुका है। और अब आप डोगरी के वैसे सक्रिय लेखक नहीं

रहे हैं जैसे कि आप कभी हुआ करते थे। आप अब भी गीत और ग़ज़लें लिखते हैं पर ये प्राय: रेडियो के लिये ही होती हैं।

परमानन्द 'अलमस्त' ने अपने पुराने भण्डार में पर्याप्त संख्या में नई कविताएं शामिल की हैं और इन्हें 'भुनक' के नाम से प्रकाशित किया है। पहले के रोमांटिक, पार्वत्य क्षेत्रों के प्रेमी और उत्कृष्ट गीतकार अलमस्त ने अब एक ध्यान परायण और चिन्तनशील कवि का रूप ले लिया है। जीवन की गहन समस्याएं रहस्यवाद की दार्शनिकता, जोकि स्वामी ब्रह्मानन्द की कविता में मिलती है इनकी कविता में भी कहीं कहीं झलकती है।

'औं के आं, तू के एं..........'

'मैं क्या हूं—और तू क्या है :.........?' (पृष्ठ २६ साढ़ा साहित्य—१९६०-६२) पर स्वामी जी की भांति अलमस्त चिंतनशील विचारों की दुनिया में विचरते समय स्थिर नहीं रह पाते हैं। इनमें रोमेंटिक तत्व तुरन्त मुखरित हो जाता है।

रामलाल करलूपिया एक वयोवृद्ध व्यक्ति हैं। इनका व्यवसाय कृषि है। आप जम्मू तहसील में गजन-सू के निकट रहते हैं। आप उन लोगों में से हैं, जिन्हें डोगरी संस्था और सूचना विभाग द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनों में कविता पाठ सुनकर कविता लिखने की प्रेरणा मिली है।

रामलाल करलूपिया अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं। अतः कल्पना की ऊंची उड़ान आपकी रचनाओं में दृष्टिगत नहीं होती, परन्तु प्राकृतिक विषयों, जैसे खेतों, फूलों, हरी घास के मैदानों, पक्षियों और उनके संगीत आदि का आपको प्रचुर ज्ञान है। आपकी कविता सौन' ('साढ़ा साहित्य—१९६०-६२ पृष्ठ ५७-५८) में दिखाया गया है कि पपीहा प्रकृति—आकाश, मेघों, हरी घास मेंढकों के फुदकने और पक्षियों के कलरव को बड़ी उत्सुकता से

देखता है। आप वस्तु वर्णनशील कवि हैं, पर कभी कभी आप चिन्तनशील विषयों पर लिखने का प्रयास भी करते है : 'फिरदियां घिरदियां छामां (साढ़ा साहित्य' १९६०-६२, पृष्ठ ५८-५९) में जीवन के उतार-चढ़ाव तथा कभी दुःख और कभी सुख आदि का भाव व्यक्त किया गया है। इन्ही दोनों सीमाओं के बीच जीवन का चक्र चलता रहता है।

आपकी 'बसंत' में, जो अभी अप्रकाशित है, ऋतुराज के आगमण का चित्रण है। यद्यपि आपकी कविता में विचारों और भावो की उत्कृष्ट विशेषताओं का अभाव है, और दोषपूर्ण छन्द की त्रुटियां विद्यमान हैं, पर प्रस्तुत कविता इन सब से मुक्त एक मात्र समृद्ध रचना है। आपको पैठ में दृढ़ता तथा उसके निर्वहण में प्रौढता आई है।

चौधरी गुलाम रसूल ; बिलावर के रहने वाले हैं जिस पर तारा समैलपुरी ने एक सुन्दर कविता लिखी है । आप ठेकेदारी करते हैं और अपने स्वभाव तथा स्वेच्छा से कवि है। आपने बहुत सी कविताए लिखी हैं जो स्थानीय विषयों और समस्याओं को लेकर लिखी गई हैं । इनकी कविताओं में कटाक्ष और व्यंग्य विपुल मात्रा में विद्यमान है और कुछ कुछ मात्रा में प्रामाणिकता भी है। आपकी दृष्टि सीमित है और इनके लिये ऐसा होना स्वाभाविक भी है। यदि आप दूसरे डोगरी कवियों द्वारा लिखी जा रही रचनाओं को पढ़ें तो आप एक कवि के रूप में विकास कर सकते हैं, क्योंकि आपकी भाषा में स्थानी प्रबलता है, और यह, इस दिशा, में आपके बड़े काम आ सकती है।

प्रेम सिंह—रामनगर के रहने वाले हैं। और वृत्ति से वैद्य हैं। आपकी कविताओं की भाषा हमें भगवत्प्रसाद साठे की भाषा का स्मरण दिलाती है, क्योंकि साठे महोदय भी रामनगर में रह चुके हैं। प्रेमसिंह प्रासंगिक रुचियों के विषयों पर लिखते

हैं और जवाहरलाल नेहरू के निधन पर लिखी गई आपकी कविता में श्लाध्य भावनाएं हैं।

हेमराज 'ठप्पा'—तहसील हीरानगर के कूटा नामक गांव में पैदा हुए थे। छोटी आयु में ही आप अमृतसर चले गए और वहां एक कपड़ा-मिल में काम करने लगे। अमृतसर में ही आप कविता लिखने में प्रवृत्त हुए। मुख्य रूप में आप पंजाबी में कविता लिखते हैं परन्तु पिछले कुछ समय से आप डोगरी में भी लिखने लगे हैं। आप फिलमी धुनों पर आधारित गीत लिखते हैं, पर आपके गीतों की शैली लोक गीतों की सी है।

नरसिंह देव जम्वाल—उस लघु-मेघ-खण्ड के समान हैं जो कुछ घन्टों में ही आकाश के पूरे वातावरण पर छा जाता है। आप ने डोगरी के क्षेत्र में दो तीन वर्ष पूर्व ही प्रवेश किया, परन्तु आपने अपनी भाषा की मांसलता, विषयों की नवीनता और उनके निर्बहण द्वारा सभी को आश्चर्य-चकित कर दिया है। और इससे भी अधिक उल्लेखनीय तो यह है कि आप अपनी तूलिका और रंगों द्वारा चित्र बनाने में भी उतने ही प्रवीण हैं जितने कि उनका शब्दों द्वारा निर्माण करने में। केवल यही निश्चय करना मुश्किल हो जाता है कि आप अपनी चित्र करना अपनी तूलिका और रंगों के साथ पहले आरंभ करते हैं अथवा अपने शब्दों द्वारा क्योंकि आपके शब्द और ध्वनिचित्र भी वही संचयित प्रभाव डालते हैं जैसा कि आप रंगों द्वारा निर्मित चित्र।

आपकी 'कविता' पृष्ठ ३५-३६, साढ़ा साहित्य, १९६३ हमें ओंकारसिंह आवारा की 'आवारा' शीर्षक रचना का स्मरण कराती है; किन्तु आवारा महोदय वाली 'आवारा' कविता नरसिंह देव की कविता से अंग्रेजी की कविता 'वाण्डर थर्स्ट' के अपेक्षाकृत अधिक निकट है। नरसिंद देव की कविता अधिकतर पर्णनात्मक है; चित्रमयता है। कविता रुक रुक कर

अग्रसर होती है, मानों एक दृश्य दूसरे दृश्य का स्थान ले रहा हो; आवारा की कविता अधिक द्रुत-गति से आगे बढ़ती है और इसमें आत्म-चेतनता कम है। आवारा की आवारा कविता कहीं नहीं रुकती है, आप आगे बढ़ते ही चले जाते है, यद्यपि कहीं कहीं आप के पग डगमगा जाते हैं और आपको रुकने का प्रलोभन उत्पन्न होता है, कोई सुन्दर चेहरा आप को संकेत से अपनी ओर बुलाता है। नरसिंह देव का 'आवारा' प्रकृति का प्रेमी है, और वह मार्ग में अपने आस-पास की ध्वनियों और दृश्यों का आनन्द उठाने के लिये रुकता है।

आपकी 'रिज़क दाता' (पृष्ठ ३७-३८—साढ़ा साहित्य, १९६३ गी चित्रमयता से परिपूर्ण है, कई समस्याओं के प्रति आपका दृष्टिकोण नया और दृढ़ता पूर्ण है, और आप अपने विषय-वस्तु के निर्वहण में नवलता का संचार करते हैं। यह 'नवीनता' आपकी कविता और आपके चित्रों का विशिष्ट तत्व हैं; यह मधुकर की प्रारम्भिक कविताओं का स्मरण दिलातो हैं। 'नमीं कविता, नमें रस्ते' आपकी कविताओं के उस संग्रह का नाम है, जो इन दिनों प्रेस में है।

नरसिंहदेव ने कुछ कहानियां भी लिखी हैं; इनमें 'यमदर' सर्वाधिक प्रभावजनक है। आप उर्दू में भी लिखते हैं। आप पोलीस विभाग के कर्मचारो हैं।

अमर सिंह आदल—हीरानगर तहसील के मढ़ीन नामक गांव के एक युवा कवि हैं। आप अपेक्षतः कम शिक्षा प्राप्त हैं, और एक पिछड़े हुए क्षेत्र का निवासी होने के कारण आप से शास्त्री, मधुकर या दीप जैसी सम्पन्नता एवं मौलिकता की आशा करना न्याय नहीं होगा। आपकी कविताएं देशभक्ति के विषय को लेकर लिखी गई हैं, और अपनी सशक्त शैली और भाषा के कारण नितांत प्रभाव-जनक हैं।

'अमर बलिदान' पृष्ठ ४१-४६, साढ़ा साहित्य, १९६३ में भारत के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम—१९५७—का वर्णन किया गया है, और फिर इसमें वर्तमान-काल के चीन द्वारा भारत पर किये गये आक्रमण का वर्णन किया गया है। 'अमर बलिदान' मधुकर की रचना 'झूठ नेथूं बोलदा, मेरी गल्लें च सचाई ऐ' के साथ बहुत समानता रखती है, परन्तु मधुकर का आलेख्यपट अपेक्षाकृत विस्तृत है और इनका ऐतिहासिक दृश्य-ज्ञान श्रेष्ठतर है। परन्तु अपनी सशक्त शैली और चित्रमय वर्ण्य-विषय के कारण पर्याप्त प्रभावोत्पादक बन पड़ी है।

छज्जू जोगी—ग्राम्य-क्षेत्रों में सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा आयोजित कवि सम्मलनों का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा है। छज्जू जोगी उन कवियों में से हैं, जो वृत्ति से ही लोक-गायक हैं और जो कारकां' और 'बारां' गाया करते हैं। लेकिन नगरों से आये हुए लोगों द्वारा उनका कविता-पाठ सुनकर आपको भी डोगरी में लिखने की इच्छा हुई। आपकी शैली वस्तुतः एक लोक-कवि की है, क्योंकि यह शैली इन्हें अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है। जनता से सम्बन्ध रखने के कारण आप उनकी समस्याओं को समझते हैं और इन्हें अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करते हैं। आप सामाजिक विषयों पर लिखते हैं, परन्तु आप की रचनाओं में व्यंग्य का तत्व भी रहता है। 'शैहरी डोगरे', 'डोगरी संस्था' और 'आजादिये आ' आप की कविताओं में से कुछ एक हैं, जो जम्मू के कण्ढी क्षेत्र में बड़ी लोकप्रिय हुई हैं, और ये लोक गीतों के ढंग पर गाई जाती हैं।

नन्दलाल करलूपिया—नन्दलाल रामनगर तहसील के बसंतगढ़ नामक स्थान के रहने वाले हैं। बसंतगढ़ एक ऐसा स्थान है जो वर्ष में बहुत समय तक शहरों से विच्छिन्न रहता है। अस्तित्व का यह पक्ष इनकी कविता में प्रमुख है। छज्जू जोगी की भांति नन्दलाल भी एक लोक-गायक हैं और आपकी

काव्य-शैली भी उनसे मिलती जुलती है। आप लोक-गीतों के छन्द का उपयोग करते हैं, और इसी कारण, जब आपकी कविताओं का पाठ हो रहा होता है तो वे लोक-गीतों जैसा प्रतीत होती हैं. जिसके लिये डुड्डू-बसंतगढ़ का क्षेत्र प्रसिद्ध है केवल आपके विषय में आधुनिकता रहती है। आपकी कुछ कविताओं में उन कठिनाईयों का, जिन्हें लोगों को १९४७ के दंगों में बाद झेलना पड़ा था, और पांचवें दशक में पड़े सूखे का वर्णन किया गया है।

दूसरा पक्ष, जो आपकी कविताओं में प्रमुख है, वह निश्छल प्रेम, कहीं कहीं पर्याप्त निरवरोध भी रहता है। एक अशिक्षित बुद्धि की अभिव्यक्तियां होने के कारण इनमें उत्कृष्ट भावनाओं अथवा शिल्पगत कौशल का अभाव है, परन्तु इनमें एक स्वाभाविक ओज और नैसर्गिकता रहता है।

इनका पता लेखक को उस समय चला था जब वह लोकगीत एकत्रित करने के उद्देश्य से १९६४ में बसन्तगढ़ गया था। इनकी एक कविता साढ़ा साहित्य-१९६३ (गीत—पृष्ट ४७) में प्रकाशित की गई है।

चरण दास—भी बसन्त गढ़ में रहते हैं और इनका पता भी लेखक को उसी वर्ष चला जिस वर्ष आप को नन्दलाल करलूपिया का पता चला था। आपने मिडल श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की है और इस तरह आप डुड्डू-बसन्तगढ़ के पार्वत्य क्षेत्रों में रहने वाले अधिकांश लोगों की तुलना में शिक्षित कहे जा सकते हैं। युवा होने के कारण इनके गीतों का प्रमुख विषय प्रेम होता है। कभी कभी आप प्रासंगित रुचि के विषयों को लेकर भी लिखते हैं। आप एक लोक-गायक, परन्तु आपकी कविता लोक-साहित्य की अपेक्षा अधिक आत्म-चेतनात्मक है।

इन सब के अतिरिक्त श्रीराम सुधीर, जो पहले सूचना विभाग में काम करते थे, और शिक्षा-विभाग के श्री देशबन्धु 'नूतन' भी गद्य और पद्य में लिखते हैं। सुधीर की कविताएं प्रेम के विभिन्न पक्षों पर लिखी जाती हैं; और श्री नूतन जनसाधारण की समस्याओं को लेकर लिखी हैं श्री सुधीर ने कहानियां भी लिखी हैं और श्री नूतन ने कश्मीर की प्रसिद्ध कवयित्री हब्बाखतून पर एक बहुत बड़ा ग्रन्थ लिखा है, किन्तु नूतन महोदय ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा हब्बाखातून विषयक दन्तकथाओं पर ही अधिक निर्भर रहे हैं। परन्तु अभी तक सुधीर अथवा नूतर, दोनों में से किसी की भी कविताएं अथवा लेख प्रकाशित नहीं हुए हैं।

नाटक

प्रो० रामनाथ शास्त्री ने 'ब्राण्डी' नामक एक एकाङ्की लिखा है, जो १९६३ के 'साढ़ा साहित्य' में प्रकाशित हो चुका है। विषय श्रेष्ठ है और भाषा विषय के उपयुक्त है; किन्तु संवाद बहुत लम्बे हैं। प्रश्न उठाया जा सकता है कि रग मंच पर एक पत्र को पढ़ने से क्या अपेक्षित नाटकीय-प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। और साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी, इस नाटक में क्रियाशीलता का अभाव है। और क्रियाशीलता की ही नाटक में सर्वाधिक आवश्यकता होती है।

श्री जितेन्द्र शर्मा—अभी हाल ही में सांस्कृतिक गतिविधियों के विशेषाधिकारी के रूप में अकादमी में शामिल हुए हैं, इससे पूर्व आप आकाशवाणी के जम्मू केन्द्र में काम करते थे, जहां आप बहुत से श्रेष्ठ रेडियो नाटकों के निर्माता रह चुके हैं। इस बार आपने 'कर्तव्य' नामक एक रेडियो नाटक भी लिखा है, जो १९६३ के साढ़ा साहित्य में प्रकाशित हुआ है। रेडियो-नाटक के दृष्टिकोण से लिखा होने के कारण यह एक सफल कृति है। नाटक में कर्तव्य की भावना पर बल दिया गया है, जो यह मांग

करती है कि हमें अपने सुख-सुविधाओं को देश की भलाई और उसकी सुरक्षा पर निछावर कर देना चाहिये।

नरेन्द्र खजूरिया—ने भी हिन्दी-सम्पादक के रूप में अकादमी में प्रवेश किया है। आप ने अपनी बहुत सी हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित की हैं और आप के हिन्दी नाटक 'रास्ते कांटे और फूल' को हिन्दी नाटक प्रतियोगिता में अकादमी का प्रथम पुरस्कार भी मिला चुका है। आप ने 'ढौंदियां कन्दा' नाम से एक बड़ा डोगरी नाटक भी लिखा है जो एक ही सेट पर खेला जा सकता है। परन्तु इसे एक ही सेट पर खेलने योग्य बनाने के अपने प्रयास में नरेन्द्र ने इसे पर्याप्त मात्रा में कृत्रिम बन दिया है। नाटक का शीर्षक 'ढौन्दियां कन्दां' (गिरती दीवारें) प्रतीकात्मक है परन्तु इस प्रतीक का निर्वाह नहीं हुआ है। नाटक को पढ़ते समय, ऐसा प्रतीत होता है कि नेरेन्द्र हास्य-स्थितियों का निर्माण करने में इतने लीन हो गये हैं कि आप नाटक के शीर्षक को लगभग भूल से गए हैं। नाटक पढ़ने पर लगता है कि—'दीवारें' पहले ही गिर चुकी हैं, क्यों कि जागीरदारी अवस्था का मुखिया, स्वयं रामदास बहुत पहले नवीन विचारों तथा नये मूल्यों की ओर उन्मुख हो चुका है, और यह वही व्यक्ति है जो ह्रासोन्मुख सामन्ती व्यवस्था पर अन्तिम प्रहार कर रहा है। और न ही इस सामन्ती व्यवस्था के किसी घिनावने अथवा घृणास्पद पक्ष को ही उभारा गया है। जागीरदारी व्यवस्था के जिन दोषों और त्रुटियों की ओर नरेन्द्र ने संकेत किया है, वे सभी—ईर्ष्यालुता और धनलोलुपता, रूढ़िवादी होते हुए भी समाज में श्रेष्ठतर मान्यता प्राप्त करना आदि—दोष तो पूरे भारतीय समाज में विद्यमान हैं। और इन्हें भी बिना किसी गम्भीरता के चित्रित किया गया है।

इस नाटक में भी नरेन्द्र घटना स्थल का कोई उल्लेख नहीं करते हैं। यह सब किस स्थान पर घटित होता है? और न ही

इस में दिये नामों से ही उस क्षेत्र विशेष की ओर कोई संकेत मिलता है, जहां पर ये घटनाएं घटित हुई हैं। ये जागीरदार कौन हैं? और राजा कौन है? चार मज़दूरों को नियुक्त करके और उन्हें बैरों की कला के निर्देश देकर प्रमोद की स्थिति उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। परन्तु कुछ दिनों के लिये किसी होटल के बैरों को इस काम के लिये नियुक्त नहीं किया गया है, ताकि वे तत्परता से कार्य करते और राम दास का रुपया बच जाता? पर यदि ऐसा कर दिया जाता तो नरेन्द्र ने जो कुछ लिखा है, उस में से बहुत कुछ नहीं लिखा जा सकता था। नरेन्द्र, यद्यपि विभिन्न रूप में, सपनों की दुनियां में चले गये हैं; आप अपनी हास्य-की झोंक में आकर इतने भटक गये प्रतीत होते हैं, कि आप यह भी भूल गये हैं कि आप इस नाटक में कौन से उद्देश्य को लेकर अग्रसर हुए थे। और कहीं कहीं तो भाषा भी उपयुक्त नहीं है और उसका प्रयोग भी ठीक ढंग से नहीं किया गया है। कुछ एक संवाद भी अत्याश्वयक है, और दूसरे कुछ प्रभावहीन है।

निर्देशन की ओर भी समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। नाटक के पात्रों के नाम अथवा उनकी आयु का भी ठीक ठीक उल्लेख नहीं किया गया है। राजा 'नटवर' का कभी 'सिंह' और कभी 'लाल' के नाम से उल्लेख हुआ है। एक स्थल पर 'रोहिणी' को सोलह-सत्रह वर्ष की वताया गया हैं और दूसरी जगह उसे सत्रह-अठारह वर्ष की बताया गया है। तटवर को एक धूर्त न बता कर एक मूढ़ दिखाया गया है, और इस कारण से हमें उस पर हंसी आती है पर वह हमारे रोष और घृणा का पात्र नहीं बनता। रामदास न तो अपने स्वरूप और न अपने व्यवहार ही से जागीरदार प्रतीत होता है। बहुत से संवाद पाठक में अरुचि और निस्पृहता का संचार करते हैं; बहुत सी अवस्थितियां बहुत आम हैं।

चरित्र-चित्रण सशक्त नहीं है। केवल एक ही चरित्र पूरे

नाटक पर छाया हुआ प्रतीत होता हैं, और वह है स्वयं नाटककार, नरेन्द्र खजूरिय। माया राम और किंचित् मात्रा में नटवर लाल हास्य का संचार करते हैं, अन्य सब के सब मात्र परछाइयां हैं। इस नाटक को केवल एक ही दृष्टि से सराहा जा सकता है और वह यह कि इसे एक ही सेट पर खेला जा सकता है। कहीं कहीं पाठक को नरेन्द्र के चट-पटे संवादों की झलक मिलती है, पर ऐसा कभी कभी ही हुआ है। 'ढौन्दियां कन्दां' नाटक नरेन्द्र की पूर्वरचित कृतियों से अपेक्षकृत ह्लास के रूप में हमारे समुख आता है। और संक्षेप में यूं कहा जा सकता है कि इसे बड़े ध्यान के साथ पढ़ना अपेक्षित है।

———

प्रदेश से बाहिर के लेखक

सुदर्शन कौशल—सुदर्शन कौशल के पूर्वज कांगड़ा के नूरपुर नामक स्थान के रहने वाले थे किन्तु इन के पिता धर्मसाला में जाकर बस गये। सुदर्शन कौशल उर्दू में कविता लिखते हैं, किन्तु इस शती के पांचवें दशक में, सुदर्शन महोदय जम्मू आये और एक प्रइवेट स्कुल में अध्यापन कार्य करने लगे। डोगरी लेखकों से आपकी भेंट हुई और आप डोगरी में कविताएं लिखने लगे। यश की भांति सुन्दर्शन के स्वर में भी माधुर्य है, और मोहक ध्वनि में गाये जाने वाले इन के कुछ गीत श्रेष्ठतर रचनाएं प्रतीत होती हैं। सुदर्शन एक प्रगति शील लेखक हैं, और इसी कारण, जब आप देखते हैं स्थिति इतनी अच्छी नहीं हैं, जितनी कि होनी चाहिये थी तो आप उनके विरुद्ध रोष भरे स्वर में लिखते हैं; जैसा कि इनके गीत—

'जली जायो ब्लैका दा राज'

में था, कहीं कटाक्षपूर्ण ढंग से देखा जा सकता है आप ने स्वतन्त्रता-सेनानियों की भावना का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है कि दृढसंकल्प स्वयं सेवक किस प्रकार ब्रिटिश शासन को यह

अनुभव कराने में समर्थ हो सके कि अब वे अधिक देर तक भारत में नहीं टिक सकते हैं, तथा गांधी टोपी किस प्रकार ब्रिटिश-ताज से अधिक महत्तर बन गई थी। अन्ततः अंग्रेज़ों को भारत छोड़ना पड़ा और भारत में कांग्रेस सत्तारूढ़ हुई।

'टोपुऐ खाई लिया ताज'

अर्थात् इस गांधी टोपी ने ब्रिटिश ताज का मूलोच्छेद कर दिया है।

सम्प्रति सुदर्शन कौशल धर्मसाला के एक स्कूल में मुख्याधापक हैं।

हरी पद्रे—पालमपुर के एक चरवाहा हैं। आप एक श्रेष्ठ गीतकार हैं और अपने गीत पहाड़ी गीतों की धुनों पर लिखते हैं। आप एक अच्छे वर्णनशील कवि हैं और कभी कभी आप प्राकृतिक वातवरण का बड़ा कलात्मक चित्रण करते हैं।

आपकी एक रचना निःसन्देह उत्कृष्ट कोटि की है : 'रोन लगी' में आने वाले तूफ़ान का वर्णन किया गया है, क्योंकि आकाश मेघाच्छन्न है। नौका अब कैसे नदी को पार करेगी ?

———

उपसंहार

जैसाकि पिछले षृष्ठों में स्पष्ट हो चुका होगा, डोगरी ने वृहत्तर क्षेत्र में विस्तार पाया है, जिसकी उस भाषा से अपेक्षाकृत कम सम्भावना थी, जिसका साहित्यिक इतिहास वस्तुतः दो से तीन दशकों से अधिक पुराना नहीं है। कविता के क्षेत्र में सामाजिक और राजनयिक पक्षों के साथ साथ विचार प्रधान, दार्शनिक चिन्तन प्रधान एवं रहस्यवाद के विषयों को लेकर साहित्य लिखा जा रहा है। विशुद्ध रूप में साहित्यिक-गीतिपरक, विवरणात्मक अथवा वर्णनात्मक प्रसंग जिनमें हास्य, कटाक्ष, बुद्धिपाटव और व्यंग्य आदि थे--इसमें पहले से ही विद्यमान थे। अनुवाद कार्य से भी इस भाषा के समृद्ध होने में सहायता मिली है।

गद्य के क्षेत्र में कहानोकारों, और उनके द्वारा लिखी जाने वाली श्रेष्ठ कहानियों की संख्या बढ़ रही है। उनकी कृतियों का आलेख्यपट बृहत्तर एवं विस्तृततर हो रहा है; विषय-निरूपण में विविधता आ रही है, और वस्तु तथा शैली की दृष्टि से, नए प्रयोग करने की दिशा में लेखकगण नये डग बढ़ा कर अग्रसर हो रहे हैं। एकांकी रेडियो नाटक तथा रंगमंच के लिये नाटक लिखे जा रहे हैं। चित्तनप्रधान और वर्णनप्रधान, और कला एवं

पुरातत्व संबंधी निवन्ध भी लिखे जा रहे हैं। इसके हास्य विषयक निबन्धों का सृजन प्रो० लक्ष्मीनारायण कर रहे हैं। श्री विश्वानाथ खजूरिया की रचना 'डोगरी में हास्यरस' अभी तक पाण्डुलिपि के रूप में ही हैं। बच्चों के लिये उपयोगी साहित्य का निर्माण भी पर्याप्त मात्रा में हो रहा है। डोगरी तिलक, प्रवीण और शिरोमणि नामक विश्व-विद्यालय स्तर की परीक्षाएं आरंभ हो कुकी हैं। यह सब उत्साहप्रद है परन्तु पर्याप्त नहीं है। अब भी बहुत से ऐसे क्षेत्र शेष हैं जिनका स्पर्श और अवेषणा अभी तक नहीं की गई है। डोगरी के किसी भी लेखक ने अभी तक इतिहास, समाज-शास्त्र विकास शास्त्र, मनोविज्ञान, विज्ञान एवं अर्थशास्त्र पर कुछ नहीं लिखा है। निरपेक्ष एवं विषयपरक पद्धति में साहित्यिक आलोचना की दिशा में भी कोई ठोस प्रयास नहीं हुआ है। वह स्थिति, जब कि डोगरी के आन्दोलन तथा प्रत्येक डोगरी लेखक को प्रोत्साहन की आवश्यकता थी, अब नहीं रही है। अब मूलयांकन, निजी आलोचना करने की आवश्यकता है। केवल भारत की कुछ प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं ही के नहीं अपितु विश्व की कुछ मुख्यतम भाषाओं का अध्ययन करने तथा उनके साथ होड़ लेने का प्रयास करना अपेक्षित है। सांस्कृतिक अकादमी तथा अन्य सरकारी संस्थाओं द्वारा डोगरी को प्राप्त संरक्षण कोई कम महत्व का नहीं है, परन्तु इस पर भी प्रबुद्ध लोगों और जनता में जागृति लाने की आवश्यकता है। और नगरों तथा गांवों के एवं इस प्रदेश के एवं दिल्ली, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश में रहने वाले डोगरी लेखकों के बीच घनिष्ठ सम्पर्क होना चाहिये। केवल ऐसा होने पर ही डोगरी वास्तव में भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में अपना स्थान पा सकती है और इसे केवल अपने बोलने वालों की संख्या के बल पर ही नहीं, अपितु इसके महान् भाषा होने के बल पर, जैसी कि यह वस्तुतः है, सुरक्षित रखा जा सकता है।

॥ समाप्त ॥

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

काव्य

वीर गुलाव	...	दीनू भाई पन्त (१९४३)
जागो डुग्गर	...	एक चयनिका (१९४४)
गुतलूं	...	दीनू भाई पन्त (१९४४-४५
मंगू दी छवील	...	दीनू भाई पन्त
नमियां मिञ्जरां	...	केहरसिंह मधुकर
भड़ास	...	शम्भुनाथ शर्मा
नीनिशतक (अनुवाद)	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री
बापू दे संगी कपूत	...	वेदपाल दीप
गुङ्गे दा गुड़	...	स्वामी ब्रह्मानन्द
मानसरोवर	...	स्वामी ब्रह्मानन्द
गुप्त गगा	...	स्वामी ब्रह्मानन्द

अमृत वर्षा	...	स्वामी ब्रह्मानन्द
दीदी ते मां	...	दीनू भाई पन्त
फौजी पैन्शनर	...	तारा समैलपुरी
श्री ब्रह्म-संकीर्तन	...	स्वामी ब्रह्मानन्द
६६५७	...	आवारा, दीप आदि की कविताओं का संग्रह
डोगरी भजन-माला	...	स्वामी ब्रह्मानन्द
मेघदूत	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री
वैराग्य शतक	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री
शृङ्गार शतक	...	प्र० रामनाथ शास्त्री
रामायण (पद्यानुवाद)	...	शम्भुनाथ शर्मा (१९६३)
किरण	...	रामलाल शर्मा (१९६३)
जोत	...	चरणसिंह (१९६३)
झुनक	...	परमानन्द अलमस्त (१९६३)
डोला कुन ठप्पेआ	...	केहरसिंह मधुकर (१९६४)

कहानियां

पहला फुल्ल	...	भगवत्प्रसाद साठे
सूई धागा	...	ललिता मेहता
काले हत्थ	...	वेद राही
पैरें दे निशान	...	रामकुमार अबरोल
कोलें दियां लीकरां	...	नरेन्द्र खजूरिया
फुल्ल बने अङ्गारे	...	रामकुमार अबरोल
मेरियां कहानियां मेरिया कवितां	...	रामकुमार अबरोल
उच्चियां धारां	...	धर्मचन्द प्रशान्त
चाननी रात	...	मदनमोहन शर्मा
नीला अम्बर काले बदल	...	नरेन्द्र खजूरिया
रोचक कहानियां	...	नरेन्द्र खजूरिया

लोक-कथाएं

इक्क हा राजा	...	सम्पादक : रामनाथ शास्त्री
पौंगर	...	सं० अनन्तराम शास्त्री
जितमल-बलिदान	...	सुखदेव शास्त्री
पंचतन्त्र (अनुवाद)	...	अनन्तराम शास्त्री
गुलाब-नामा (अनुवाद)	...	राम्रो रतनसिंह, विष्णु पंडित
डोगरी लोक-कत्थां	...	बन्सीलाल गुप्ता
श्रीमद्भग्वद्गीता (भद्रवाही)	...	अनुबादक प्रो. गौरी शंकर
श्रीमद्भगवद्गीता (डोगरी गद्य)		अनुवादक रघुनाथसिंह सम्याल
श्रीमद्भगवद्गीता (डोगरी गद्य)		अनुवादक परसराम नागर

नाटक तथा एकाङ्की

नमां ग्रां	...	शास्त्री, पन्त अबरोल
धारें दे अथ्रू	...	वेद राही
देवका जन्म	...	धर्मचन्द्र प्रशान्त
वावा जित्तो	...	रामनाथ शास्त्री
सरपंच	...	दीनूभाई पन्त
सार (पाण्डुलिपि)	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री
देहरी	...	रामकुमार अबरोल
अस भाग जगाने आले आं	...	नरेन्द्र खजूरिया
संझांली (पाण्डुलिपि)	...	नीनू भाई पन्त
खीरली भेंट (टैगोर के बलिदान .. का अनुवाद)	...	रामनाथ शास्त्री
ढौन्दियां कन्दां (पाण्डुलिपि)	...	नरेन्द्र खजूरिया

गीताञ्जलि (अनुवाद)	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री
एकोत्तरशती (१०१ कविताएं)	...	केहरिसिंह मधुकर
इक्कीस कहानियां	...	वेदराही

उपन्यास

शानो	...	नरेन्द्र खजूरिया (१९६०)
धारां ते धूड़ा	...	मदनमोहन शर्मा (१९६०)
हाड़ बेड़ी ते पत्तन	...	वेदराही (१९६०)
रुक्मनी [पाण्डुलिपि]	...	धर्मचन्द्र प्रशान्त
मरुए दो डाली [पाण्डुलिपि]	...	नरेन्द्र खजूरिया

सांस्कृतिक अकादमी के प्रकाशन

नीहारिका	...	प्रो० रामनाथ शास्त्री [१९५८]
प्रातकिरण	...	तारा समैलपुरी [१९५८]
मधुकण	...	केहरिसिंह मधुकर [१९५८]
अरुणिमा	...	दीनू भाई पन्त [१९५८]
मगधूलि	...	शम्भुनाथ [१९५८]
डोगरी कहावत कोष	...	तारा समैलपुरी [१९६२]
देस प्यार दे गीत	...	के० ऐस० मधुकर [१९६३]
साढ़ा साहित्य [१९६०-६२]	...	सं० नीलाम्बर देव शर्मा तथा मधुकर [१९६३]
डुग्गर दे लोक गीत	...	नीलाम्बर देव शर्मा तथा केहरि सिंह मधुकर द्वारा संकलित और सम्पादित १९६४
डोगरी शीराज़ा	...	केहरिसिंह मधुकर [१९६३]
डोगरी भाषा और व्याकरण	...	बन्सीलाल गुप्ता
एन् इन्ट्रोडक्शन टु डोगरी फ़ोक् लिट्रेचर एंड् पहाड़ी आर्ट	...	प्रो० लक्ष्मीनारायण तथा श्री संसारचन्द्र [१९६५]

अन्य ग्रन्थ

खारे मिट्ठे अथ्रू ... सुशीला सलाथिया (संग्रह)

नमीं चेतना ... डोगरी त्रैमासिक (चार अंक)

तवी और त्रिकुटा ... साइंस कालिज तथा आर्ट कालिज की पत्रिकाएं (डोगरी भाग)

डोगरी भाषा ... ठाकुर रघुनाथ सिंह

जगदियां जोतां [उर्दू] ... वेद राही

डोगरी लोक गीत [उर्दू] श्यामलाल शर्मा तथा श्रीमति

त्रिवेणी [निबन्ध] ... शक्ति शर्मा १९६१

डोगरी व्याकरण [पांडुलिपि] अनंतराम शास्त्री

कामायनी [पांडुलिपि] ... अनुवादक हंसराज पंदोत्रा

बैताल पचीसी [अनुवाद] ... श्यामलाल शर्मा

भागवत् दियां कत्थां [अनु०]... श्यामलाल शर्मा

निगोजे [कविता संग्रह] ... वेद राही

डोगरी लोकगीत [पांडुलिपि]... रामनाथ शास्त्री द्वारा संकलित

डोगरी हितोपदेश ,, ... अनु० रामनाथ शास्त्री

डोगरी गीता-भाष्य ,, ...

डोगरी लोक-साहित्य [हिन्दी में परिचायिका] ... प्रो. रामनाथ शास्त्री

दुर्गा सप्तशती ... कृपाराम शास्त्री

देवका ... कृपाराम शास्त्री

शैडो एंड सनलाईट् ... डाक्टर कर्णसिंह

टेरिटरीज़ आव जम्मू एण्ड कश्मीर ... एफ़् ड्रियू

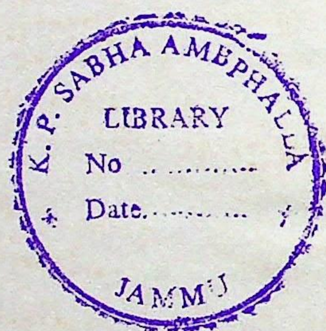
सम् वाल्यूम्ज़ अव कश्मीर अफेयर्ज — बलराजपुरी द्वारा संपादित

नमें रस्ते, नमीं कविता (पाण्डुलिपि) ... नरसिंहदेव जम्वाल

डोगरी च हास्यरस ... विश्वनाथ खजूरिय

डुग्गर, उसका लोक-जीवन और लोलकला [पाण्डुलिपि]... विश्वनाथ खजूरिया

———





ललितकला, संस्कृति व साहित्य अकादमी जम्मू-कश्मीर, जम्मू